RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
USA

वर्ष : 10, अंक : 37
अप्रैल-जून 2025
मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

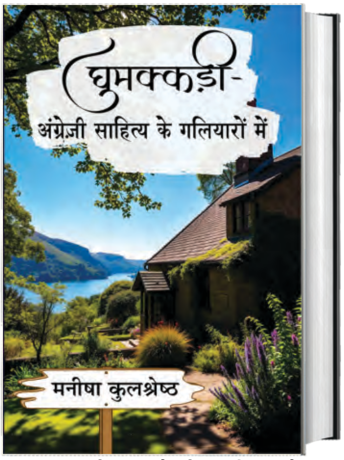

घुमक्कड़ी - अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारों में, यात्रा संस्मरण
लेखक - मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2025

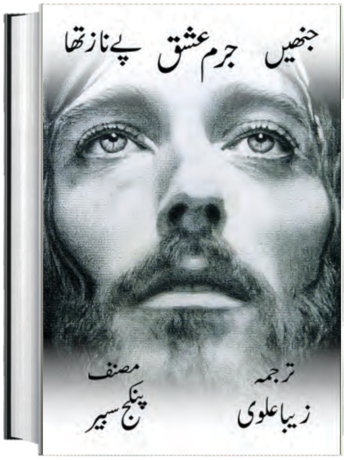

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
उपन्यास उर्दू अनुवाद- ज़ेबा अलवी
लेखक - पंकज सुबीर
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2025

साज़-बाज़
उपन्यास
लेखक - प्रियंका ओम
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

पत्तियों पर काँपता कोमल गांधार
कविता संग्रह
लेखक - पल्लवी त्रिवेदी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

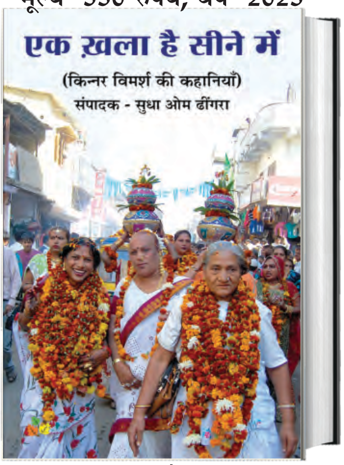

एक ख़ला है सीने में
कहानी संकलन
संपादक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2025

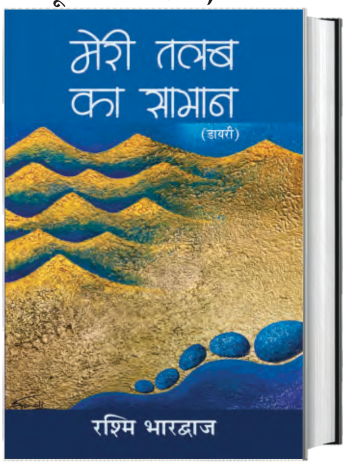

मेरी तलब का सामान
डायरी
लेखक - रश्मि भारद्वाज
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2025

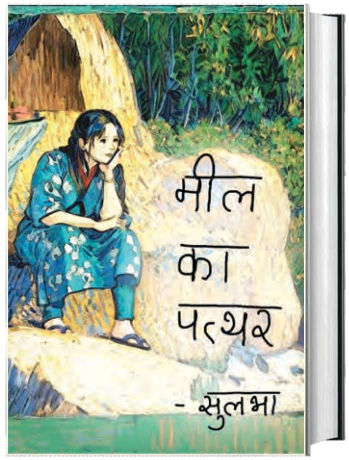

मील का पत्थर
कविता संग्रह
लेखक - सुलभा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

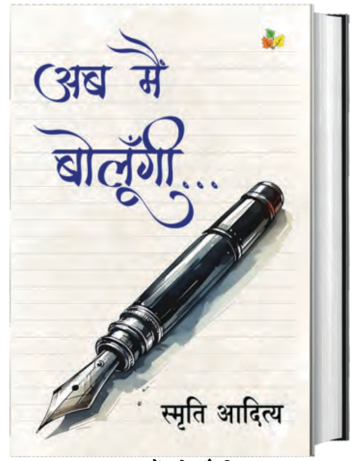

अब मैं बोलूँगी...
डायरी
लेखक - स्मृति आदित्य
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

आईना हँसता है
कहानी संग्रह
लेखक - डॉ. दीपा मनीष व्यास
मूल्य- 240 रुपये, वर्ष- 2025

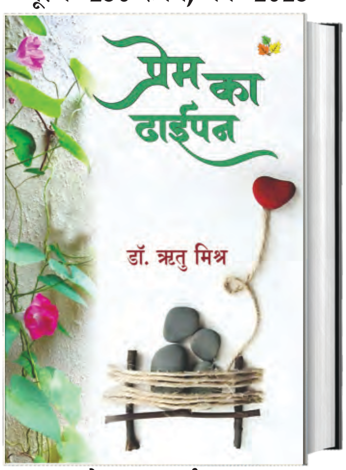

प्रेम का ढाईपन
कविता संग्रह
लेखक - डॉ. ऋतु मिश्र
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

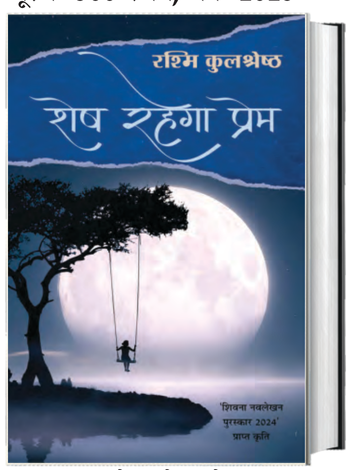

शेष रहेगा प्रेम
उपन्यास
लेखक - रश्मि कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2025

पानी पर नाम
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - नरेन्द्र नागदेव
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार)
व्हाट्सएप- +91-6265665580, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 10, अंक : 37, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2025
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

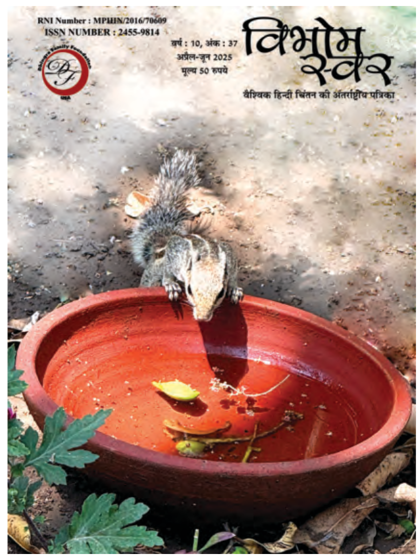

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

रेखाचित्र
अनीता सक्सेना

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

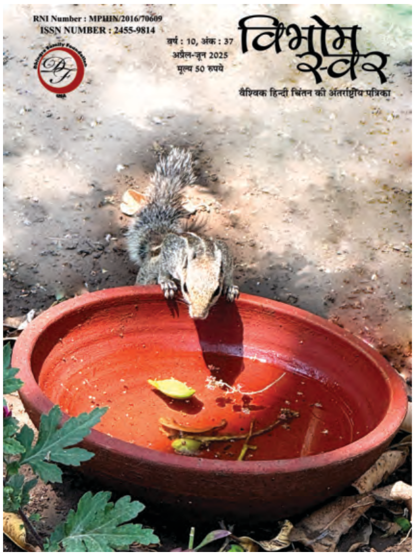

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 10, अंक : 37
अप्रैल-जून 2025

संपादकीय 3
मित्रनामा 6
साक्षात्कार
साहित्य और टीवी या फ़िल्मों के लिए लेखन में ज़मीन-आसमान का अंतर है
कहानीकार-उपन्यासकार जयंती रंगनाथन से आकाश माथुर की बातचीत 11
विस्मृति के द्वार
कहीं दूर खड़ी वह
विकेश निझावन 17
कथा-कहानी
ए चाँद आसमाँ के
डॉ. पूरन सिंह 19
शालोम ब्रू
अनुजीत इकबाल 22
लाल छत वाला घर
ममता त्यागी 27
थोड़ा सा मज़ा
रोचिका अरुण शर्मा 33
पुनरागमन
पूजा गुप्ता 37
मुझे माफ़ कर दो अम्माँ
पद्मा मिश्रा 40
लघुकथा
बैनर
डॉ. दिलबाग सिंह विर्क 26
सिसकियाँ
सुशील स्वतंत्र 32
भरपेट खाना
चारुमित्रा 64
भाषांतर
अब दिल ख़ुश है
पंजाबी कहानी- रवि शेरगिल
हिन्दी अनुवाद- डॉ. अमरजीत कौंके 43
प्रथम पग
टीचर
विनीता कुमार 47
ललित निबंध
जल जलहिं समाना...
डॉ. वंदना मुकेश 49
व्यंग्य
ये जो टेंशन है
प्रेम जनमेजय 51
दीनानाथ के हाथ
हरीश नवल 53
न खाऊँगा....
कमलेश पाण्डेय 56
दादाजी का हनीमून
अर्चना चतुर्वेदी 58
संस्मरण
कितने पास कितने दूर
गोविंद शर्मा 62
रेखाचित्र
कमजोर हाथों से भी सीढ़ी थामने वाले
ज्योति जैन 62
ग़ज़ल
अंजना वर्मा 42
सत्यशील राम त्रिपाठी 57
शहरों की रूह
प्रकृति का डिज़्नी वर्ल्ड-यूटाह
रेखा भाटिया 65
आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:
1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक
(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे...

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

समय-समय पर विश्व में अलग-अलग देशों का महत्त्व और सत्ता रही है। उस समय वे देश विश्व की एक शक्ति बन कर उभरे और उन्होंने अपनी कॉलोनियाँ और उपनिवेश भी स्थापित किए।

दूसरे विश्व युद्ध से पहले इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी इन देशों का पूरे विश्व में बोलबाला था। इंग्लैण्ड ने तो भारत पर भी पूरे दो-सौ वर्षों तक राज किया। कहा यह जाता था कि अंग्रेज़ों के राज में सूरज कभी डूबता नहीं था। पर सत्ता प्राकृतिक नियमों और समय चक्र को तो नहीं बदल सकती। सन् 1947 में भारत आज़ाद हुआ। सत्ता और राजनीति में समय कब किस करवट बैठ जाए, कहा नहीं जा सकता। और विश्व में अपनी पताका फहराने वाले देश इंग्लैंड की आज की स्थिति में आर्थिक अवस्था डाँवाडोल है। सूरज चढ़ता है तो उसका डूबना भी तय है।

समय तो वह भी याद आता है, जब स्वदेश के घर-घर में युवा गोर्की, चेख़व, टॉलस्टॉय और पुश्किन को पढ़ा करते थे। रूस की विचारधारा से लोग प्रभावित थे। दूसरे विश्व युद्ध के बाद रूस, यूरोप और अमेरिका बड़ी ताक़तें बन कर उभरे थे। समय ने फिर अपना अलग रंग दिखाया, रूस की विचारधारा ने ही उसके टुकड़े कर दिये और अब वहाँ तानशाही राज है।

अमेरिका बेहद मज़बूत ताक़त बन कर उभरा और है भी। अमेरिका की ही कोशिशों से दूसरे विश्व युद्ध के बाद जर्मनी जो दो हिस्सों में विभाजित हो गया था, एक हो गया। अंतरराष्ट्रीय संगठनों का अमेरिका एंकर बना और उन्हें आर्थिक सहायता दी। विकासशील देशों जहाँ भुखमरी, ग़रीबी और स्वास्थ्य की समस्याएँ थीं, यू एस ने वहाँ सहायता की। यह सहायता US aid या US funding के नाम से जानी जाती है।

विकसित देश जहाँ विश्व में अपनी सत्ता प्रदर्शन में लगे थे, वहीं विकासशील देश भारत और चीन स्वयं को मज़बूत करने के लिए संघर्षरत थे। 2001 में चीन विश्व व्यापार संघठन का सदस्य बना। उसने इसका भरपूर लाभ उठाया। विश्व के कई देशों में वह अपना माल बेचने लगा। विश्व में सबसे अधिक चीन का सस्ता माल अमेरिका में, जिसकी आबादी 340.1 मिलियन है, बिकता है। अमेरिका में उत्पादन लगभग समाप्त हो चुका है। वह दूसरे देशों मुख्यत: चीन पर निर्भर करता है, जिससे देश को पिछले बीस सालों से काफी घाटा हुआ है। नई सरकार को यह घाटा मंज़ूर नहीं, वह इसकी जल्दी वसूली चाहती है और दूसरे देशों पर भारी-भरकम टैरिफ़ लगा कर वसूलना चाहती है। सरकार इस बात की ओर ध्यान नहीं दे रही, कि आनन-फानन में फैक्ट्रियाँ नहीं खोली जा सकती, न ही उत्पादन किया जा सकता है। विकासशील देशों की तरह न यहाँ लेबर सस्ती है, फिर चीन से आ रहे सस्ते माल की तरह यहाँ उत्पादन सस्ता कैसे होगा? यह टैरिफ़ सरकार देशों पर नहीं अपने ही लोगों पर लगा रही है...

अमेरिका में रोज़मर्रा के कामों के लिए लेबर तो थी ही नहीं। लोग अपने सभी काम स्वयं करते थे। पंद्रह-बीस वर्ष पूर्व मैक्सिको और साउथ अमेरिका के अलग-अलग देशों से बहुत से ग़ैर क़ानूनी कामगार यहाँ बॉर्डर पार करके आने लगे। वे घर के काम, बाग़-बगीचे की साफ़-सफाई, भवन निर्माण, रंग-रोगन, खेतों के काम यानी सभी तरह के काम कर सकते हैं। उनके आने से लोगों को बहुत राहत मिली। वे निर्माण कार्यों के लिए बहुत उपयुक्त हैं; क्योंकि उन्हें निर्माण और विनिर्माण कार्यों की जानकारी है। अब उन्हें निकाला जा रहा है। अमेरिका में तो

संपादकीय

लेबर की पहले ही कमी है, अब सारे दैनिक कार्य कैसे होंगे ? निर्माण उद्योग पर बुरा असर होगा, बहुत नुक्सान होगा।

अमेरिका विश्व को हाई टेक्नोलॉजी और सर्विस इंडस्ट्री प्रदान करता है। अब अगर देशों पर टैरिफ़ बढ़ा दिया जाएगा तो वे देश भी सर्विस इंडस्ट्री पर ट्रैरिफ़ बढ़ा सकते हैं तो निर्यात को भी हानि होगी।

कहा यह जाता है कि देश के हित के लिए ये क़दम उठाने ज़रूरी हैं पर कई सरकारी विभाग बंद किये जा रहे हैं, लोग नौकरियों से निकाले जा रहे हैं। इससे देश का कौन-सा हित साधा जा रहा है बल्कि जन-जीवन अव्यवस्थित हो रहा है।

जो पक्ष सरकार की नीतियों के हक़ में हैं वे कहते हैं, चीन बेहद निरंकुश हो गया है। इसे ठीक करना बहुत ज़रूरी है। पूरी दुनिया को हथियाना और सारे देशों के बाज़ारों को अपनी मंडी बनाना चाहता है। अमेरिका ने ही इसे विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनाया और इसने अमेरिका की ही सोशल मीडिया की सारी कंपनियों फेसबुक, एक्स, गूगल को अपने देश में बैन किया हुआ है जबकि चीन का टिक-टॉक अमेरिका में धड़ल्ले से चलता है। यहाँ कोई भी कंपनी अपना ऑफ़िस खोल सकती है, जो अमेरिका के क़ानूनों का पालन करे। अमेरिका की स्वतंत्र नीतियाँ इसका मुख्य कारण है। अब जनता का एक बड़ा वर्ग अपने देश का हित देखना चाहता है। उनका कहना है कि चीन से सभी देश तंग हैं पर बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? अमेरिका बाँध सकता है और वह बाँध रहा है। इसके दो परिणाम हो सकते हैं, या चीन और भी मज़बूत होकर निकलेगा या भीतरी विघटन होगा। अमेरिका दोनों तरह के परिणामों के लिए तैयार है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने भी सन् 1987 में रूस के गले में घंटी बाँधी थी तब रूस के नेता गोरबेचॉफ़ थे और उसके बाद ही रूस कई हिस्सों में बँट गया था।

अमेरिका की सरकार के ये निर्णय क्या परिणाम लाते हैं यह तो भविष्य के गर्भ में छिपा है, अभी तो अर्थशास्त्री और राजनीति के विशेषज्ञ अपने-अपने अंदेशे साझा कर रहे हैं।

अमेरिकी सरकार के निर्णयों से अमेरिका और यहाँ के निवासियों को लाभ होगा या हानि अभी कुछ कहा नहीं जा सकता।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

जीवन उम्मीद और जिजीविषा का ही दूसरा नाम है। काटे जाने के बाद भी पेड़ के सूखे तने से उम्मीद का अंकुर फूट ही पड़ता है। इसी जिजीविषा के दम पर पेड़ अपने को हमेशा हरा बनाए रखता है, भले ही मौसम कैसा भी हो। जीवन का मतलब है सब कुछ समाप्त हो जाने के बाद भी उम्मीद बना कर रखना।

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना प्रकाशन द्वारा नए लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' की शुरुआत की गई है। यह पुरस्कार गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास तथा कथेतर विधा में प्रदान किया जाता है। हर वर्ष किसी एक पांडुलिपि को यह पुरस्कार प्रदान किया जाता है। पुरस्कृत पांडुलिपि का प्रकाशन शिवना प्रकाशन द्वारा किया जाता है। इस वर्ष 2025 हेतु कहानी, उपन्यास तथा कथेतर (डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज) विधाओं में लेखकों से पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जा रही हैं।

पुरस्कार के लिये नियम तथा शर्तें

1. पुरस्कार के लिए लेखक की आयु 40 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। (जिस वर्ष हेतु पांडुलिपि आमंत्रित की गयी है, उस वर्ष की 31 दिसंबर तिथि तक।) पांडुलिपि के साथ आधार कार्ड की छायाप्रति संलग्न करना आवश्यक होगा।

2. लेखक की पहली किताब होनी चाहिए, इससे पूर्व उसकी किसी भी विधा की कोई किताब प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में एक स्व-हस्ताक्षरित घोषणा पत्र लेखक को पांडुलिपि के साथ भेजना होगा।

3. पांडुलिपि कम से कम चालीस हज़ार तथा अधिकतम अस्सी हज़ार शब्दों की होनी चाहिए। इससे कम या अधिक शब्द संख्या होने पर पांडुलिपि अमान्य कर दी जायेगी।

4. पांडुलिपि 15 अक्टूबर 2025 के पूर्व शिवना पुरस्कार के ईमेल shivna.awards@gmail.com पर प्राप्त हो जाना चाहिए। पांडुलिपि वर्ड डॉक में यूनीकोड फॉण्ट में टाइप होनी चाहिए। किसी अन्य फॉण्ट में होने पर स्वीकार नहीं की जायेगी।

5. पुरस्कृत लेखक को 11,000 रुपये (ग्यारह हज़ार रुपये) नगद राशि प्रदान की जाएगी।

7. लेखक को पांडुलिपि के साथ पुस्तक के मौलिक, स्वलिखित तथा अप्रकाशित होने का हस्ताक्षरित पत्र भेजना आवश्यक है।

8. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर लिखा होना चाहिए- 'शिवना नवलेखन पुरस्कार के लिए'।

9. प्रकाशित पुस्तकों के कॉपीराइट (प्रिंट, डिजिटल तथा ऑडियो) पाँच वर्ष तक लेखक तथा शिवना प्रकाशन के पास संयुक्त रूप से रहेंगे, इस अवधि में लेखक उस पुस्तक को अन्यत्र कहीं से प्रकाशित नहीं करवा सकेगा।

10. पुरस्कार के लिए अंतिम निर्णय निर्णायकों का होगा जो प्रतिभागियों के लिए मान्य होगा।

11. पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार किया जायेगा, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लेखक के अनुरोध पर नहीं किया जायेगा।

12. पुरस्कार के लिए एक पाँच सदस्यों की समन्वय समिति बनायी गई है, लेखक पुरस्कार के बारे में और जानकारी प्राप्त करने के लिए उनसे संपर्क कर सकते हैं। समिति के सदस्य हैं- सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), ज्योति जैन (इन्दौर), शैलेन्द्र शरण (खण्डवा), पारुल सिंह (नई दिल्ली) तथा शहरयार (सीहोर)।

संपर्क- शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

दूरभाष- 07562-405545, व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.awards@gmail.com

मित्रनामा

'विभोम स्वर' के जनवरी-मार्च 2025 अंक में प्रकाशित उर्मिला शिरीष की कहानी ''दरवाज़े'' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद के सदस्यों ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक श्री गोविंद शर्मा तथा समन्वयक श्रीमती राजश्री शर्मा थे।

रोचक शैली की कहानी

स्त्री-विमर्श को रेखांकित करती उर्मिला शिरीष की कहानी 'दरवाज़े' पढ़कर ऐसा लगा मानों स्त्री जीवन की कथा के हर पहलू स्वत: ही पाठक के सामने खुलते जा रहे हैं।

यूँ तो स्त्री का शरीर बहुत ही कोमल है किन्तु इसके भीतर न जाने कितनी भावनाएँ, संवेदनाएँ, अहसास, सुख-दुख राख की ढेर में परिणित हो चुके हैं। धन्य है औरत जिसने अपने भीतर गरल भर रखा है परन्तु बाहर से बिल्कुल शांत, निर्विकार दिखती है।

ऐसा नहीं है कि नारी के हृदय में प्रेम पिपासा नहीं है, अपने ढंग से जीने की ललक नहीं है, अपने शौक पूरे करने की चाह नहीं है, लेकिन सर्वप्रथम वह एक स्त्री है जिसे ईश्वर ने फुर्सत में बनाया है। कूट-कूट कर सहनशक्ति भर दी है। स्वयं को मारकर परिवार को हरा-भरा रखने की कला जानती है। ऐसा वह स्वेच्छापूर्वक करती है। उसकी भीरुता, ममता, दया को उसकी कमज़ोरी नहीं समझना चाहिए वरन् ये गुण ही उसे बलवान् बनाते हैं। कहानीकार ने सुशांत के माध्यम से समाज के सामने प्रश्न किए हैं-

क्या बच्चे, परिवार, समाज और पति स्त्री के बारे में कुछ सोचते हैं? अब स्त्री को एक निर्णय लेना होगा, दरारों से झाँकने से काम नहीं चलेगा। दरवाज़े से बाहर निकलना होगा। अपने ख़त्म होते अस्तित्व के लिए सोचना होगा। अंततः दामिनी के हृदय में जो घोर उहापोह की बेड़ियाँ है उसके बादल छँटते हैं। वह पूर्व प्रेमी सुशांत के साथ चलने तैयार हो जाती है। अपनी बेटी को संदेश देती है-मुझे जीना है, आकाश में उड़ना है, हरी घास पर बैठकर कविता पढ़नी है। वर्षों बाद एक रुग्ण और बुज़ुर्ग महिला को यह अहसास हुआ है कि उसका भी अपना कुछ अस्तित्व है। कहानीकार ने इंगित किया है कि एक माँ के जीवन में उसकी बेटी का सबसे अहम् स्थान होता है।

कहानी की शैली रोचक है। कथोपकथन के द्वारा कहानी आगे बढ़ती है। दरवाज़े शीर्षक अत्यंत सटीक है। वह दरवाज़े के भीतर है, वह दरवाज़े के बाहर है अंततः दरवाज़ा खुलता है। समाज की विडंबनाओं, विसंगतियों को तोड़ना होगा तभी नई संभावनाओं के द्वार खुलेंगे और नई मंज़िल दिखाई देगी।

-मधु रुँगटा भव्या

000

चित्रात्मक भाषा शैली

प्रस्तुत कहानी ''दरवाज़े'' मानों मन के उन दरवाज़ों को खोल देती है जहाँ मर्यादाओं के, समाज की वर्जनाओं एवं रीति-रिवाजों के पर्दे पड़े रहते हैं। कहानी सरस, सुगम एवं बोधगम्य भाषा में लिखी गई है। कहानी के माध्यम से लेखिका ने जीवन दर्शन प्रस्तुत किया है जैसे-''दरवाज़े से बाहर निकालो यामिनी। बाहर की दुनिया, बाहर की हवा, बाहर की धूप, बाहर के लोग, पेड़-पौधे सब तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। देखो बाहर का जगत् कितना ख़ूबसूरत है।'' कहानी प्रेरणादायक है उद्देश्य पूर्ण है जो किसी भी मरणासन्न व्यक्ति में आशा का संचार कर दे। जीवन की व्यथा- कथा, पीड़ा विछोह और वेदना को शब्दों में बहुत ही सुंदरता के साथ व्यक्त कर दिया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीव है। आशुतोष, यामिनी, सुशांत, नीना सभी का चरित्र चित्रण जीवंत-सा प्रतीत हो रहा है।

कहानी की नायिका जो एक भयावह रोग का शिकार है, किस प्रकार अकेलेपन का दंश झेल रही है, मृत्यु को स्वयं के निकट आता देख रही है, इसे लेखिका ने बहुत ही हृदयस्पर्शी तरीक़े से अभिव्यक्त किया है। सुशांत का किरदार उन युवाओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो अपने सच्चे प्रेम को प्राप्त नहीं कर पाते और स्मृतियों को भुलाने के लिए स्वदेश को छोड़कर परदेश में जा बसते हैं। किंतु प्रेम उन्हें प्रिय के पास ही ले आता है। कहानी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है और भी भावुक होती चली जाती है। अन्ततः नायक-नायिका का मिलन पाठकों की आँखें नम कर देता हैं। यामिनी के घर का चित्रण चित्रात्मक भाषा शैली में किया गया है। सुशांत जो अपनी प्रेयसी को जीवन की ओर लौट आने के लिए प्रेरित करता है, उसके वक़्तव्य ''आनंद'' मूवी की याद दिला देते हैं जैसा कि राजेश खन्ना ने आनंद फिल्म में कहा है ''जब तक ज़िंदा हूँ, तब तक मरा नहीं, जब मर गया तब मैं ही नहीं।''

-प्रीति चौधरी''मनोरमा''

बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

000

दबे एहसासों की कहानी

कहानी ''दरवाज़े'' प्यार के रिश्तों में सालों तक दिल के अंदर दबे एहसासों की कहानी है। कहानी में लेखिका ने मानवीय अहसासों को बड़ी ख़ूबसूरती से दर्शाया है। ये साफ संदेश दिया है कि अगर आपकी ज़िंदगी में सिर्फ मौत का ही इंतज़ार रह गया हो, तो समाज और क़रीबी रिश्तेदारों की भी परवाह छोड़ कर मरने से पहले ज़िंदगी को जीने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। हालाँकि ये आसान नहीं होता किसी के लिए भी। इस कहानी की बात करें तो सुशांत के बच्चों ने यह कह कर सुशांत को आज़ाद कर दिया कि पापा की अपनी मर्ज़ी है वे जैसे चाहते हैं अपनी ज़िंदगी जी सकते हैं। लेकिन सुशांत की पत्नी का क्या? बस दो दिन चुप रह कर, नाराज़गी जता कर, फ़ैसले को आसानी से स्वीकार कर लिया? यह थोड़ा हैरत में डालता है। यामिनी की बेटी के अलावा कोई भी रिश्ता न होते हुए सुशांत के साथ जाने का फ़ैसला करना आसान नहीं रहा और सुशांत की पत्नी ने थोड़ा-सा ग़ुस्सा जता कर छोड़ दिया, भले ही सुशांत ने उसके साथ पैंतीस साल बिताए थे। अगर यामिनी के पति स्वर्गीय थे तो, नीना यह क्यों कहती है ''साहब बाहर रहते हैं'' और सुशांत यामिनी को यह क्यों कहता है कि 'वह तुमसे दूर जा चुका है, दुनिया जानती है वह दूसरी औरत के साथ रह रहा है, तुम्हारी कोई

परवाह नहीं सच को स्वीकारती हो न? अब तो अपने बारे में सोचो, वह नहीं लौटेगा।' यहाँ थोड़ा स्पष्ट करने की ज़रूरत लगती है। यामिनी ने यह जो फ़ैसला लिया वह बहुत ही बढ़िया लिया अपने लिए। इंसान जब पूरी ज़िंदगी दूसरों के लिए निकाल देता है और उस पर ख़ुशियों के सारे दरवाज़े बंद हो जाएँ तो अगर संभव हो तो उसे अपने मन का दरवाज़ा खोल लेना चाहिए और ज़िंदगी को बिना किसी से डरे अपने लिए जीना चाहिए फिर चाहे उम्र कितनी भी बची हो। यही संदेश देती कहानी है।

-सीमा शर्मा 'अंशु'

000

एक सशक्त कहानी

प्रस्तुत कहानी 'दरवाज़े' नारी सशक्तिकरण सोच को दर्शाती हुई हृदय को झकझोरती एक सशक्त कहानी है। कहानी का आरंभ जितना रोचक, समाप्ति उतनी ही चमकप्रद, निराली, नई राह दर्शाने वाली। हरेक महिला के जीवन में बहुत सारे अवसर रूपी दरवाज़े खुले मिलते हैं पर कभी माता-पिता, कभी बच्चे, तो कभी समाज के बारे में सोच कर वह नई दिशा में चलना ही नहीं चाहती और लाचारी, बेबसी में मौत के इंतज़ार में जीवन गुज़ारती रहती है। लेखिका ने बहुत ही सुंदर ढंग से इस बात का उल्लेख किया है-

"जो मृत्यु से जितना अधिक डरता है वह जीवन की उतनी अधिक क़द्र करता है।"

लोग बोलेंगे क्या? परिवार सोचेगा क्या? इस दायरे से बाहर निकलना ही नहीं चाहती। पर पुरुष कितनी आसानी से अपनी पत्नी (यामिनी) को छोड़ अलग घर बसा लेता है। सोच का सेहरा क्या केवल नारी के सिर पर ही बँधा होता है? लेखिका ने इस बात को स्पष्ट इंगित किया है। धारा प्रवाह बातें करके खिलखिलाने वाली, प्रकृति प्रेमी नायिका 'यामिनी' की अंत में इतनी दुर्दशा कि सही से बोल भी न पाना, पर फिर भी इस दम घोंटू वातावरण से निकलना ही नहीं चाहती। दिल के दरवाज़े पर जब दिलदार ने पुन: दस्तक दी, तब बड़ी मुश्किल से दरवाज़ा खोल, स्वस्थ तन-मन की कामना लिए, बाहर की दुनिया में आने का साहस जुटा पाई। भाषा सरल, सुगठित और लय में गतिमान है। नायक सुशांत की माँ का अपने घुटन भरे माहौल और पति को छोड़ बेटे के साथ सुदूर इटली में रहने का निर्णय और दूसरी तरफ सुशांत की इटेलियन पत्नी का भी भारत न आने का निश्चय- लेखिका की नारी सशक्तिकरण सोच को उजागर करता है। कहते हैं- पाठक के मन में कहानी समाप्ति का प्रभाव जितना अधिक रहता है वह कहानी उतनी सार्थक।

-ललिता अग्रवाल 'आशना'

संबलपुर, ओड़िशा

000

भाषा शैली सुगठित

प्रेम मनुष्य की सबसे बड़ी ताक़त है जिसके समक्ष वह सदैव सबसे कमज़ोर होता है। हृदय रूपी 'दरवाज़े' से मन में प्रवेश करने वाले को निष्कासित करना आसान नहीं होता। कितना भी समय व्यतीत हो जाए कभी न कभी वही अतीत हमारे समक्ष खड़ा होता है। प्रस्तुत कहानी 'दरवाज़े' मानो चित्रपट पर चल रही है। एक-एक कर दृश्य सामने आ रहे हैं और कहानी आगे बढ़ती जा रही है। कहानी सरल शब्दों में लिखी गई है पाठक हर भाव आसानी से समझता चला जाता है। भाषा शैली सुगठित भावप्रवण है।

नायक बरसों बाद स्वदेश लौटता है आते ही अपनी डायरी ढूँढ़ता है और उसमें ढूँढ़ लेता है एक सबसे जाना-पहचाना नम्बर। समय के साथ कई घटनाओं के लिए हृदय के दरवाज़े हमेशा के लिए बंद कर दिए जाते हैं पर प्रेम के लिए दरवाज़े हमेशा खुले होते हैं।

नायक बरसों बाद अपनी नायिका से मिलने गया...एक सहायिका के भरोसे अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा में नायिका को देख आहत नायक निर्णय लेता है...वह अब समाज, परिवार, बच्चों की परवाह नहीं करता अपने प्यार को वह पुन: जीवन देना चाहता है।

-अपर्णा पोद्दार 'शैलजा'

संबलपुर ओड़िशा

000

झकझोरने वाली कहानी

'दरवाज़े' कहानी उर्मिला शिरीष जी की स्त्री मन को झकझोरने वाली कहानी है। इस कहानी के द्वारा स्त्री के अंतस का जो वर्णन बहुत ही सरलता से किया गया है, वही पाठक को बाँधने में कामयाब होता है। लगता है जैसे वह हर स्त्री के मन से मेल खाता है। एक स्त्री सब के बारे में सोचती है। समाज के बारे में, बच्चों के बारे में, परिवार के बारे में, पति के बारे में, सिर्फ नहीं सोचती तो अपने बारे में। यामिनी- जिसने सारा जीवन परिवार को समर्पित कर दिया अपने प्यार की क़ुर्बानी देकर, समाज में जिसके साथ घर बसाया, वह भी उसका साथ छोड़कर चला गया। एक एकाकी जीवन जीने के लिए मजबूर कर गया। स्त्री मन अपने बारे में न सोचकर हमेशा दूसरों के बारे में सोचकर ही राय बनाता है। प्रेम वह ख़ूबसूरत एहसास है, जो हृदय में एक बार अंकुरित हो तो कोई उसे भुला नहीं सकता। परंतु सुशांत से प्रेम होने के बावजूद यामिनी अपने परिवार में, ज़िम्मेदारियों में रम गई। परंतु उम्र के इस पड़ाव पर उसके साथ कोई नहीं था। कहानी में ख़ूबसूरत मोड़ तब आया, जब उम्रदराज़ होने के बावजूद सुशांत के दिल में उसके लिए जो भी एहसास था, इस एहसास ने सुशांत को मजबूर कर दिया, कि जब यामिनी बिल्कुल अकेली, असहाय, निराश, निर्बल पड़ी हुई है, तब वह उसे उसके अस्तित्व का बोध कराए। और यह भी याद दिलाए कि क़िस्मत के समस्त दरवाज़े कभी बंद नहीं होते। ध्यान से देखने पर, प्रयास करने पर कहीं न कहीं जीवन को ख़ूबसूरत बनाने का एक दरवाज़ा खुल ही जाता है। पर उसके लिए स्वयं के प्रयास की आवश्यकता है। कहानी बहुत ही ख़ूबसूरत है। और अंत तक पाठक को बाँधकर रखती है। लेखिका का बहुत-बहुत आभार स्त्री मन को शब्दों में उतारकर हर पाठक के दिल तक पहुँचाने के लिए। कहानी का आरंभ जितना सशक्त है, अंत भी उतना ही ख़ूबसूरत है।

-रश्मि पाण्डेय शुभि

जबलपुर, मध्य प्रदेश

000

संवेदनशील कहानी

कहानी 'दरवाज़े' बहुत ही संवेदनशील कहानी है। कहानी में लेखिका ने चारदीवारी में दरवाज़े के अंदर अपने-आप को समेट लेने वाली यामिनी, जिसका पति इसे छोड़कर दूसरी औरत के साथ रहने लगता है, जो शादी से पहले उन्मुक्त गगन में उड़ते पंछियों की तरह ख़ुशमिज़ाज और शौकीन हुआ करती थी, उसकी वेदना को दर्शाते हुए यह बताने की कोशिश की है कि सभी को अपनी ज़िंदगी आज़ादी से जीने का हक़ है। लेखिका उर्मिला शिरीष ने कहानी के माध्यम से विशेष कर यह बताने की कोशिश की है कि आज भी औरतें परिवार, पति, समाज, रिश्तेदार, बच्चों के डर से बस अपने आप को चारदीवारी के अंदर क़ैद कर अंदर ही अंदर घुटते हुए कई तरह की बीमारियों का शिकार हो रही हैं। चाहे उसे ससुराल में कितने ही दुख या अपमान क्यों न सहना पड़े, इन सब को बस भाग्य का लिखा मानकर अपना पूरा जीवन मर्यादा नामक चूल्हे में झोंक देती है। क्योंकि बेटियों की परवरिश में सबसे पहली शिक्षा यही तो मिलती है। जैसा कि कहानी में बताया गया है कि कॉलेज के दिनों में सुशांत और यामिनी ने समाज के डर से अपने प्यार की क़ुर्बानी दे दी थी। सुशांत ने अपने पिता का कारोबार, अथाह संपत्ति छोड़कर विदेश में अपनी दुनिया बसा ली। यामिनी ने भी अपना घर परिवार बसा लिया। लेकिन पैंतीस साल बाद अचानक से सुशांत को अपना पुराना प्यार वापस अपने स्वदेश खींच लाता है। जिसमें उसके बच्चों ने उसका यह कह कर साथ दिया कि पापा ने हमारे लिए बहुत कुछ किया है, अब तो इन्हें भी अपना जीवन अपने ढंग से जीने के लिए आज़ाद कर देना चाहिए। स्वदेश आकर वह वही पुरानी वाली चहकती हुई यामिनी की कल्पना कर उससे मिलने चाहता था। लेकिन यामिनी से मिलकर उसे सारी बात का पता चलता है। यामिनी की दशा देख कर उसका मन अत्यधिक दुखी होता है। और काफी समझाने के बाद आख़िरकार यामिनी को अपने साथ एक नया जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। यामिनी भी उसके फिर से अपने सपनों को नया रूप देने के लिए उसके साथ चली जाती है।

-नीलम अग्रवाल "रत्न", बैंगलोर

000

एकांत जीवन की करुण कथा

'दरवाज़े' कहानी एक मार्मिक चित्रण है, जिसमें एकांत जीवन की करुण कथा है। कहानीकार ने कहानी के प्रत्येक दृश्यों को इतनी सादगी और भावनाओं से उकेरा की पाठक पहले चकित होता है, फिर दूसरे ही पल भावुक हो जाता हैं। शुरुआत में जिज्ञासा बढ़ती हैं कि यामिनी कौन होगी क्या अधेड़ लड़की है? या फिर विधवा स्त्री, कहानी के मध्य तक पाठक बहुत सी उधेड़बुन करता बिल्कुल सस्पेंस भरी फिल्म की तरह मगर अंत तक पहुँचते-पहुँचते सारी गुत्थियाँ जैसे पाठक के मन में सुलझने लगती हैं की, यामिनी एकांत वास में स्वयं से और बीमारियों से लड़ रही हैं। पति के धोखे ने उसमें नीरसता भर दी और चपलता, चंचलता, रुचि भाव सब पर जैसे प्रतिबंध लगा दिए। सुशांत पुराना मित्र जो यामिनी को फिर से वही चुलबुली यामिनी बनाना चाहता है और बेरंग ज़िंदगी में फिर रंग भरना चाहता हैं। कुल मिलाकर कहानी भावनाओं का समंदर है जिसमें लहरों के तूफ़ान भी हैं, और शांत शीतल धैर्य का समावेश भी। बहुत ही बढ़िया कहानी है।

-कविता पगारे 'मुक्ता'

000

वर्णन चित्रात्मक

प्रस्तुत कहानी हर उस व्यक्ति को कहीं गहरे छू जाती है, जिसने एकाकीपन की पीड़ा को या तो स्वयं झेला है या किसी अपने को झेलते देखा है। शुरुआत ही बड़ी मार्मिक है कि बंद दरवाज़े की दरारों से कम से कम रोशनी छन कर आ जाती है, किंतु वह सेहत के लिए पर्याप्त नहीं है। व्यक्ति हो या मशीन उसका गतिशील रहना ज़रूरी है जो उसे ज़िंदा रखता है, ऊर्जावान रखता है, चाहे यह ऊर्जा प्रकृति से, किसी शौक से मिले या अपने काम से।

ठहरा हुआ पानी भी दुर्गंध मारने लगता है। सुशांत और यामिनी के रिश्ते का यही हश्र हो चुका था। विवाहेतर जीवन में दोनों के लिए औपचारिक ही था। यामिनी ने तो सारी इच्छाओं के दमन के बाद बीमारी से बिस्तर ही पकड़ लिया था। अपनी पूर्व प्रेयसी को इस हाल में सुशांत देख नहीं पाता और उसे अपने साथ ले जाने को आख़िर राज़ी कर लेता है, यामिनी भी अपनी मृत इच्छाओं को जीवित करने चल पड़ती है, जो बंद दरवाज़े के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं। कहानी की भाषा बड़ी सुरुचिपूर्ण है और वर्णन चित्रात्मक, जो पात्रों को सजीव कर देता है।

-साधना शर्मा, पुणे

000

'दरवाज़े' कहानी के माध्यम से लेखिका उर्मिला जी ने बहुत ही उम्दा तरीक़े से एक कुंठित महिला के मनोभावों को प्रेषित किया है। जीवन में कठिनाइयाँ, उपेक्षाएँ सहने के बाद भी, नारी स्वयं निर्णय लेने में पहले हमेशा हिचकिचाती थी। आज समय परिवर्तित हो रहा है।

नारी हमेशा बच्चे के बारे में सोचती है। पति के बारे में सोचती है, पर जब उनका साथ छूट जाता है, तब भी वह उलझन में रहती है। "लोग क्या कहेंगे" के दायरे में फँसी रहती है।

इस कथानक में नायिका अपनी दबी भावनाओं पर विजय पाकर पुराने दोस्त सुशांत के प्रस्ताव को स्वीकृति दे देती है। सुशांत के निश्छल भाव देखकर वह बंद दरवाज़े से बाहर निकलने को तैयार हो जाती है। कहानी का अंत सुखान्त होने से कहानी पाठक को प्रभावित करती है।

'दरवाज़े' कहानी में उर्मिला जी ने प्रकृति का बड़ा सुंदर चित्रण किया है। उनकी कसी हुई भाषा शैली के कारण कहानी में उदासी नहीं आती। शीर्षक पढ़ते ही कहानी पढ़ने की उत्सुकता जाग्रत हो जाती है। "दरवाज़े की दरार से रोशनी आती है अर्थात् अनेक बार आशा की किरणें जागती हैं परंतु उस आशा को साकार करने का प्रयास न हो तो समय के साथ लुप्त हो जाती हैं। शुरुआत ही बड़ी मार्मिक है कि "बंद दरवाज़े की दरारों से कम से कम रोशनी छन कर आ जाती है, किंतु वो सेहत के लिए पर्याप्त नहीं है।"

"व्यक्ति हो या मशीन उसका गतिशील

रहना ज़रूरी है जो उसे ज़िंदा रखता है, ऊर्जावान रखता है, चाहे यह ऊर्जा प्रकृति से, किसी शौक से मिले या अपने काम से।" तो कहीं लेखिका लिखती हैं "ठहरा हुआ पानी भी दुर्गंध मारने लगता है।"आदि सार युक्त वाक्य पढ़कर मन कहानी को अंत तक पढ़ने उत्सुक हो जाता है।

उर्मिला जी को सुंदर कथानक प्रस्तुत करने के लिए धन्यवाद।

-सुनीता परसाई 'चारु', जबलपुर, मप्र

000

काबिले तारीफ़

कहानी 'दरवाज़े' एक महिला यामिनी और पुरुष सुशांत की है जो युवावस्था में दोस्त थे लेकिन विवाह और अन्य ज़िम्मेदारियों की वजह से दोनों के बीच समय का लंबा फ़ासला आ गया। जब दोनों एक मुद्दत बाद मिलते हैं, यामिनी बिस्तर से लग चुकी है और मात्र एक सहायिका के साथ नाउम्मीद और एकाकी जीवन बिता रही है और जीने की उम्मीद छोड़ चुकी है। लेखिका उर्मिला जी ने एकाकी जीवन की व्यथा को बेहद प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है। तभी सुशांत उसके जीवन में एक बार फिर आता है और उसे अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव दे कर उसे ज़िंदगी जीने का दूसरा मौका देता है। यामिनी के लिए उसके साथ जाने का निर्णय लेना आसान न था। इस बाबत अंतिम फ़ैसला लेते वक़्त उसे समाज, परिवार, बच्चों के ऐतराज़ का ख़याल आया और वह दुविधा में पड़ जाती है लेकिन अंत में वह ज़िंदगी को दूसरा मौका देती है और समाज, नाते रिश्तेदार और परिवार को दरकिनार कर सुशांत के साथ जाने का फैसला लेती है। कहानी का भाषाई सौंदर्य काबिले तारीफ़ है। भाव पक्ष मज़बूत है।

-रेणु गुप्ता, जयपुर

000

भावपक्ष अत्यन्त मज़बूत

कहानी का शीर्षक 'दरवाज़े' अपने आप में सार्थक सिद्ध है जो कि कहानी के माध्यम से मस्तिष्क को झकझोरते हुए जहाँ एक तरफ़, नफ़रत, अविश्वास, झुठ की बुनियाद पर टिके स्वार्थी प्रेम और व्यर्थ रिश्तों के बंधनों के दरवाज़े बंद होते है, वहीं विश्वास से परिपूर्ण, सच्चे और निस्वार्थ प्रेम के बंधनों में गुँथे आत्मीय बंधनों के अनेक द्वार एक साथ खुलते हैं, और कहानी को एकदम नया स्वरूप एवं नई दिशा प्रदान करते हैं। सुशांत और यामिनी का युवा प्रेम, परिस्थितिवश विवाह में परिणित नहीं हो पाता और दोनों के विवाह अन्यत्र हो जाते हैं। विदेश में निवासरत सुशांत अपनी पत्नी व बच्चों की उपेक्षा का शिकार होकर दु:खी है, और स्वदेश लौट आता है। आते ही उसे सर्वप्रथम यामिनी की याद आती है और वह उससे संपर्क करने का मन बना लेता है। यामिनी से मिलकर वह स्तब्ध रह जाता है लकवाग्रस्त, अकेली और व्यथित यामिनी के स्वास्थ्य की देखभाल करने और इस परिस्थिति में भी उसका साथ देने का प्रण करता है। समाज में आते नए बदलाव की शीतल हवा के झौंके के साथ ही एक नई उम्मीद और नए रिश्तों के दरवाज़े चहुँ ओर से खुल जाते हैं। उर्मिला जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज में रिश्तों को एक सराहनीय नवीन स्वरूप प्रदान करने का बढ़िया प्रयास किया है। कहानी का भावपक्ष अत्यन्त मज़बूत है, रोचकता एवं निरंतरता का समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है। इस सुन्दर कहानी के लेखन हेतु कहानीकार उर्मिला शिरीष जी को हार्दिक बधाई!

-कल्पना दुबे, खण्डवा, मध्यप्रदेश

000

जैसे कोई फिल्म

कहानी में अधूरापन लगता है परिपूर्णता नहीं लगती है। ऐसा लगता है जैसे कोई फिल्म देख रहे हों, हमें इसे तीन घंटे में सुखद अंत के साथ ख़त्म करनी हो, किसी भी पात्र को कहीं से उठा कर कहीं डाला जा रहा है नाटकीय अंदाज़ में कहानी पूरी करनी है।

कहानी की शुरुआत बहुत सुंदर ढंग से होती है। एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को अधिकार पूर्वक समझाने की कोशिश करता है। एक नारी का दर्द उभर कर सामने आता है। एक बीमार व लाचार स्त्री यामिनी जिसे पति द्वारा छोड़ दिया गया है। एक बेटी है, जो आती जाती रहती है। यामिनी अपनी काम वाली बाई नीना के ही सहारे है। कहानी का नायक सुशांत अचानक से फ़ैसला लेता है, विदेश में बसा बसाया घर परिवार पत्नी को छोड़कर भारत जाने का निर्णय लेता है।

कुछ वर्ष पहले वह अपने पिता का कारोबार छोड़ कर विदेश में बस गया था, पिता को जब उसकी ज़रूरत होती है तब भी वह नहीं आता है, अपना जीवन सुखपूर्वक जीता है अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् भारत जाने का निर्णय लेता हैं। भारत आने पर उसे अपनी प्रेमिका की याद आती है इतने वर्षों में कोई संपर्क नहीं करता है फिर कहीं से उसके घर का नंबर ढूँढ़ कर घर पहुँचता है, उसकी दयनीय स्थिति देख कर प्रशांत को अपराधबोध होता हैं। प्रशांत यामिनी को समझाकर उसके लिये एक नया दरवाजा खोलता है। कहानी का एक सुखद अंत है परंतु प्रशांत पहले अपनी प्रेमिका फिर अपने पिता व अंत में अपनी पत्नी को अधर में छोड़ कर सिर्फ अपने स्वार्थ की पूर्ति करता सा महसूस होता हैं।

-उमा चौरे, इंदौर

000

सुंदर और सार्थक विषय

कहानी में कहानीकार ने सुशांत और यामिनी दो प्रेमियों का आपसी प्रेम व अंतरंग भावनाओं को चित्रित किया हैं। विशेषत: एक स्त्री की संवेदनाएँ, इच्छाएँ और आकांक्षाओं को प्रभावशाली ढंग से उभारा है। सुशांत, यामिनी से बेहद मोहब्बत करता था। सुशांत को यामिनी की विभिन्न विषयों पर अविराम बोलने की आदत और हँसी ठहाके अच्छे लगते थे। सुशांत पार्क में घंटों बैठकर उपन्यास पढ़ते हुए यामिनी का इंतज़ार करता। देर से आने के बाद यामिनी बख़ूबी बहाने बना लेती थी। कहानी में आगे बताया है कि सुशांत को अपने पिता के अच्छे ख़ासे बिज़नेस से रुचि नहीं रहती बल्कि वह इटली में एक अच्छी नौकरी करता है। वहीं की लड़की से शादी भी कर लेता है। इटली में लगभग डेढ़ दशक बाद तमाम तरह के भोग-विलास का सुख लेने के पश्चात उसे अपने वतन और शहर की याद सताने लगती है। उसकी माँ भी

उसके साथ ही रहती थी। माँ की मृत्यु के बाद उसे अपने आलीशान भवन में कदापि अच्छा नहीं लगता। उसका दिल वहाँ नहीं लगता बल्कि उसे बारंबार अपने शहर जाने की तीव्र इच्छा जागृत होती है। असमंजस की स्थिति में अंततोगत्वा वह कड़ा दिल कर अपनी पत्नी को अपने मन की बात कहता है। यह सुनकर उसकी पत्नी दो दिन ख़ामोश रही, थोड़ी नाराज़ हुई लेकिन उसने सुशांत के साथ चलने की हामी नहीं भरी। बच्चों ने भी कहा पापा की जैसी मर्ज़ी, उन्हें उनकी ज़िंदगी जीने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। सुशांत का मन हवा की तरह हल्का होकर उड़ने लगा था। अगले ही दिन वह हवाई जहाज़ से अपने देश और शहर के लिए रवाना हो जाता है। अपने घर वापस पहुँचने के बाद सबसे पहले वह अलमारी में रखी पुरानी डायरी ढूँढ़ता है जिसमें फ़ोन नंबर्स लिखे रहते थे। उसमें यामिनी का फ़ोन नंबर खोज वह उसे फ़ोन करता है। यामिनी की याद उसे बेहद सता रही थी और उससे मिलने की अति तीव्र अभिलाषा थी। फ़ोन पर यामिनी से बातचीत के माध्यम से उसका पता पूछ दूसरे दिन उसके घर पहुँच जाता है। यामिनी से मिलने पर उसे पता चलता है कि उसका ब्रेन हेमरेज हो गया था। जुबान लड़खड़ाती है एक साइड का हिस्सा पैरालेटिक अटैक में आ गया था। यामिनी की दशा देखकर सुशांत को अंदर ही अंदर अत्यंत दु:ख और पीड़ा होती है। यामिनी की देखरेख करने वाली सहायिका नीना, सुशांत को बताती है कि "मैडम को दो बार हॉस्पिटल में रहना पड़ा था। एक बार बीस दिन और दूसरी बार एक महीना। दिमाग़ का दौरा पड़ा था। ब्रेन हेमरेज।" सुशांत अपनी प्रेमिका की हालत का दोषी ख़ुद को मानता है। वापस घर आकर भी सुशांत बेहद बैचेन रहता है। बारंबार यामिनी का कमरा, पलंग और उस पर लेटी यामिनी की छवि उसके सामने आती है। चौथे दिन सुशांत यामिनी के घर पहुँच उसके समक्ष खड़ा हो जाता है और उसे चलने के लिए कहता है। यामिनी के मना करने के बाद भी वह उसे समझता है कि तुम अकेली हो, तुम्हारा पति आशुतोष तुमसे दूर जा चुका है। उसे तुम्हारी तनिक भी परवाह नहीं। वह दूसरी औरत के साथ रह रहा है। तुम्हें अपनी तबीयत का ख़्याल करना पड़ेगा। बाहर की दुनिया, बाहर की हवा, बाहर प्रकृति के पेड़ पौधे सब तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। तुम्हें इन सब से पहले भी बहुत प्यार था। तुम्हें कविता की भाषा पसंद थी तो लौट आओ कविता की दुनिया में। वह पैंतीस साल पहले वाला सुशांत बन गया। बीच का समय उसने शून्य में बदल दिया।

सुशांत की बातों से अपना मन अंतत: मज़बूत कर यामिनी व्हील चेयर पर बैठ सुशांत के द्वारा लाई हुई गाड़ी में बैठ जाती है और अपनी बेटी को मैसेज करती है कि तुम्हारी माँ को आज पहली बार, वर्षों बाद यह एहसास हुआ है कि उसका अपना भी जीवन हुआ करता था, उसका भी अस्तित्व था, उसके भी अपने सपने थे, उसमें भी आकाश को छूने की क्षमता थी, वह भी आज किसी फील्ड में काम कर रही होती, लेकिन कभी अपने बारे में कोई निर्णय नहीं ले पाई थी। आज मेरा मन कह रहा है कि अब उसका भी अपना निर्णय हो सकता है! इसी उम्मीद में जा रही हूँ। मन, हृदय व आत्मा पर वर्षों से पड़ा जो बोझ है उसे उतार फेंकना है। उम्मीद है तुम मेरा साथ निभाओगी- तुम्हारी माँ।

यहाँ कहानी का समापन है साथ ही साथ कहानीकार ने पाठक गणों को सोचने पर बाध्य कर दिया है। स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता, संवेदनाएँ और इच्छाएँ रहती हैं, वह परिस्थितियों के कारण दब जाती है। स्त्रियों की आंतरिक इच्छाएँ, आकांक्षाओं और संवेदनाओं को दरवाज़े कहानी के माध्यम से उर्मिला जी शिरीष ने बखूबी चित्रित किया है। वे निस्संदेह प्रशंसा की हक़दार हैं। कहानीकार उर्मिला शिरीष को हार्दिक बधाई एवं असीम शुभकामनाएँ। संयोजक गोविन्द शर्मा का आभार जो आपने एक सुंदर और सार्थक विषय पर आधारित कहानी प्रेषित की और हमें पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। बहुत बहुत धन्यवाद।

-राकेश दवे नासिक

000

कहानियों से समृद्ध अंक

जनवरी-मार्च 2025 अंक कहानी विशेषांक है, अत: केवल कहानियों पर ही बात करूँगा। पर पहले विचारोत्तेजक संपादकीय तथा आख़िरी पन्ने पर कुछ। वर्तमान परिस्थितियों के चलते सुधा जी ने सही आकलन किया है कि 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना समाप्त हो रही है और भीषण युद्धों की विभीषिका में निर्दोष जन ही मारे जा रहे हैं।

कहानियों में सर्वप्रथम उर्मिला शिरीष की 'दरवाज़े' प्रभावित करने वाली शैली में रची इस कहानी का अंत बहुत ही सुंदर व सकारात्मक बन पड़ा है। लक्ष्मी शर्मा की कहानी 'एक धड़कन....,' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक उलझी हुई किंतु रोचक कथा है जिसमें अति-आधुनिक पीढ़ी की उन्मुक्तता झलकती है। डॉ. रमाकांत शर्मा की सीधी सादी शैली की कहानी 'किसी और मिट्टी...' में वृद्धा चाची का पात्र तो आँखें भिगो देता है।

रंजना अनुराग की 'मैं तुम्हें गाता रहूँगा' में अस्पताल में असंवेदनशील डॉक्टरों की हड़ताल और प्राइवेट डॉक्टरों की लापरवाही और क्रूरता पर ध्यान केंद्रित हुआ है। विवेक द्विवेदी की दस्तूर में बाबुओं की असंवेदनशीलता तथा भ्रष्टाचार रोंगटे खड़े करने में सक्षम है। विनीता राहुरीकर की कहानी में वयोवृद्ध पिता, रिटायर्ड पिता, अधेड़ पुत्र, तथा पोते शिशु की एक ऐसी लड़ी है, जिसका वर्णन एवं चित्रण अत्यंत हृदयस्पर्शी है। छाया श्रीवास्तव की कहानी में टीनएजर रीना का मनी संग प्रेमानुभव रीना के बसों व अन्य स्थानों पर गंदे व्यवहार से कितना भिन्न व सुखद है अंत में ज्ञातव्य है। अंतिम कहानी 'प्रायश्चित' में मुक्ति की चाह रखने वाले पति का प्रायश्चित तब होता है जब वह एक अकेली रात पड़ोसिन से कन्नी काट कर अपने लेखक को बचा लेता है। इस तरह यह विशेषांक विविध अनुभवों की कहानियों से समृद्ध हुआ है। सभी लेखकों को बधाई।

- अमृतलाल मदान, 1150/11, प्रोफेसर कालोनी, कैथल, 136027

मोबाइल-9466239164

000

साक्षात्कार

साहित्य और टीवी या फ़िल्मों के लिए लेखन में ज़मीन-आसमान का अंतर है

कहानीकार-उपन्यासकार जयंती रंगनाथन से आकाश माथुर की बातचीत

जयंती रंगनाथन
एक्ज़ीक्यूटिव एडिटर- हिन्दुस्तान
आकृति बिल्डिंग
सी-164, सेक्टर 63
नोएडा 201301, उप्र
मोबाइल- 9958112220
ईमेल- jagjayanti@gmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर, मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

जयंती रंगनाथन विगत तीन दशकों से मीडिया और लेखन में सक्रिय हैं। 6 उपन्यास (आसपास से गुज़रते हुए, खानाबदोश ख़्वाहिशें, औरतें रोती नहीं, एफ़ओ ज़िंदगी, शैडो, मैमराजी) 4 कहानी संग्रह (एक लड़की दस मुखौटे, गीली छतरी, रूह की प्यास, मिडिल क्लास मंचूरियन), 3 संपादित संग्रह (थर्टी शेड्स ऑफ बेला, कामुकता का उत्सव, तन पिंजड़ा मन बावरा) और संस्मरणात्मक उपन्यास बॉम्बे मेरी जान, बच्चों के लिए विशेष काम- नॉवेल सोने की ऐनक पर चिल्ड्रेन फिल्म डिविज़न द्वारा फिल्म का निर्माण, पिट्टू के दोस्तों का जवाब नहीं, भाग सनी भाग आदि प्रकाशित। मुंबई में धर्मयुग और सोनी एंटरटैनमेंट टेलिविजन में काम करने के बाद दिल्ली आईं वनिता पत्रिका में बतौर संपादक बन कर। इसके बाद इन्होंने अमर उजाला में फीचर संपादक का पद सँभाला। वर्तमान में वे हिंदुस्तान अख़बार में एक्ज़ीक्यूटिव एडिटर के पद पर कार्यरत हैं। मीडिया लेखन के साथ ही उपन्यास, सीरियल, पटकथा और ऑडियोबुक लेखन में निरंतर सक्रिय और कई पुरस्कारों-सम्मानों से नवाज़ी जा चुकीं जयंती के उपन्यास शैडो पर चैप्टर 2 नाम से फिल्म भी निर्माणाधीन है।

चर्चित पॉडकास्टर एचटी स्मार्टकास्ट और spotify पर नियमित पॉडकास्ट #लवयूज़िंदगी और #मेरीमम्मीकीलवस्टोरी

आकाश: सबसे पहले तो आपको आपके नए कहानी संग्रह "मिडिल क्लास मंचूरियन" के लिए शुभकामनाएँ। किताब का शीर्षक जिस कहानी से लिया गया है। हम उसके बारे में ही जानना चाहेंगे कि इस कहानी के हर पात्र को हम अपने आसपास देख सकते हैं, पर हीरा जैसे पात्र कहाँ मिलते हैं।

जयंती: बहुत धन्यवाद। मिडिल क्लास मंचूरियन के हीरा को दरअसल मैंने बहुत नज़दीक से देखा है। मेरा बचपन भिलाई में गुज़रा। मेरे अप्पा भिलाई स्टील प्लांट में इंजीनियर थे और हम सब कंपनी के क्वाटर्स में रहते थे। हमारे घरों के पीछे सर्वेंट क्वाटर हुआ करता था। हमारे पड़ोस में कुछ दिनों के लिए खन्ना अंकल, मैं बच्ची थी तो उन्हें इसी नाम से बुलाती थी, रहने आए। उनकी नई-नई शादी हुई थी। उनकी पत्नी माया अकसर हमारे घर आती थी, अम्मा के हाथ का बना साउथ इंडियन खाना खाने के लिए। जब वह प्रेग्नेंट हुईं तो अक्सर अम्मा से रसम बनाने की फरमाइश करती और मैं ही एक स्टील के भगौने में रसम ले कर उनके घर जाती थी देने। उनके घर काम करती थी उड़ीसा की सरो। वह अपने पति बुद्धू राम के साथ सर्वेंट क्वार्टर में रहती थी। छोटे कद की मज़ाकिया सी औरत थी सरो। उसके तीन बच्चे थे, एकदम अपने बाप की तरह साँवले और ठिगने से। फिर माया आंटी मायके चली गई डिलीवरी के लिए। खन्ना अंकल ने ही बताया कि प्रेग्नेंसी में दिक्कत आ गई थी। बेटा हुआ तो, पर बहुत कमज़ोर है। उसे तीन महीने तो अस्पताल में ही रखा जाएगा। इस तरह से माया आंटी को वापस भिलाई लौटने में लगभग एक साल लग गया।

इस बीच हम सबने देखा कि सरो भी प्रेग्ननेंट हो गई है। एक दिन सुबह-सुबह हमारे घर काम करने वाली महरी शुभा ने फुसफुसाते हुए अम्मा को बताया कि ग़ज़ब हो गया। सरो का बेटा हुआ है, पर एकदम झक गोरा है और आँखें भी कंजी और हरी सी हैं। धीरे-धीरे यह बात आग की तरह पूरे मोहल्ले में फैल गई कि सरो का बेटा खन्ना अंकल की तरह क्यों दिख रहा है?

मैं बच्ची थी। समझ नहीं आया कि इस बात पर सब मुँह छिपा कर क्यों हँस रहे हैं। और बुद्धू इतना ख़ुश कैसे है। अपने बेटे को क्या सोच कर गले लगा रहा है और खिला रहा है। ख़ैर माया जब भिलाई वापस आई और सरो का बेटा देखा तो रातों रात अपने सींकिया से साल भर के बेटे को उठा कर अगले ही दिन अपने मायके लौट गई। इसके कुछ दिनों बाद खन्ना अंकल ने भी

अपना घर बदल दिया। सरो का यह गोरा बेटा अपने भाइयों के साथ गंदगी में लोटता था, बदमाशियाँ करता था और अपने पर हँसने वालों को गाली देता था।

यहीं से मेरे दिमाग़ में हीरा का किरदार आया। बचपन की याद रह गई थी, किसी कोने में। फिर कहानी के किरदारों को खाद-पानी ऐसे ही तो मिलता है।

आकाश: आपकी कहानियाँ समय से पहले लिख दी गई हैं। "चौथा मुसाफ़िर" को पढ़ कर कुछ ऐसा ही लगता है। पात्र ज़्यादा बोल्ड और मुखर होते हैं। इसका क्या कारण है। और इन पात्रों ने कभी आपको परेशान किया।

जयंती: मेरे पात्र और कहानियों के प्लॉट समय से पहले या बाद के नहीं होते। मैं आस-पास जो देखती हूँ, जिस ज़िंदगी को जिया और अब जी रही हूँ, उसी ज़िंदगी को कहानी में उकेरती हूँ। चौथा मुसाफ़िर की नायिका बोल्ड है। वह अकेले बर्फ़ीले मौसम में तीन और पुरुष मुसाफ़िरों के साथ ट्रेकिंग करने आती है, पर उसके आने के पीछे एक रहस्यमयी कहानी है। वह उन तीनों से कुछ मदद चाहती है, और बदले में अपना शरीर देने का प्रस्ताव रखती है। इस कहानी में नायिका ऐसा करती नहीं है। जबकि अपने आसपास मैंने जिस क़िस्म की बिंदास और बोल्ड युवतियों और स्त्रियों को देखा है, वे तो इस किरदार से दस क़दम आगे हैं। मैंने हमेशा शहरी ज़िंदगी जी। मुंबई और दिल्ली में मीडिया में नौकरी के चलते अपनी शर्तों पर अपनी तरह से रहने वाली कई ताक़तवर स्त्रियों से सामना होता रहता है। इन पात्रों ने मुझे कभी परेशान नहीं किया। बल्कि ये किरदार तो मुझे चुहलाते रहते हैं, मुझसे कुछ नया करवाते रहते हैं। सच कहूँ तो मुझे सामान्य औरतों के बारे में नया लिखने लायक कुछ नज़र नहीं आता। इतना कुछ लिखा जा चुका है, कहा जा चुका है उनके संघर्ष के बारे में। फिर आप यह भी तो देखिए कि पिछले दो दशकों में स्त्रियाँ कितनी बदली भी तो हैं। सिर्फ महानगरों की ही नहीं, छोटे शहरों की भी। उनकी महत्त्वकांक्षाएँ बदली हैं, सोच

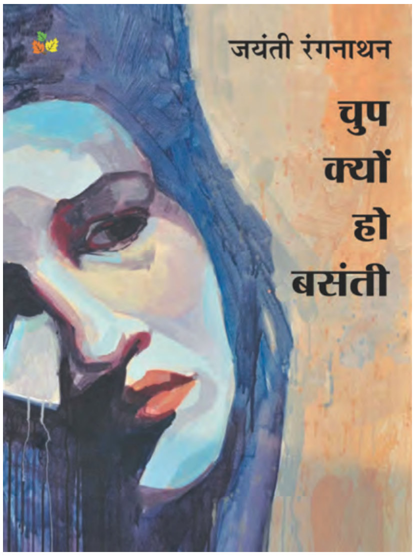

बदली है। अब वे जब अपनी ज़िंदगी के बारे में सोचती है तो शादी, पति और परिवार से पहले ख़ुद को रखती हैं। अपनी चाहतों के बारे में खुल कर बात करती हैं। तो इस परिवर्तन को अनदेखा तो नहीं किया जा सकता न।

आकाश: आपके सभी तो नहीं पर कुछ पात्र फ़िल्मी लगते हैं। यह किस प्रभाव के कारण है या यह स्वत: ही होता है।

जयंती: फ़िल्मी तो नहीं कहूँगी। हाँ, अतिरंजना या कुछ पात्र ओवर द टॉप हो सकते हैं। ख़ासकर मिडिल क्लास मंचूरियन की कहानी काली टाई वाली औरत की नायिका। मैंने जान कर ऐसा चरित्र गढ़ा। वह जो काम करती है, उसके लिए नाटक ज़रूरी है। मैं मुंबई में एक मराठी लोक गायिका का इंटरव्यू करने गई थी। वह घर में भी लावणी में ख़ूब मेकअप के साथ लकदक सजी हुई थी। बातचीत भी ऐसे कर रही थी जैसे वी शांताराम की कोई लावणी नृत्यांगना नायिका हो। मैंने उनसे पूछ लिया कि असल ज़िंदगी में भी क्या वह ऐसे ही रहती हैं? तो बहुत भावुक हो कर जवाब दिया था उन्होंने, अगर मैं सामान्य औरत की तरह सूती साड़ी, बिना मेकअप और तेल चुपड़े बालों में रहूँ तो मुझे कौन पूछेगा? मुझे अपने आसपास रहस्य बना कर रखना पड़ता है। तभी मेरी वैल्यू बढ़ती है। तो कुछ किरदार अपनी वैल्यू बढ़ाने के लिए फ़िल्मी होने की माँग करते हैं। आप देखिए, फ़िल्म तारिका रेखा किस तरह रहती है? वह अपने आपको आज भी एक दीवा की तरह प्रोजेक्ट करती है, देव आनंद का अपना स्टाइल था। कई नेता हैं, जो निजी जीवन में भी उसी तामझाम से रहते हैं, बोलते हैं।

आकाश: बैंक की नौकरी, फिर टेलीविज़न के लिए काम करना और फिर पत्रकारिता, ये आम महिला के निर्णय हैं या लेखिका के। और एक लेखिका ख़ुद के लिए क्या होना ज़्यादा पसंद करती है।

जयंती: बैंक की नौकरी के पीछे भी एक कहानी है। मैं दक्षिण भारतीय हूँ। पिता एक्सीडेंट में जल्दी चल बसे। हम चार भाई-बहन हैं। अम्मा ने हम सबको यही सिखाया कि अपनी ज़िम्मेदारी जल्द से जल्द ख़ुद उठानी है। बड़ी बहन इंजीनियर बन गई। मुझे लगता था कुछ ऐसी पढ़ाई करूँ जिससे जल्द से जल्द नौकरी मिल जाए। मैंने बीकॉम किया। फिर आगे की पढ़ाई के लिए मुंबई आ गई। एमकॉम करते हुए बैंक की परीक्षा की तैयारी करने लगी। हमारे सामने आज से चार दशक पहले बहुत सारे विकल्प भी नहीं थे। मैं बचपन से कहानियाँ लिखती थी। मेरी पहली कहानी धाँसू के आँसू लोटपोट में जब छपी, मैं बारह साल की थी। इससे यह तो पता था कि कहानियाँ छपने पर पारिश्रमिक मिलता है और उस समय पैंतालिस रुपये बहुत होते थे। पराग में छपने पर तो डेढ़ सौ से दो सौ रुपये मिलते थे। तो मैंने यही सोचा कि बैंक में नौकरी करूँगी और अपने शौक के लिए लिखा करूँगी। मुझे मुंबई में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में नौकरी मिल गई। ठीक उसी समय टाइम्स ऑफ इंडिया ने प्रशिक्षु पत्रकारों की भर्ती का एक विज्ञापन निकाला। भाई ने वह एड देखा और मुझसे कहा कि देख, यह तेरे क़िस्म की नौकरी है। और इन्हें जो कुछ चाहिए, वह तेरे पास है। इतनी सारी कहानियाँ छपी हैं, लेख छपे हैं, उनकी कटिंग निकाल और आवेदन कर दे। मैंने ज़्यादा कुछ सोचा नहीं और अप्लाई कर दिया। जब रिटर्न टेस्ट के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया से बुलावा आया, तब उस बिल्डिंग में घुसते हुए मुझे लगा मैं किसी नई दुनिया में आ गई हूँ। अख़बार और किताबों की ख़ुशबू। मैं पहले रिटन टेस्ट में पास हो गई और उसी दिन दोपहर को इंटरव्यू

हुआ। मैं घर लौट आई और बैंक की नौकरी पर जाने लगी। दो महीने बाद मुझे टाइम्स ऑफ इंडिया से फ़ाइनल इंटरव्यू का बुलावा आया। इस इंटरव्यू में मैं पहली बार धर्मयुग के संपादक डॉ. धर्मवीर भारती से पहली बार रू-ब-रू हुई। मैं उस समय बीस साल की थी। छोटे शहर की एक उत्साही लड़की। मेरा वह इंटरव्यू मज़ेदार रहा। भारती जी ने मेरे लिखे लेख और कहानियाँ देखीं, टेस्ट वाला पेपर भी देखा फिर मुस्कराते हुए बोले, तुम बस नाम की तमिल हो या बोलती-वोलती भी हो। मैंने उन्हें तमिल में इसका जवाब दिया और वे ठठा कर हँसने लगे।

अगले ही हफ्ते मुझे वहाँ से नियुक्ति पत्र मिल गया। अब असमंजस यह कि बैंक की नौकरी छोड़नी थी, पर उस समय भी बतौर ट्रेनी मुझे बैंक से अधिक पैसे मिल रहे थे। मेरी अम्मा ने कहा, तुम्हें जो पसंद हो करो। पर रिश्तेदार थे कुछ, वे नाराज़ हो गए कि पत्रकारिता कोई कॅरियर नहीं है। लड़कियों के लिए तो बिल्कुल नहीं। बैंक की नौकरी करोगी तो अच्छे घर में शादी हो जाएगी, अपना घर ले सकोगी वग़ैरह। मुझे अच्छी लड़की नहीं बनना था। मैं अड़ गई कि मीडिया में जाऊँगी।

ठीक चालीस साल पहले मैंने यह निर्णय लिया था। सच कह रही हूँ, मुझे आज तक अपने इस निर्णय पर कभी अफ़सोस नहीं हुआ। न स्त्री जयंती को न साहित्यकार जयंती को। मैंने पत्रकारिता का स्वर्णिम युग देखा है। धर्मयुग जिन दिनों देश की अग्रणी पत्रिका हुआ करती थी और हर सप्ताह इसकी पाँच लाख प्रतियाँ बिकती थीं, मैंने वहाँ काम किया। रोज़ जब मैं टाइम्स ऑफ इंडिया के ऑफ़िस की सीढ़ी पर क़दम रखती, गर्व की अनुभूति होती। मेरा हिन्दी के प्रति प्यार, संस्कार सब वहीं से शुरू हुआ।

आकाश: अधिकतर लेखक काव्य से गद्य की ओर आते हैं, आपने पहले कविताएँ लिखी या कहानियाँ?

जयंती: मैंने कहानियों से ही लिखने की शुरूआत की। चलिए आपको इसके शुरुआत की कहानी बताती हूँ। भिलाई आज से पचासेक साल पहले छोटा सा शहर था। कॉस्मोपॉलिटिन। हमारे आसपास हर तरह के लोग रहते थे। ज़्यादातर हिन्दी भाषी। मेरे अप्पा का परिवार सालों से जमशेदपुर में आ कर बस गया था, इसलिए अप्पा की तरफ़ के सब रिश्तेदार हिन्दी अच्छी बोलते थे। फिर भिलाई की परवरिश। मेरे अप्पा का जब एक्सीडेंट हुआ, मैं आठ साल की थी। इसके बाद वह छह साल तक बिस्तर पर रहे। हमारे परिवार के लिए वे संघर्ष भरे दिन थे। अप्पा व्हीलचेयर पर बस दो घंटे के लिए ऑफ़िस जाते, उन्हें आधी तनख़्वाह मिलती, दवाइयों पर ख़र्च और अस्पताल आना-जाना। गर्मी की छुट्टियों में हम दूसरे बच्चों की तरह कहीं नहीं जा पाते। तो अम्मा और अप्पा ने इसका तोड़ निकाला। उन्होंने हम चारों भाई-बहन को किताब की लाइब्रेरी का सदस्यता ले दी, जहाँ से हम रोज़ एक पत्रिका और एक उपन्यास घर पर ला कर पढ़ सकते थे। मेरा पूरा बचपन ख़ूब पढ़ते हुए गुज़रा, हर क़िस्म का साहित्य, बच्चों की पत्रिकाएँ, बड़ों की पत्रिकाएँ, तमाम कॉमिक्स और उपन्यास। अंग्रेज़ी की भी और हिन्दी की भी। अम्मा तो ख़ैर अंग्रेज़ी, हिन्दी के अलावा तमिल और मलयालम में भी पारंगत थीं। तो ऐसे ही एक दिन अम्मा ने कहा कि तुम सब कुछ रचनात्मक काम करना शुरू करो। लिखो, ड्राइंग बनाओ और कुछ और। मैंने अम्मा की बात को गंभीरता से लेते हुए कहानी लिखना शुरू किया। दस साल की रही होऊँगी। पहली कहानी लिखी, छह महीने की चाबी। अप्पा ने ही अपने बचपन में एक मास्टर और जादूगर का क़िस्सा सुनाया था। मैंने दिन में वह कहानी लिखी और शाम को सबको पढ़ कर सुनाई। अप्पा कहानी सुन कर ख़ूब ख़ुश हुए, बोले, मेरी बेटी तो राइटर है। मेरे लिए यह बहुत बड़ी बात थी। अप्पा ने ही अगले साल गर्मी की छुट्टियों में उत्साह बढ़ाया कि अपनी लिखी कहानी लोटपोट में भेजो। मैंने भेजा और महीने भर के भीतर कहानी छप गई। तो मैंने शुरू से गद्य ही लिखा। टीनएज में कुछ कविताएँ लिखीं ज़रूर, कॉलेज के किसी आयोजन में पढ़ा भी। पर मैंने कभी अपने आपको कवि नहीं माना। लिखती आज भी हूँ कविताएँ, पर आज भी अपने को कवि नहीं मानती। मेरा कोर उपन्यास और कहानियाँ ही लिखना है। और हाँ लेख और रिपोर्ताज भी, जो अपनी नौकरी में लगातार करना पड़ता है।

आकाश: आपकी कहानी के पात्र तो साधारण होते हैं, लेकिन उनके कथन और कार्य असाधारण। वे अंत तक आते-आते चौंका जाते हैं। जो कहानी को रोचक बनाते हैं। ऐसा क्यों है, क्या यह कहानी की माँग होती है या पात्रों के अनुसार कहानी होती है।

जयंती: पात्र तो वही होंगे न, जो हमारे आसपास और हमारे समाज के हैं। मेरी दिक़्क़त है कि मुझे सीधी लीक पर चलने वाले किरदार नहीं रुचते। मेरी सोच में ही ऐसे किरदार और कहानी के प्लॉट आते हैं जो अलग हों। मैं ख़बरों से कहानी के प्लॉट लेती हूँ या देखी-भाली स्थितियों से, वे जो बातें रोज़ होती हैं, आम हैं उन पर क्या ही कहानी लिखूँ? मुझे मज़ा आता है अनदेखे रास्तों पर चलना। कुछ ऐसा कहना या लिखना जिससे ख़ुद चौंक जाऊँ।

आकाश: आपके समकालीन लेखकों की कौन सी ऐसी कहानियाँ हैं, जो आपको हमेशा याद रहती हैं।

जयंती: मैं पढ़ती बहुत हूँ। मेरा काम भी कुछ ऐसा है। बहुत सी कहानियाँ पढ़ने के बाद ज़हन में छाप छोड़ जाती हैं। पुरानों की बात करूँ तो सबसे पहले शिवानी के उपन्यास कृष्णकली की नायिका ने गहरी छाप छोड़ी थी। उस किरदार में नायिकोचित कोई गुण नहीं था। वह साँवली थी, बिंदास थी, चोरी करती थी, अपनी सुविधा से आदमियों से रिश्ता बनाती और आधुनिक थी। पर उसके भीतर जो संवेदनशील युवती थी, डरी सी, इनसेक्योर सी, वह बात मुझे अंदर तक छू गई। मैंने पाया है कि मुझे ऐसे ही किरदार लुभावने लगे जो अलग थे। मुझे चाँद चाहिए कि वर्षा हो या कुरु कुरु स्वाहा की पहुँचेली। मुझे सस्पेंस, थ्रिलर और एडवेंचर बहुत पसंद हैं। अंग्रेज़ी में सलमान रुश्दी की मिडनाइट चिल्ड्रेन पढ़ कर अभिभूत रह गई थी कि कुछ ऐसा भी लिखा जा सकता है। ग्रेगरी रॉबर्ट का

उपन्यास शांताराम पढ़ कर भी ऐसा ही कुछ लिखा था। अगाथा क्रिस्टी, अयान रेंड को ख़ूब पढ़ा है। बचपन में नॉवल्स पढ़ने की शुरुआत सुरेंद्र मोहन पाठक के जासूसी उपन्यासों से की। हम सबको वे बहुत पसंद हैं। फिर मैंने शिवानी को ख़ूब पढ़ा। निर्मल वर्मा, मनोहर श्याम जोशी मेरे पसंदीदा उपन्यासकार थे।

समकालीन में मुझे धीरेंद्र अस्थाना, प्रभात रंजन, मनीषा कुलश्रेष्ठ, पंकज सुबीर, सत्य व्यास, दिव्यप्रकाश दुबे, गीताश्री, नीलिमा शर्मा की लेखनी पसंद है। मेरे लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी है प्रवाहमय भाषा और कथन। हाँ, थोड़ा सा नयापन भी ज़रूरी है।

आकाश: टेलिविज़न और फ़िल्मों के लिए लेखन करने और साहित्य के लिए लेखन में क्या अंतर है और आपको क्या पसंद है?

जयंती: साहित्य और टीवी या फ़िल्मों के लिए लेखन में ज़मीन-आसमान का अंतर है। फिर से आपको एक क़िस्सा बताना चाहती हूँ। मैंने नौ साल धर्मयुग में काम किया। इसके बाद मैंने तय किया कि अब अपना माध्यम बदलूँगी। वह दौर था टेलिविज़न चैनलों का, जो धड़ाधड़ खुल रहे थे। मुंबई में मनोरंजक धारावाहिकों के लिए बड़ा बाज़ार बन रहा था। सोनी चैनल खुलने वाला था। मुझे वहाँ नौकरी मिल गई। आइडियेशन मैनेजर की। मैं वहाँ इन हाउस धारावाहिक भी लिखती थी। मुझे लिखने का पहला काम मिला एक रोमांटिक सीरियल का। मुझे सत्ताइस मिनट की प्रेम कहानी का एपिसोड तैयार करना था। मैंने जी-जान लगा दिया। अपना पांडित्य, लालित्य सब उड़ेल दिया। कुछ ऐसे कि भारती जी पढ़ें तो शाबाशी दें। मैं उस समय समझ नहीं पाई कि मैं पढ़ा नहीं रही, दिखा रही हूँ। एपिसोड लिखने के बाद सुनने के लिए मीटिंग रूम में निर्देशक, एग्ज़ीक्यूटिव प्रोड्यूसर और कुछ लोग इकट्ठा हुए। मैंने पढ़ना शुरू किया और मेरे निर्देशक ने हँसना। मैं समझ नहीं पाई कि यह कोई कॉमेडी सीरियल तो है नहीं, रोमांटिक सीरियल है। फिर ये क्यों हँस रहे हैं इतना। उन्होंने मुझे बीच में टोका नहीं। पूरा पढ़ने के बाद जब मैं रुकी तो अपनी हँसी दबाते हुए उन्होंने कहा, जयंती, तुमने संस्कृत में क्यों लिखा है? ऐसी भाषा में लिखना था जो तुम बोलती हो। तुम्हारे कैरेक्टर इस भाषा में बोलेंगे तो कौन सुनेगा और कौन समझेगा?

उस दिन मेरी समझ में आया कि भाषा की संप्रेषणीयता क्या होती है। मैंने तय किया कि अपनी भाषा को यूज़र्स फ्रेंडली बनाऊँगी। जिस पर आज तक क़ायम हूँ। इसलिए मुझे टीवी या फ़िल्मों के लिए लिखना भारी नहीं पड़ता। मुझे स्विच करना आता है। आपकी भाषा और आपका अंदाज़ वह होना चाहिए जो आम बोलचाल की हो। एक बात और। चाहे फ़िल्म हो या ऑडियो कहानी, बनाने वाले के दिमाग़ में जो होता है और जो उनकी रिक्वायरमेंट होती है, लेखक को वही करना पड़ता है। आप अड़ नहीं सकते कि आप उन्हें जैसा चाहिए वैसा नहीं करेंगे। लगातार अपनी स्क्रिप्ट पर काम करना होता है, अपने को सुधारना पड़ता है। निर्देशक की पसंद पर खरे उतरना पड़ता है। उस माध्यम में लेखक अपने इगो या अहम् के साथ काम नहीं कर सकता। वह एक टीमवर्क होता है। साहित्य की दुनिया में आप हीरो होते हैं, वहाँ आप एक कोएक्टर होते हैं। सबके साथ चलने वाले। मुझे दोनों दुनिया में काम करना पसंद है।

आकाश: पत्रकारिता से साहित्य में आने की छटपटाहट और कविता से कहानियों की तरफ़ आने की यात्रा दोनों ही यात्रा आपने की है। अधिकतर लेखकों के साथ ऐसा होता है। इस बारे में आपकी राय और अनुभव क्या हैं।

जयंती: मेरे लिए पत्रकारिता का ही एक्सटेंशन रहा साहित्य। मैं धर्मयुग में थी। तो साहित्यकारों के साथ ही काम हुआ करता था। इसलिए जब धर्मयुग के लिए कहानियाँ लिखी तो लगा कि यह भी काम एक हिस्सा है। मैंने तो कभी भी काम सोच कर कुछ नहीं लिखा। मुझे लिखने में मज़ा आता है। इसलिए ख़ूब लिखती थी। इसलिए कभी लेख लिखती हूँ तो कभी कहानियाँ और कभी उपन्यास। ये सब मेरी रचनात्मकता की ही संतानें हैं। मुझे कभी इसमें दिक्कत नहीं हुई।

आकाश: आपकी कहानियों में स्त्री स्वतंत्रता के साथ देह की स्वतंत्रता की बात भी आती है। आपकी नज़र में क्या देह की स्वतंत्रता ही स्त्री की स्वतंत्रता है?

जयंती: मेरी रचनाओं में जो स्त्रियाँ होती हैं, अधिकांश शहरी और आधुनिक होती हैं। मैंने हमेशा उन्हीं स्त्रियों के बारे में लिखा है, जिन्हें मैंने देखा है। मैं मुंबई में कई साल रही। मीडिया और ख़ासकर टीवी और विज्ञापनों की दुनिया की स्त्रियाँ मुखर होती हैं। ऑफबीट होती हैं। मेरे साथ काम करने वालों में कुछ लेस्बियन थीं, जो खुल कर इस बारे में बोलती भी थीं। कुछ लिवइन में रहती थीं। कुछ शादी नहीं करना चाहती थीं। ऐसे पुरुष भी थे। मेरे बॉस और अच्छे दोस्त गे थे। तो मैंने ऐसे लोगों को क़रीब से देखा है। बात आती है देह की स्वतंत्रता की। मेरे लिए वह अहम् नहीं है। मेरे लिए स्त्री का आत्मनिर्भर होना और अपनी पसंद से जीना अहम् है। देह बाद की चीज़ है। हाँ, सेक्स और यौनिकता को ले कर जो आज की पीढ़ी की सोच है, वह मेरी भी सोच रही है। एक स्त्री का अपने शरीर पर अधिकार है। उसे वह करना चाहिए जो उसका शरीर कहता है या माँगता है। कुछ स्त्रियाँ यौनिक आज़ादी की पक्षधर हैं। ग़लत नहीं है। कुछ शादी के बाद ही संबंध बनाना चाहती है, वह भी सही है। तो एक लड़की का सच किसी दूसरे का नहीं होता। हर किसी को अपनी चेतना और अपने स्व की परिभाषा ख़ुद गढ़नी होती है। मेरे लिए वह स्त्री महान् नहीं है जो हमेशा देह की बात करती है या देह के सुख को सर्वोपरि रखती है। न ही वह स्त्री महान् है जो इस बारे में बात ही नहीं करना चाहती, सती-सावित्री की इमेज बनाए रखना चाहती है। सब स्त्रियाँ सही हैं। बस उन्हें पता होना चाहिए कि वे जो कर रही हैं उसमें उनकी सहमति है, आनंद है।

आकाश: साहित्य में ख़ेमेबाज़ी से लेखकों और पाठकों को क्या नुक़्सान हो रहा है? साथ ही इस दौर में तटस्थ कैसे रहा जा सकता है या तटस्थ रहना परेशानी खड़ी कर सकता है?

जयंती: तटस्थ हर दौर में रहा जा सकता है। साहित्य में ख़ेमेबाज़ी से कभी किसी का भला नहीं हुआ। यह बस निरी गॉसिपिंग है, किसी को ऊपर और किसी को नीचे पटकने की रसीली साज़िश। इसमें फँस कर कुछ

हासिल नहीं होता। इसलिए मेरा मानना है कि हम सबका साझा मंच लेखन का है। करना यही चाहिए। लिखिए, ख़ूब लिखिए, मन का लिखिए। अगर किसी ख़ेमे में शामिल न होने की वजह से आपको कुछ नहीं मिल रहा, तो जाने दीजिए। वह सुकून और शांति से बढ़ कर नहीं।

आकाश: आपने लंबे समय तक संपादन किया है। इससे किस तरह के फ़ायदे या नुक़्सान आपके लेखन को हुए।

जयंती: मैं इसलिए इतना लिख पाई क्योंकि मेरे भीतर नौकरी करने का अनुशासन है। मुझे संपादन से कोई नुक़्सान नहीं हुआ। बल्कि नौकरी की वजह से आर्थिक सुरक्षा की छतरी हमेशा सिर पर रही। लेखन मेरा स्ट्रेस बस्टर है। मुझे तनाव से दूर रखता है। मैं रोज़ लिखती हूँ। कभी अख़बार के लिए लेख या कुछ और। फिर रात का समय होता है रचने का। कभी लिखने को ले कर तनाव नहीं लिया। इसलिए इस प्रेशर में नहीं रही कि यह लिखना है या यह नहीं लिखना।

आकाश: बीच में आपने लेखन से दूरी रखी इसका क्या कारण है?

जयंती: हाँ, कुछ अर्से से साहित्य से मेरा मोहभंग हो गया था। मैं मुंबई से दिल्ली आई थी वनिता पत्रिका की संपादक बन कर। मेरी पत्रिका में लॉयर अरविंद जैन कॉलम लिखा करते थे। उन्होंने ही कहा कि मैं मुंबई की ज़िंदगी पर हंस के लिए कहानी लिखूँ। यह 1998 की बात है। मैंने कहानी लिखी थी इस तरह से सब कुछ। इस कहानी के थीम पर लिव इन था। बोल्ड था इसका कथानक। राजेंद्र यादव जी ने तुरंत कहानी छाप दी और कहा कि उन्हें बहुत पसंद आई है। मैंने हंस के लिए काफी कहानियाँ लिखीं। फिर उन्होंने कहा कि मैं इसी थीम पर एक उपन्यास लिखूँ। अपनी शर्तों पर जीने वाली आधुनिक लड़की की। मैंने 2001 में उपन्यास लिखा, आसपास से गुज़रते हुए। यह उपन्यास राजकमल ने छापा और उस साल काफी लोकप्रिय रही। यादव जी ने कई जगह से उसके बारे में बात की।

इसके बाद मेरी कुछ साहित्यिक दोस्तियाँ हुईं। हम यादव जी के घर मिलते थे। वहाँ एक बार मैंने अपने बारे में कुछ गॉसिप सुना। वह मुझे कतई मंज़ूर नहीं था। मुझे लगा ये मैं कैसे लोगों के साथ हूँ जो पीठ पीछे आपका नाम इतना ख़राब करते हैं। हालाँकि मुझे अपने नाम के ख़राब होने या गॉसिप से कोई दिक़्क़त नहीं थी, पर इस बात से रोष था कि ये लोग ऐसी बातें क्यों करते हैं?

मैंने पाया कि मैं इनके बीच की एक नहीं हो सकती। मैं नौकरी तो कर ही रही थी। वैसे भी साहित्य लिख कर पैसे तो क्या ही मिलते थे। मैं बच्चों की किताबें लिखने लगी, ऑडियो बुक्स से जुड़ी जहाँ मुझे अपने काम की अच्छी क़ीमत मिलती थी।

फिर सालों बाद मेरा परिचय वाणी प्रकाशन की अदिति से हुआ। मैंने उन दिनों मुंबई के ऊपर संस्मरणात्मक उपन्यास लिखा था। अदिति ने कहा कि वह यह प्रकाशित करना चाहती है। बहुत प्यार से उसने छापा। वहाँ जुड़ कर लगा कि मुझे वह काम करना चाहिए, जिसमें मुझे आनंद मिलता है।

एक और बात बताऊँ, यादव जी ने अपनी मृत्यु से बस कुछ दिनों पहले मुझे मिलने बुलाया था। दरअसल वे मुझे देहरी भई विदेस किताब देना चाहते थे, जिसमें मैंने भी लिखा था। उन्होंने मुझसे कहा था कि जयंती, लिखना मत छोड़ना। और इस तरह के गॉसिप करने वालों से डरना मत। वे अपनी जगह रहेंगे और तुम अपनी जगह। उनकी बात भी दिमाग़ में घर कर गई। बॉम्बे मेरी जान लिखने के बाद मैं एक्टिव हो गई और ख़ूब लिखने लगी।

आकाश: धर्मयुग के साथ आपने लंबे समय तक काम किया, वहाँ आपके क्या अनुभव रहे और अन्य पत्रिकाओं के बारे में भी बताएँ?

जयंती: मैंने आपको बताया कि जिन दिनों मैंने धर्मयुग जॉइन किया था, वह पत्रकारिता का स्वर्णिम युग था। डॉ. धर्मवीर भारती संपादक थे। सुबह साढ़े नौ बजे से काम शुरू होता था। भारती जी ठीक 11 बजे दफ्तर आते। धर्मयुग का माहौल एकदम अनुशासित था। कोई गपबाज़ी नहीं, होहल्ला नहीं। भारती जी जब ऑफ़िस में रहते तो बिलकुल नहीं। हालाँकि भारती जी को मैंने हमेशा हँसते-ठहाका लगाते ही देखा। वे अपने सबसे कनिष्ठ संपादक से भी प्लानिंग ख़ुद करवाते थे। उनके सिर भर हिलाने से पता चल जाता कि उन्हें आयडिया या लेख पसंद आ गया है। बाहर जो बैठते थे, हमारे सीनियर्स, मिलनसार और मददगार थे। कभी लगा नहीं कि मैं इतने वरिष्ठों के साथ काम कर रही हूँ। हालाँकि वहाँ मिलने आने वाले लेखक-लेखिकाएँ मुझसे लाड़ बहुत करती थी। चित्रा मुद्गल जी आतीं तो चुपके से मेरे हाथ में दो लड्डू रख देतीं और आँखों के इशारे से कहतीं, बताना मत किसी को तुझे एक लड्डू ज़्यादा दिया है। पद्मा सचदेव जी आतीं तो वे भी ख़ूब दुलारतीं। एक बार शरद जोशी जी आए थे। उन्हें पता चला मेरा जन्मदिन है तो सबके लिए रसगुल्ले मँगवाए। एक से बढ़कर एक साहित्यकार आते थे। जिनको बस पढ़ा था। उन्हें सामने से देख कर रोमांच-सा हो आता। उनकी कहानियाँ संपादित करते हुए गर्व सा लगता। फिर जब नज़दीक से मिलते तो लगता, अरे ये लोग कितने सामान्य हैं। सबके जैसे। कोई घमंड नहीं। धर्मयुग में काम करने वाले बिल्कुल एक परिवार की तरह रहते थे। साथ उठना-बैठना-खाना। इश्यू क्लोज़िंग वाले दिन सबसे दस-दस रुपये लेकर मैं ख़ूब खाने-पीने की चीज़ें ले आती। एक तरह से सब मिलकर डिनर करते। वे यादें अविस्मरणीय हैं।

जब दिल्ली वनिता पत्रिका का संपादन करने आई तो मैं युवा थी। टीम पहले से बन गई थी। सदस्य उम्र में बड़े थे, पर कोशिश यही रही कि सबके साथ दोस्ताना व्यवहार हो। अमर उजाला में भी यही रहा। पिछले 14 सालों से हिंदुस्तान अख़बार में हूँ। अख़बार की दुनिया अलग होती है, लेकिन मुझे हर जगह काम करके आनंद आया।

आकाश: धर्मयुग के दौरान आपकी धर्मवीर भारती जी से चर्चा होती होगी, कोई रोचक संस्मरण जो आप साझा करना चाहें।

जयंती: मैंने बताया न मेरा इंटरव्यू प्रकरण। और भी कई स्मृतियाँ हैं। मैं उनकी दोनों बेटियों के बीच के उम्र की थी। अक्सर

बात करते समय उनके मुँह से बेटा निकल जाता था। वे हँसते थे जब मैं बोलती थी। वजह थी, मैं उन दिनों बहुत तेज़ बोला करती थी। आवाज़ भी उच्च और जल्दी-जल्दी भी। वे टोकते थे कि अरे रुक कर बोलो, आराम से बोलो, ट्रेन थोड़े ही न छूट रही है। मैंने इसका अभ्यास कर अपने को ठीक किया। हाँ, सबसे पहला असाइनमेंट याद आ रहा है। उन दिनों ठग चार्ल्स शोभराज पुलिस के चंगुल से छूट निकला था और ख़बर थी कि वह पनवेल के किसी होटल में ठहरा है। मैं तब पनवेल में रहती थी। भारती जी ने मुझसे कहा कि मैं होटल जा कर पता करूँ और एक स्टोरी बनाऊँ।

उस दिन दफ़्तर से घर जाते-जाते रात हो गई। मैंने अम्मा से कहा कि मुझे पुराने पनवेल में बस स्टैंड तक जाना है। अम्मा घबराईं, पर मैं पूरी तरह तैयार थी। रिक्शा ले कर गई। अपने साथ एक नोटबुक ले कर गई थी। और टेप रेकॉर्डर भी। मेरे पहुँचने से पहले वहाँ पुलिस पहुँच चुकी थी। शोभराज वहाँ से भाग गया था। पर मैंने वेटर और दूसरे लोगों से बात की। उस बंदे से भी जिसने शोभराज को पानी ला कर दिया था। अगले दिन भारती जी को बताया तो उन्होंने कहा, जो कुछ तुमने देखा, बात की, उस पर स्टोरी कर दो। वह स्टोरी धर्मयुग में छपी। मुझे रोमांच हो आया। ऐसे कई असाइनमेंट किए। छोटी-छोटी घटनाओं को किस तरह से देखें, कैसे स्टोरी एंगल निकालें ये उनसे सीखा। भारती जी 1988 में रिटायर हो गए। इसके बाद धर्मयुग पहले-सा नहीं रहा।

आकाश: आपकी कभी धर्मवीर भारती से गुनाहों का देवता को लेकर चर्चा हुई, वे इस बारे में क्या कहते थे?

जयंती: हाँ, मैंने उन्हें बताया था कि मैंने गुनाहों का देवता पढ़ा है। उन्होंने पूछा था, मुझे कैसी लगी। मैंने कहा था, मैं बहुत रोई, पर वह जो हीरोइन है न सुधा, उसे थोड़ा और स्ट्रॉन्ग होना चाहिए था। इस बात पर वे हँसते हुए बोले थे, वह सुधा थी न, जयंती नहीं थी, तो स्ट्रॉन्ग कैसे होती?

आकाश: आपने लंबे समय तक संपादन किया है। विभोम-स्वर को लेकर आपके सुझाव और योगदान के बारे में क्या राय है।

जयंती: विभोम-स्वर अपने जॉनर की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। साहित्य के रसिकों को ऐसी ही पत्रिका चाहिए, कहानी, कविताएँ, आलोचना, विविधरंगी लालित्य पूर्ण लेख और पुस्तक चर्चा और विमर्श। मुझे लगता है आपको इस पत्रिका का ऑडियो स्वरूप भी लाना चाहिए। नई पीढ़ी को जोड़ने के लिए कहानी प्रतियोगिताएँ हो सकती हैं। साथ ही पत्रिका को सोशल मीडिया से भी जोड़ें। पाठक सोशल मीडिया में या ऑन लाइन जब जुड़ेंगे तो पत्रिका का फैलाव हो सकता है।

आकाश: काली टाई वाली औरत कहानी को आपने जटिल लिखा है, क्या ये आम पाठक की पहुँच से दूर नहीं लगती?

जयंती: काली टाई वाली औरत की प्रोटेगेनिस्ट एक आम औरत नहीं है। यह एक मेटाफोर है। कल्पनात्मक दुनिया है। फेंटेसी है। वैसे भी आजकल हमारे आसपास जो चल रहा है, ख़ासकर मोबाइल के एडिक्शन को ले कर, रील के प्रति आसक्ति को ले कर, वह कहाँ सामान्य है? तो लगा कि उसका इलाज भी ऐसा ही कुछ होना चाहिए, फेंटेसी नुमा। इसलिए मैंने वह मुश्किल-सा किरदार गढ़ा। दरअसल मैंने मोटरसाइकिल पर जा रहे ऐसे व्यक्ति को देखा था जो कान में मोबाइल फँसाए एकदम टेढ़ा हो कर बोले जा रहा था, गाड़ी चलाते हुए। फिर मैंने बगीचे में फावड़ा चलाते हुए एक माली को देखा जो एक हाथ में मोबाइल पकड़े रील देखते हुए हँस रहा था। उसे इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं थी कि दूसरे हाथ में फावड़ा है और वह काम कर रहा है। तो सोचिए यह कितना भयानक दृश्य रहा होगा? तो इस पर लिखना भी तो ऐसा ही होना चाहिए। मैं इसे फेंटेसी कहानी ही कहूँगी। सोचकर देखिए तो सच में इसी भयावहता देख पाएँगे कि कुछ सालों बाद मोबाइल एडिक्शन कहाँ जा पहुँचेगा।

आकाश: आपकी नई रचना जिस पर काम चल रहा हो, उसके बारे में पाठकों के साथ जानकारी साझा करना चाहेंगी।

जयंती: मैंने आपको बताया न, मैं लगातार लिखती हूँ। लगभग रोज़ ही। हाल ही में मेरा नया कहानी संकलन मिडिल क्लास मंचूरियन राजपाल प्रकाशन से आया है। मेरा मर्डर मिस्ट्री उपन्यास शुगर डैडी मई महीने में हिंदयुग्म से आ रहा है। इसके अलावा टीनएजर्स के लिए एक फेंटेसी एडवेंचर उपन्यास अनबाउंड से आ रहा है, नाम है दिलवाली जादूगरनियाँ।

मैं अपने लेखन के बारे में कुछ कहना चाहूँगी। मैं आजकल वह लिखती हूँ, जो लिखना मुझे पसंद है। अच्छा लगता है। मैं किसी दौड़ में शामिल नहीं हूँ कि ऐसा ही लिखना है। साहित्य-असाहित्य में नहीं पढ़ती। आपको बताया न, ऐसी भाषा में लिखती हूँ जो हर किसी की समझ आ जाए। मेरे पिछले दो उपन्यास शैडो और मैमराजी हिंदयुग्म प्रकाशन से आए। शैडो एक थ्रिलर उपन्यास है। इस पर चैप्टर 2 नाम से फ़िल्म बन रही है। मैमराजी छोटे शहर की गॉसिप बतियाने वाली और हर किसी की, ख़ासकर युवाओं की ज़िंदगी में दख़ल देने वाली मज़ेदार भाभियों की है। इस पर एक वेब सीरीज़ बनने की योजना है। अब जो लिखा है शुगर डैडी, वह एक ऐसी किशोरी की दास्ताँ है जो अपने माता-पिता के तलाक़ के बाद पटरी से हट गई है और अपने से तीस साल बड़े आदमी से प्रेम करके शादी करना चाहती है ताकि उसे अपनी बोझिल ज़िंदगी से निजात मिल सके। यह एक मर्डर मिस्ट्री है। तो अब मैं वह लिखती हूँ जिसमें मुझे आनंद आता है। कुछ नया कहने को रचने को मिलता है। मैं वह नहीं लिखना चाहती जो सब लिख रहे हैं। मुझे यह कहने में भी गुरेज नहीं कि हिन्दी में अपराध और रोमांच लेखन में लिखने वाली शायद एकमात्र महिला मैं ही हूँ।

आकाश: शुक्रिया जयंती जी विभोम-स्वर के लिए इतने अच्छे सारे विषयों पर चर्चा करने के लिए। आपके आने वाली किताबों के लिए शुभकामनाएँ, आपके अन्य पाठकों की तरह मुझे भी इन किताबों का इंतज़ार रहेगा। मुझे उम्मीद है इन किताबों में भी मेरा कुछ और हठीले पात्रों से सामना होगा।

000

विस्मृति के द्वार

कहीं दूर खड़ी वह

विकेश निझावन

कहीं दूर खड़ी वह औरत मुस्करा रही थी। एकाएक वह हँस पड़ी। लेकिन उस हँसी के साथ उसकी आँखों में आँसू भी थे। वह सिसकने लगी, रोने लगी। सहसा उसके मुँह से एक लंबी चीख निकली। वह औरत कौन थी, याद नहीं पड़ता। मेरे बाल मन ने यह सब देखा, सुना या पढ़ा, यह भी याद नहीं आन पड़ता। अपने आसपास ही, गली-मोहल्ले में आए दिन, कितनी बातें देखने, सुनने को मिलती थीं।

हम एक ख़ुशहाल जीवन जी रहे थे। पापा डॉक्टर थे। विभाजन से पहले लायलपुर 'पाकिस्तान' में प्रैक्टिस कर रहे थे। विभाजन के बाद सीधा अंबाला आ बसे। विभाजन की त्रासदी के साथ माँ-पापा से उससे पहले की व्यथा सुन हम दहल जाते। 1936 में क्वेटा 'बलूचिस्तान' में आए भूकंप के समय सारा परिवार वहीं था। दादाजी उसी भूकंप के कारण मृत्यु का शिकार हुए थे। कैसी विक्षिप्त अवस्था में पापा पूरे परिवार को लेकर लायलपुर पहुँचे थे।

सात भाई-बहन थे हम। मैं सबसे छोटा। मेरा जन्म अंबाला में ही हुआ। एक ख़ुशहाल बचपन देखा मैंने। पापा का शहर में अच्छा रुतबा था। मैंने पाँचवी कक्षा पास की थी कि बड़ी दी की शादी हो गई। मैं बहुत उदास हो गया था। बड़ी दी ने एम ए हिन्दी में किया था। उनकी ढेरों कलेक्शन मेरे हाथ लगीं। कामायनी, यामा, गीतांजलि, मेघदूत और गुनाहों का देवता। छोटी उम्र में ही सिलेबस की किताबों के साथ मैं इन्हें भी पढ़ता चला गया।

अब सरस्वती जैसे मेरी क़लम पर आ बैठी। सातवीं, आठवीं, नवीं कक्षा में आते-आते ढेरों कविताएँ रच डालीं। घर में कुछ पत्रिकाएँ नियमित आती थीं। धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, फिल्म फेयर, फेमिना आदि। सभी भाई-बहनों को पढ़ने का शौक था। पापा इंग्लिश लिटरेचर ज़्यादा पढ़ते थे। रीडर्स डाइजेस्ट उनकी फेवरेट मैगज़ीन थी। हर साल वह उसका शुल्क भेजना नहीं भूलते थे। पापा की कलेक्शन की कुछ पुस्तकें और रीडर्स डाइजेस्ट के कुछ अंक अभी भी मेरे पास हैं, जब उसकी क़ीमत एक या 2 रुपये होती थी।

आठवीं कक्षा में इंग्लिश की किताब में रविंद्र नाथ टैगोर की कहानियाँ द पोस्ट मास्टर, होमकमिंग तथा काबुलीवाला और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी उसने कहा था ने ख़ूब छुआ। इस बीच 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप से शिवानी के उपन्यास कृष्णकली, विषकन्या तथा मन्नू भंडारी का आपका बंटी मेरे भावुक मन को विचलित कर गए। अब कविता के साथ-साथ गद्य भी मेरे लेखन में जुड़ गया। एक-दो आलेख और एक-दो कहानियाँ लिख कर इधर-उधर दैनिक पत्रों में भेज दीं! उनका क्या हुआ, मुझे नहीं पता। तब एक नई कहानी जो लिखी, मुझे ख़ुद को उद्वेलित कर गई। एक स्थानीय लेखक घर पर मिलने आए तो वह कहानी मैंने उनके आगे रख दी और कहा, ज़रा पढ़िएगा, कैसी लिखी है। उन्होंने चंद पंक्तियाँ पढ़ीं और उन कागज़ों को गोल कर अपने झोले में रखते बोले, इस वक़्त ज़रा जल्दी में हूँ। घर जाकर आराम से पढ़ लूँगा और जल्दी लौटा दूँगा। काफी दिन तक कोशिश करने पर भी उनसे संपर्क नहीं हो पाया। डायरी में लिखे रफ़ ड्रॉफ्ट को दोबारा से लिखा और उसे टाइप करा सारिका पत्रिका में भेज दिया। चंद दिनों बाद ही सारिका से स्वीकृति पत्र आ गया और उसे प्रकाशित होने में भी देर नहीं लगी। प्राय: हर दूसरे तीसरे दिन बुक स्टॉल पर पत्र पत्रिकाएँ देखने चला जाया करता था। सारिका के नए अंक पर नज़र पड़ी तो उसे उठा पन्ने पलटने लगा। दूसरे ही नंबर पर अपनी कहानी 'जाने और लौट आने के बीच' शीर्षक और अपना नाम देख मैं ख़ुशी से फूला न समाया। कहानी इतनी जल्दी प्रकाशित हो जाएगी, मैंने सोचा न था।

कहानी क्या छपी, चार-छह पत्र हर रोज़ आने लगे। पाठक ख़ूब पसंद कर रहे थे इसे। पंजाबी के दैनिक 'अजीत' के संपादक का पत्र आया कि कहानी उन्हें इतनी अच्छी लगी कि बिना लेखक की अनुमति के इसी संडे के अख़बार में प्रकाशित कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने क्षमा भी चाही। गुजरात के एक लेखक का पत्र आया कि वह इसे गुजराती में अनुवाद कर प्रकाशित कराना चाहते हैं। फिर तो मराठी, तेलुगू, मलयालम, उर्दू, अंग्रेज़ी में भी इसका अनुवाद हुआ। लगभग छह-आठ महीने तक इस कहानी को लेकर पाठकों के पत्र आते रहे। इन

विकेश निझावन
मकान नंबर 45, आदर्श नगर, मॉडल टाउन, अम्बाला शहर-134093, हरियाणा
मोबाइल-8168724620
ईमेल- vikeshnijhawan@rediffmail.com

प्रतिक्रियाओं ने मुझे लेखन ऊर्जा से भर दिया। इस बीच तीन चार कहानियाँ और लिख डालीं। कुछ पत्र पत्रिकाओं में कहानी प्रतियोगिता के विज्ञापन छपे थे। सभी कहानियाँ प्रतियोगिताओं के खाते में चली गईं।

गुजरात से वे लेखक, जिन्होंने मेरी कहानी गुजराती में अनुवाद कर एक अच्छी पत्रिका में छपवाई थी और मुझे उसकी कटिंग भी भेजी थी, उनका कहना था कि गुजराती के किसी अन्य लेखक ने इसे अपने नाम से भी छपवा लिया है और वह इस पर संपादक महोदय से बात कर रहे हैं। अभी यह बात चल ही रही थी कि दिल्ली से एक पत्र आया, आपकी कहानी 'जाने और लौट आने के बीच' जो सारिका में प्रकाशित हुई थी, किसी अन्य पत्रिका में किसी लेखक ने अपने नाम से छपवा ली है। उन्होंने कटिंग भी साथ भेजी थी। उस पर नज़र पड़ते ही मैं आश्चर्यचकित रह गया। यह लेखक कोई और नहीं, वहीं स्थानीय लेखक थे जो कहानी पढ़ने के लिए अपने साथ ले गए थे। यह किस्सा यहीं ख़त्म नहीं हुआ। 40 साल बाद फिर दैनिक भास्कर के रविवारीय परिशिष्ट में इस कहानी पर मेरी नज़र पड़ गई। शीर्षक बदला हुआ था। हमने संपादक महोदय को फ़ोन घुमाया वे बोले, हमने इसे पंजाबी से अनूदित किया है। और उन्होंने उनका नाम व फ़ोन नंबर दिया। उन पंजाबी के लेखक से बात हुई तो वह बोले, हमने इसे उर्दू से अनुवाद किया है और वह उर्दू के लेखक कहीं पाकिस्तान में रहते हैं। याद आया, ईमेल से किसी उर्दू लेखक ने कहानियाँ मँगवाई थीं। पहली कहानी तो मेरे नाम के साथ ही छपी थी। उसके बाद- भला हो साहित्यिक चोरी का, जो छुपाए नहीं छिपती।

प्रतियोगिता में भेजी गई सभी कहानियों का परिणाम आ गया था। इत्तेफ़ाक़ देखिए, चारों कहानियाँ कोई न कोई पुरस्कार ले गईं। राजस्थान अलवर से साहित्यिक संस्था 'पलाश' द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर हुई कहानी प्रतियोगिता में मेरी कहानी 'मुख़्तारनामा' ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा मेरी कहानी 'माँ' द्वितीय स्थान पर आई। कादम्बिनी मासिक पत्रिका में कहानी 'पुल के दूसरी ओर' तथा पंजाब द्वारा हुई प्रेमचंद कहानी प्रतियोगिता में कहानी 'उसकी मौत' पुरस्कृत हुई।

इस बीच धर्मयुग में प्रकाशित कहानी 'एक टुकड़ा ज़िंदगी' तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित कहानी 'पुनर्जन्म' को भी पाठकों ने ख़ूब सराहा। कहानी 'एक टुकड़ा ज़िंदगी' का पंजाबी अनुवाद होकर ज़ी टीवी के पंजाबी चैनल पर इसका नाट्य रुपान्तर हुआ जो दो एपिसोड में अत्यंत सफल रहा। तत्पश्चात दो कहानियाँ 'न चाहते हुए' तथा 'ऊदबिलाव' का हिन्दी में राजेश कौल के निर्देशन में जालन्धर दूरदर्शन पर नाट्य रूपान्तर हुआ। आकाशवाणी पर कार्यक्रमों का प्रसारित होना मुझे सुकून देता था।

1982 में मेरा पहला कहानी संग्रह 'हर छत का अपना दु:ख' प्रकाशित हुआ जो चर्चा में रहा। दूरदर्शन के पत्रिका कार्यक्रम में डॉक्टर गंगा प्रसाद विमल तथा महीप सिंह जी ने इस पर ख़ूब चर्चा की थी। स्वामी वाहिद काजमी तथा अन्य लेखकों व समीक्षकों ने इसके बारे में बहुत लिखा। अब तक मेरे 12 कहानी संग्रह, पाँच कविता संग्रह, दो उपन्यास तथा एक लघु कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ बाल पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से मेरे जीवन और साहित्य पर पूर्ण शोध हुआ जो पुस्तक रूप में भी आया। कुछ अन्य विद्यार्थियों ने भी मेरे साहित्य पर लघु शोध, पूर्ण शोध किये। मेरी भी इच्छा रही कि मैं भी कुछ शोध कार्य करूँ। हरियाणा ग्रंथ अकादमी द्वारा स्वीकृति मिलने पर मैंने मोहन राकेश के जीवन व साहित्य से संबंधित विषय को उठाया जिसे हरियाणा ग्रंथ अकादमी ने ही 'संवेदना के चितेरे : मोहन राकेश' विषय को पुस्तक रूप में प्रकाशित भी किया। केंद्रीय सरकार द्वारा मिले फैलोशिप के अंतर्गत मैंने 'पत्रकारिता : मानव सभ्यता में प्रमुख योगदान' विषय पर पूर्ण शोध किया। इसे पूरा कर मुझे काफी आत्मसंतोष मिला। दरअसल अपने सक्रिय लेखन के साथ पत्रकारिता में भी मेरी रुचि बढ़ी और 15 वर्षों से नियमित रूप से मैं साहित्यिक पत्रिका 'पुष्पगंधा' का संपादन व प्रकाशन कर एक लंबे अनुभव से गुज़रा।

जब-जब कोई सम्मान व पुरस्कार मिला, वे पल कहाँ भूलते हैं। राजस्थान से कहानी पर प्रथम पुरस्कार जैनेंद्र जी के हाथों मिला। वहीं पर हिमांशु जोशी जी के साथ गुज़ारे तीन दिन मेरे जीवन की उपलब्धि बने। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा कहानी संगोष्ठी में मेरी कहानी 'अँधेरे' पर राजी सेठ, डॉक्टर नामवर सिंह और भीष्म साहनी जी के वक़्तव्यें ने मुझे अभिभूत किया। अकादमी के ही दो अन्य कार्यक्रमों में मेरी कहानी 'माँ' और 'ऊदबिलाव' ख़ूब चर्चित रहीं। कहानी 'ऊदबिलाव' हरियाणा की प्रतिनिधि कहानियाँ पुस्तक में भी शामिल की गई। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा मेरे दो कहानी संग्रह अब दिन नहीं निकलेगा, छुअन तथा एक कविता संग्रह एक टुकड़ा आकाश उन वर्षों के श्रेष्ठ संग्रह घोषित और पुरस्कृत हुए। तत्पश्चात मुख्यमंत्री जी द्वारा लाला देशबंधु गुप्त सम्मान से सम्मानित हुआ। मेरी कुछ अन्य कहानियों को पाठकों व आलोचकों ने ख़ूब सराहा। जैसे, गाँठ, जीवन का दर्द, चीर-हरण, सिलवटें, मछलियाँ, छुअन, अँधेरे, यहाँ कोई बैठा है, आश्रम, अम्मा, कुर्सी आदि।

जीवन के और कई छोटे-छोटे पल मेरी विस्मृतियों के द्वार पर दस्तक देते रहे और उन्हें याद कर मैं उन्माद से भरा आगे बढ़ता रहा। यह सफ़र अभी भी जारी है। इन दिनों एक नया कविता संग्रह है 'अँधेरे की कोख', एक उपन्यास 'कहीं दूर खड़ी वह' तथा एक समीक्षा की पुस्तक प्रकाशित होने जा रहे हैं।

विस्मृतियों के द्वार पर आज भी वह औरत खड़ी है, जो कभी मुस्करा रही थी, हँस रही थी, फिर एकाएक चीख पड़ी थी। समय बदलता है, प्राथमिकताएँ बदलती हैं, व्यक्ति भी बदल जाता है। अपनी पहली कहानी 'जाने और लौट आने के बीच' तथा हाल ही में लिखी कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' का मूल्यांकन करता हूँ तो लगता है, यह वही औरत तो नहीं जिसमें एक परिवर्तन आया है। क्या यही मेरे नए उपन्यास 'कहीं दूर खड़ी वह' की नायिका तो नहीं?

000

कथा-कहानी

ए चाँद आसमाँ के

डॉ. पूरन सिंह

माँ बताती थी कि हम दो ही पैदा हुए थे उसकी कोख से - मैं और श्याम भैया। मेरे जन्म के दो महीने बाद ही पिताजी भगवान् के घर चले गए। माँ ने ही पाला पोसा था हम दोनों को। घर में संपन्नता थी। पैसा-धन दौलत की कमी नहीं थी लेकिन पिता के बिना कोई दुलार करने वाला न था। माँ तो ममता का अथाह सागर थी लेकिन पिता... पिता की कमी आज तक महसूस होती है मुझे।

माँ बताती थी कि मेरे पिता बहुत अच्छी नौकरी करते थे। इसके अलावा, मेरे दादा परदादा के वह अकेले वारिस थे इसलिए ज़मीन-जायदाद से भी संपन्न थे। श्याम भैया को ज़मीन-जायदाद से ज़्यादा लगाव नहीं था। वे अपने बल पर बहुत बड़ा आदमी बनना चाहते थे। जहाँ वे पढ़-लिखकर बहुत बड़ा आदमी बनना चाहते थे वहीं माँ उनकी शादी कर देने के लिए उनके पीछे पड़ी थी, 'श्याम की शादी हो जाती तो घर सँभालने वाली आ जाती और घर, घर लगने लगता।'

'आपकी बातें ठीक हैं माँ लेकिन अभी मैं पढ़ना चाहता हूँ और पढ़कर अच्छी नौकरी करना चाहता हूँ।' श्याम भैया का तर्क हुआ करता था।

'नौकरी इतनी ज़रूरी नहीं है श्याम, तेरे बाप-दादा का बहुत कुछ है। तुम चाहो तो दोनों भाई जीवन भर उससे खा सकते हो।' माँ अपना तर्क दिया करती थी। और आख़िर एक दिन माँ जीत गई थी।

माँ के मायके के दूर के कोई उसके भैया लगते थे उनकी बेटी को ब्याह कर, घर ले आई थी माँ। भैया ने माँ के आगे सिर झुका दिया था। भाभी-भैया से आठ साल छोटी थी और मैं भाभी की उम्र का। भाभी दीन-दुनिया के बारे में ज़्यादा नहीं जानती थी। भाभी का सबसे बड़ा दोस्त मैं बन गया था। भाभी मेरे साथ हँसती और गाती थी। हम दोनों को ख़ुश देखकर भैया बहुत ख़ुश होते थे तो माँ अंदर ही अंदर सुलगती रहती थी। माँ को भय था कि भाभी कहीं मुझे मोहित न कर ले।

'हर समय की हिलिर-हिलिर ज़्यादा अच्छी नहीं होती है। बहू हो तो बहू की तरह रहो, हाँ नहीं तो।' माँ गाहे बगाहे डाँट देती थी भाभी को।

भाभी पर डाँट का ज़्यादा असर नहीं होता था। जैसे ही माँ घर से बाहर निकलती, भाभी और हम ख़ुश हो जाते थे। फिर तो न जाने कितने खेल शुरू हो जाते थे-हम इकिया दुकिया खेलते, भाभी एक टाँग से कूदती और मैं भी कूदता। हम दोनों के बीच हार-जीत होती, मैं अक्सर ही जीतता था। भाभी कभी नहीं जीतती थी। शायद भाभी के नसीब में हारना ही लिखा था हम छिपा-छिपाई खेलते, भाभी घर में छिप जाती तो मैं उन्हें आसानी से ढूँढ़ लेता और मैं छिपता तो भाभी मुझे बहुत मुश्किल से ढूँढ़ पाती थी।

एक दिन क्या हुआ-भाभी छिपने के लिए भैया के कमरे में चली गई। प्राय: हम भैया के कमरे नहीं जाते थे क्योंकि भैया पढ़ते रहते थे और उनकी पढ़ाई का कोई हर्ज न हो इसलिए हम पूरा ध्यान रखते थे। भाभी जैसे ही भैया के कमरे में गई भैया ने भाभी को पकड़ लिया था और... और...। मैंने पूरा घर छान मारा। भाभी नहीं मिली थी। मैं हिम्मत करके भैया के कमरे में गया तो भाभी वहाँ भी नहीं थी। फिर देखा तो भैया भी नहीं। मैं जब कमरे से निकलने को हुआ तो भाभी ने कहीं से 'कू' की। मैंने 'कू' की आवाज़ की दिशा में देखा तो भाभी-भैया के बाहुपाश में समाई हुई थी। मैं सहम गया था और बाहर भाग आया था। दो दिन तक भाभी से नहीं बोला था मैं। भाभी और भैया मुझे दोनों दिनों तक मनाते रहे थे तब जाकर मैं मना था।

डॉ. पूरन सिंह
240 एवं 935डी बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008
मोबाइल-9868846388
ईमेल- drpuransingh64@gmail.com

अथाह प्यार, अपनत्व और असीम श्रद्धा थी हम तीनों में लेकिन माँ को मुझे लेकर भय था। एक असुरक्षा ने उन्हें घेर लिया था।

भैया, भाभी को बहुत प्यार करते थे- भैया बहुत समझदार और पढ़ने में होशियार भी थे-

'मोहन मैं जब कलेक्टर बन जाऊँगा तक मैं तुझे अपने ही पास रखूँगा। माँ अभी नाराज़ रहती है जब तू बड़ा हो जाएगा, तब तेरी भी बहू ला देंगे तब तो माँ की असुरक्षा की भावना ख़त्म हो जाएगी। तब तुम और तुम्हारी भाभी ख़ूब छिपा-छिपाई खेला करना...।' भैया के स्नेह के आगे में झुक-झुक जाता था।

भैया रात में छह-छह आठ-आठ घण्टे पढ़ते थे। एक ही धुन थी आई ए एस बनेंगे। रात-रात भर की पढ़ाई ने उन्हें कहीं का नहीं छोड़ा। एक दिन पता चला कि भैया को खाँसी हुई और खाँसी में ज़िंदा ब्लड आया था। भैया को डॉक्टर के पास ले जाया गया। पता चला भैया को टी बी हो गई है और ऐसी टी बी नहीं- बड़ी भयानक-जिसके होते ही मृत्यु की टिकट हाथ में थमा दी जाती है। मैंने सुना तो मैं रो पड़ा था।

'मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता भैया।' मैंने उनके हाथ पकड़कर जब कहा था तो भैया कुछ नहीं बोले थे सिर्फ आँखों की कोरों से दो मोती लुढ़कते हुए न जाने कहाँ बिखर गए थे।

पैसे को पानी की तरह बहाया गया था। मैं कुछ-कुछ समझदार हो गया था। मैंने भैया के इलाज में ज़मीन-आसमान एक कर दिया- सारी जायदाद धन दौलत लगा दी थी; लेकिन भैया ठीक होने का नाम ही नहीं ले रहे थे। हमारे पास अब सिर्फ घर और सात बीघा का एक खेत बचा था।

एक दिन माँ ने कहा भी था, 'मोहन तेरे भाई को तो अब कोई भी बचा नहीं सकता। तू तो कम से कम अपना ध्यान रख बेटा।'

'माँ भैया बच गए तो ऐसी दस जायदाद, बना दूँगा। बस मेरे भैया बच जाएँ।' माँ मेरी भावनाओं के आगे चुप हो गई थी।

भाभी को बहुत समझ अब भी नहीं आई थी। वे हमेशा हँसती रहती -कूदती रहती थीं। जबकि मैं जानता था कि भैया अब मेहमान हैं। कभी भी बुलावा आ सकता है।

पिछले दिनों से जब से भैया बीमार हुए थे मैंने एक बात पर ध्यान दिया था कि भैया अब भाभी को बहुत ज़्यादा प्यार करने लगे थे- शायद अपनी पढ़ाई के कारण भाभी को प्यार नहीं कर पाए थे उसकी भरपाई कर रहे थे। भाभी मस्त रहती थीं। अब भैया के हाथ-पाँव नहीं चलते थे। सुन्दरता की साक्षात् मूरत मेरे भैया चारपाई में मिल गए थे। वे मुझे पास बुलाते और कहा करते, 'मोहन वही वाला गाना सुनाओ न।'

'कौन सा वाला भैया।'

'वही चाँद वाला।'

मैं सुनाने लगता था-

'ए चाँद आसमाँ के दम भर ज़मीं पे आजा
भूला हुआ है राही तू रास्ता दिखा जा...।'

मैं गाते-गाते रोने लगता था लेकिन भैया रोते नहीं थे। वह छत की तरफ देखते रहते थे - मानों उनका चाँद आसमाँ से उतरकर नीचे आ जाएगा। वे शायद चाँद के बहाने भाभी को बुलाने की बात किया करते थे। वैसे भी उनका चाँद तो भाभी ही थीं।

मैं उन्हें डॉक्टर के पास ले जाना चाहता था लेकिन उनसे उठा नहीं गया था तो मैं डॉक्टर को ही घर ले आया था। उस दिन माँ घर में नहीं थी। भाभी और मैंने ही भैया को दिखाया था। 'बस, ओनली वन वीक', कहकर डॉक्टर साहब चलने लगे थे। उस दिन... उस दिन मैंने देखा था कि भाभी अचानक बड़ी हो गई थीं।

'तुम्हारे भैया... मोहन तुम्हारे भैया हम सभी को...।' मेरे कंधे पर सिर रखकर भाभी बुक्का फाड़कर रोई थीं तो कब चुप हुई थीं, कोई नहीं जानता। मैं उन्हें चुप कराते-कराते स्वयं भी रोने लगा था कि माँ आ गई थी। माँ क्या समझी क्या नहीं... हम दोनों ने कोई चिंता नहीं की थी माँ की।

जहाँ हम और भाभी, भैया के सेवा में ज़मीन आसमान एक कर रहे थे वहीं, माँ न जाने कहाँ से ख़बर ले आई थी कि भाभी के लिए सात सुहागिनें न्योती गई हैं, कल उन्हें बुलाया जाएगा और भाभी उनकी पूजा करेंगी और उनसे अपने सुहाग अर्थात् भैया के लिए भीख माँगेगी। वे सभी माँ गौरा की पूजा करके भैया को प्रसाद के रूप में भाभी को देंगी और भैया बच जाएँगे।

भैया बहुत बुद्धिमान थे। ढोंग-ढकोसले में कतई विश्वास नहीं रखते थे फिर भी जब मृत्यु सामने खड़ी हो तो आदमी उससे बचने का जो रास्ता सामने दिखाई दे, उसे चुन लेता है। भाभी को उन्होंने ऐसा करने के लिए कह दिया था।

अगले दिन पूजा थी। भाभी ने अच्छी साड़ी पहनी थी। अब गहने पहनने थे। पूरे श्रृंगार के गहने-बिल्कुल नई दुल्हन की तरह-गहने माँ की अलमारी में थे। माँ ने गहने नहीं दिए थे, 'अपने मायके से लाई है सो पहन, तेरा क्या है आज लिए, फिर कभी वापिस ही न करे। मेरे बेटे का क्या... बचा न बचा... तू तो गहने लेकर निकल जाएगी अपनी माँ के यहाँ... हाँ नहीं तो... हम गहने नहीं देंगे।'

लाख कोशिशों के बाद भी माँ ने गहने नहीं दिए थे। मैं भी ज़िद पर अड़ गया था, 'आज मैं अलमारी का ताला तोड़ दूँगा, भाभी को गहने दे दो अम्मा।'

'तू पागल हो गया है... तेरे लिए ही तो सँभाल के रखना चाहती हूँ पगले... तेरे भैया का क्या... ये उठाए लहँगा चली जाएगी। तू समझने की कोशिश कर... हाँ नहीं तो......।' माँ ने मुझे समझाया था। मैं नहीं समझा था लेकिन माँ के आगे हार गया था। कहा तो भैया ने भी था, 'दे दो अम्मा...गहने...शांति को एक बार... सिर्फ एक बार उसे दुल्हन की तरह सजा सँवरा देखना चाहता हूँ।' माँ ने भैया की बात को हवा में उड़ा दिया था। भाभी अधूरी

दुल्हन ही बनी रही थी।

सात सुहागिनों में से एक दो ऐसी भी थीं जो चूकना नहीं चाहती थीं, 'ए दइया... मैके से एक भी गहना नहीं लाई... शांति।' मैंने उन्हें घूरा था तो वे चुप हो गई थीं।

माँ गौरा की पूजा हुई थी। सातों सुहागिनों ने भाभी की झोली भैया से भर दी थी। भाभी अधूरी दुल्हन बनी भैया के चरणों में सिर रखे न जाने कितनी देर तक रोती रही थी। सुहागिनें चली गई थीं।

और माँ गौरा की पूजा के ठीक अगले दिन... हाँ अगले दिन ही तो... मेरे भैया... मेरे भैया।

भैया चले गए थे हमेशा हमेशा के लिए। अल्हड़, मदमस्त हथिनी सी घूमने वाली भाभी को उस दिन मैंने देखा था। उनके रोने से धरती का भी सीना फटा जा रहा था। मैं कभी भी नहीं जान पाया था कि भाभी भैया को इतना चाहती थी। भाभी को मैने सँभालने की कोशिश की थी। माँ ने रोक दिया था मुझे।

भैया के चले जाने पर वही घर जो स्वर्ग सा लगता था... अब काट खाने को दौड़ता था। भाभी अब चहकती नहीं थीं। शांत-चुप मानों तूफ़ान आकर चला गया हो और अपने पीछे बर्बादी और सिर्फ बर्बादी छोड़ गया हो।

भैया की मृत्यु के ठीक पंद्रहवें दिन माँ ने फरमान जारी कर दिया था, 'बहू परसों तेरे पिताजी आएँगे उनके साथ अपने मायके चली जाना...।'

मैंने माँ से कहा भी था, 'माँ भाभी तो इस घर की बहू है उसे इस तरह मत भेजो।'

'तो किस तरह भेजूँ।' फिर मेरे कान के कहने लगी थी, 'तेरे भैया को टी बी थी इसे टी बी होना पक्का है...यहाँ रहेगी तो तुझे और मुझे भी ख़तरा है। इसका जाना ही अच्छा है।'

उस दिन मुझे माँ पर बहुत ग़ुस्सा आया था। मैंने माँ से बोलना बंद कर दिया था।

भाभी चली गई थी अपने पिता के साथ। मैं उन्हें देखता रहा था। अपने पिता के साथ जाते-जाते उन्होंने आख़िरी बार मुझे देखा था और... रोई थी या नहीं... मैं नहीं जानता। बस, उसके बाद तो वह चल नहीं रहीं थीं भाग रही थीं मानों कोई उनका पीछा कर रहा हो।

भैया की मृत्यु की पहली होली के पश्चात् माँ ने मेरी शादी की बात शुरू कर दी थी। मैंने शादी के लिए मना कर दिया था। माँ ग़ुस्सा थी और मैं ज़िद पर।

एक दिन माँ सुबह घूमने गई थी। हमारा सात बीघा खेत था वहाँ से लौटकर आ रही थी और अपने साथ कुतिया का पिल्ला भी ले आई थी, 'लौट रही थी खेत से...ये...ये...मेरे पैरों को चूमने लगा था...साड़ी खींच रहा था...बिल्कुल वैसे ही...हाँ...हाँ.. बिल्कुल ऐसे ही...श्याम छोटे पर मेरी साड़ी खींचा करता था...इसे ले आई हूँ...मुझे तो ऐसा लगता है जैसे इसमें मेरे श्याम की आत्मा समा गई हो।' और माँ उस कुतिया के पिल्ले को श्याम-श्याम पुकारे जा रही थी।

मुझे लगा था कि किसी ने मुझे जलती हुई आग में झोंक दिया हो, 'और जिसमें श्याम भैया की आत्मा बसती थी...उसे तो एक महीने भी घर में नहीं रहने दिया। उसका क्या ! वाह अम्मा वाह...अपने बेटे की आत्मा खोजी भी तो किसमें... इस कुतिया के इस पिल्ले में।'

' तू चुप कर...हाँ नहीं तो।' माँ ने मुझे डाँट दिया था। मैं बहुत खिसियाया हुआ था। माँ जैसे ही घर से बाहर गई, मैंने उस कुतिया के पिल्ले को बोरी में बंद किया और दूर एक तालाब में फेंक आया था। कुतिया का वह पिल्ला लौटकर फिर कभी नहीं आया था।

भाभी का असीम और निश्छल प्यार... भैया की यादें साथ लिए ख़ूब मेहनत करता रहा था मैं। भैया की तरह बुद्धिमान तो नहीं था, फिर भी उनका कुछ असर तो रहा ही था कि शिक्षा अधिकारी बन गया था। स्कूलों का निरीक्षण करना आदि मेरे काम थे। बहुत बड़ा स्टॉफ़ था। शान-शौकत थी, लेकिन न जाने क्यों एक काँटा सा चुभता रहता था।

उस दिन एक स्कूल का निरीक्षण करने पहुँच गया था। स्कूल के कर्मचारी, अध्यापक, प्रिंसिपल और बच्चे मेरे स्वागत में हाथ बाँधे खड़े थे। निरीक्षण के पश्चात्, सांस्कृतिक कार्यक्रम था। सरस्वती वंदना के पश्चात्, एनाउंस हुआ था, 'अब आपके सामने कक्षा सात का विद्यार्थी रमेश एक गीत प्रस्तुत करेगा।' बहुत सुन्दर और मासूम-सा एक किशोर माइक पर आया था और गाने लगा था,

ए चाँद आसमाँ के दम भर ज़मीं पे...।

उसने अभी गाना शुरू ही किया था कि मैं चीख पड़ा था, ' भैया ...।'

गीत बंद करवा दिया गया था। सब लोग परेशान थे। प्रिंसिपल सन्न रह गया था '.... यह क्या हो गया। कहीं रिपोर्ट ख़राब न लिख दें साहब......।' सुन्दर और मासूम सा वह किशोर सकपका गया था। मेरे आँसू थे कि थम ही नहीं रहे थे फिर भी मैं बोला था, 'बच्चे को पूरा गाना गाने दो।'

'ए चाँद आसमाँ के दम भर ज़मीं पे आजा
भूला हुआ है राही
तू रास्ता दिखा जा...।

जब तक बच्चा गाना गाता रहा मैं सिसकता रहा था। फिर मैं उठा और प्रिंसिपल रूम में चला आया था। प्रिंसिपल भी मेरे साथ-साथ सहमा-सहमा सा चला आया था।

'साहब, शांति का बेटा है...बहुत अच्छी और नेक दिल महिला है शांति...हमारे यहाँ काम करती है।' फिर प्रिंसिपल ने अपने एक अध्यापक से कहकर शांति को बुलवा लिया था।

श्वेत साड़ी में लिपटी ममता, स्नेह और प्यार की साक्षात् उस देवी को देखकर मेरे होंठ कब बजने लगे थे कोई नहीं जान पाया था, 'भाभी।' और भाभी, वह तो मुझे अपलक निहारे चली जा रही थी।

000

शालोम ब्रू

अनुजीत इक़बाल

अनुजीत इकबाल
4, राम रहीम एस्टेट, मलाक रेलवे क्रॉसिंग के पास, नीलमथा, लखनऊ, उत्तर प्रदेश- 226002
मोबाइल- 9919906100
ईमेल- anujeet.lko@gmail.com

धर्मकोट की उस शांत पहाड़ी पर, जहाँ बादल अक्सर चीड़ और देवदार के पेड़ों से लिपट जाते हैं, एक छोटा-सा कैफ़े था।

बाहर एक साधारण-सा बोर्ड टँगा था, "शालोम ब्रू" कैफ़े की खिड़कियों से दिखाई देता हिमालय, मानों जीवन के अनुभवों की एक खुली किताब हो। पहाड़ों की हर परत किसी अध्याय की तरह प्रतीत होती, कुछ हल्के, कुछ गहरे, और कुछ रहस्यमयी। जैसे किताबें अपने भीतर अनगिनत कहानियाँ और ज्ञान समेटे होती हैं, वैसे ही ये पहाड़। हर मोड़, हर घाटी, और हर शिखर मानों जीवन का कोई नया पाठ सिखाने के लिए तत्पर हो। कैफ़े के भीतर की दीवारें किताबों से भरी थीं, यहाँ वर्ड्सवर्थ, जॉन कीट्स, इलियट, लॉर्ड बायरन, व्हिटमैन, टॉल्स्टॉय, वर्जीनिया वुल्फ, शेक्सपीयर, जेन ऑस्टिन, खलील जिब्रान, टैगोर। किताबों के साथ हल्के संगीत का माहौल था, कभी इज़रायली किनोर धुनें, कभी मिडल ईस्ट औद की रहस्यमय गूँज, तो कभी जापानी कोतो की मधुर तान।

कैफ़े में घुसते ही ताज़ी पीसी हुई कॉफ़ी की ख़ुशबू साँसों में घुल जाती। गर्म कॉफ़ी के साथ ताज़े बेक किए हुए क्वासों और पेन औ चॉकलेट की मीठी महक वहाँ की हवा में रची-बसी रहती। एक कोने में देसी मसालों से महकता हुआ कैरेट और अखरोट का केक और पिसी हुई दालचीनी के साथ गर्म सॉरडो ब्रेड के लोफ। पास ही एप्पल पाई, चीज़केक और मैकरॉन्स की सजी हुई ट्रे, तो दूसरी ओर टार्ट्स और ब्रियोश बन्स की नरम सुगंध हर किसी को लुभा लेती।

अवंतिका जी, इस कैफ़े की मालकिन जो करीब उनसठ की उम्र में किसी शांत झील सी लगती थीं। सफ़ेद बाल जूड़े में सहेजे रहते, लंबा क़द और भूरी सी आँखें, जिनमें एक गहरी थकान सी नज़र आती थी। उनकी चाल धीमी थी, मानों वह वर्षों का अकेलापन अपने क़दमों में लेकर चल रही हों। वह अपने कैफ़े को बहुत लगाव से सँभालती थीं। उनके हाथों की बनाई "फ्रेंच प्रेस" कॉफ़ी यहाँ की पहचान थी। कभी-कभी वह ग्राहकों के साथ, जिनमें ज़्यादातर युवा थे, बैठकर उनके चाय-कॉफ़ी के प्यालों के संग किताबों, संगीत और जीवन पर चर्चा करतीं। उनके कैफ़े का हर कोना उनके व्यक्तित्व की तरह सरल, लेकिन गहराई लिए हुए था। कैफ़े का माहौल ऐसा था, मानों हिमालय के इस शांत कोने में समय ठहर गया हो।

वह लखनऊ से यहाँ आई थीं। वही लखनऊ, जहाँ की हवाओं में गंगा-जमुनी तहज़ीब घुली हुई थी। चौक की गलियों से उठती गुलाबों की ख़ुशबू, रूमी दरवाज़े की भव्यता और नवाबी दौर के क़िस्सों से सजी शामें। जहाँ मुग़लई खाने की ख़ुशबू, गुलाबी चाय और रेवड़ी मिलकर शहर की रूह को मिठास से भर देती थी। लेकिन अवंतिका जी का जीवन इस मिठास से कोसों दूर था। एक तीन कमरों के फ्लैट में उनका पूरा संसार सिमटकर रह गया था। जब पढ़-लिख कर अंग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर बनीं तो पिता का साया सिर से उठ गया और माँ डिमेंशिया से जूझ रही थीं। अवंतिका जी इकलौती संतान थीं। उनकी पूरी ज़िंदगी माँ की सेवा में गुज़र गई, बाद में माँ भी चल बसीं और अवंतिका जी अकेली रह गईं। उनके भीतर एक और जीवन छुपा था, सपनों से भरा, संभावनाओं से लबालब लेकिन वह जीवन उनके भीतर घुटता रहा। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और इच्छाओं को उन्होंने इस कदर दबा दिया था कि मानों उनका अस्तित्व ही मिट गया हो। लखनऊ की मिट्टी ने अवंतिका को बहुत कुछ दिया था। उनके विद्यार्थियों का निश्छल प्रेम, संगीत और लेखन के प्रति अद्भुत लगाव। उनके व्यक्तित्व में जो सादगी और गहराई थी, वह इसी शहर की देन थी। अंग्रेज़ी साहित्य के अनुवाद में उनका योगदान उल्लेखनीय था।

एक बार उनके एक सहकर्मी ने उनसे बड़े ही सहज भाव से पूछा था, "अवंतिका, आप शादी क्यों नहीं करतीं?"

अवंतिका ने हल्की मुस्कान के साथ जवाब दिया था, "कुछ लोग अकेले ही पूरे होते हैं।" यह जवाब सुनने वालों को गहराई से सोचने पर मजबूर कर देता था, पर उनके भीतर का सच

इससे बहुत अलग था। वह जानती थीं कि यह पूरा होने का एहसास महज़ एक आवरण था। उनकी माँ के जाने के बाद, लखनऊ के उस छोटे से फ्लैट में वह अकेली रह गई थीं। कमरों का सन्नाटा उनकी आत्मा के भीतर तक गूँजने लगा। कभी-कभी रात के अँधेरे में, जब पूरा शहर गहरी नींद में डूबा होता, वह अपनी डायरी लेकर बैठतीं। पन्नों पर शब्द उतरते जाते, जैसे वे उनका साथ निभाने आए हों। पर वह जानती थीं, शब्दों का सहारा स्थायी नहीं होता। उनका अकेलापन कभी-कभी इतना गहरा हो जाता कि वह ख़ुद को एक अनजान शून्य में तैरते हुए पातीं। अवंतिका जी का जीवन उस अधूरेपन की दास्तान था, जो बाहर से संपूर्ण दिखता था, पर भीतर से एक ख़ामोश पुकार बनकर रह जाता था।

स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद जब लखनऊ में रहना असंभव हो गया, तो उन्होंने सब कुछ बेच कर हिमाचल में धर्मकोट का रुख़ किया, क्योंकि वे अक्सर यहाँ आती रही थीं, कभी स्टूडेंट्स के साथ या कभी अकेले। यहाँ उन्होंने लोकल दोस्तों की सहायता से "शालोम ब्रू" कैफ़े खोला, जिसका अर्थ था शांति की कॉफी। अवंतिका जी ने दो तिब्बती सहायिकाओं को रखा, ताशी और पेमा, जो न सिर्फ अपनी मेहनत से कैफ़े को सजीव रखती थीं, बल्कि दोनों की ख़ासियत थी विदेशी बेक्ड चीज़ों में महारत। ताशी के हाथों में जैसे किसी जादू की छड़ी हो, जो मैडेलीन और कैनले को बिल्कुल वही स्वाद देती थी, जिसे लोग यूरोप में खाते हैं। पेमा की बेकिंग में ताज़गी और सादगी का संगम था। उसकी तैयार की हुई टार्ट टैटिन और अमारेती कुकीज़ हमेशा ताज़गी से भरी होती थीं। अवंतिका जी को गर्व था कि उसने इन दोनों के साथ मिलकर अपने कैफ़े को न केवल लोकल संस्कृति से जोड़ा, बल्कि अंतरराष्ट्रीय फ्लेवर भी वहाँ लाया। यह जगह कॉफ़ी और साहित्य प्रेमियों के लिए एक ठिकाना थी। कैफ़े में आने वाले लोग अक्सर किताबें पढ़ते, जीवन पर चर्चा करते।

अवंतिका जी का जीवन वहीं ठहर गया था। वह सुबह कैफ़े खोलतीं, किताबों की अलमारियों को ठीक करतीं और शाम ढलते ही खिड़की के पास बैठ जातीं। जब बाहर पहाड़ों की पगडंडियाँ अँधेरे में खो जातीं, ताशी और पेमा कैफ़े बंद करके चली जातीं तो अवंतिका जी वापस अपने कमरे में आ जाती, जो कैफ़े के ऊपर था।

दिसम्बर एक ऐसी ही शाम अवंतिका जी काउंटर के पीछे बैठी, पाब्लो नेरुदा की प्रेम कविताओं की किताब में खोई हुई थी। इज़रायली संगीत बज रहा था। दरवाज़ा खुला, और भीतर एक लंबा, दुबला-पतला लगभग साठ पैंसठ वर्ष का व्यक्ति दाखिल हुआ। सफ़ेद बाल हवा से बिखरे हुए थे, कमर थोड़ी झुकी, तीखी और सीधी नाक लेकिन उसकी आँखों में ऐसा गहरापन था जो पहली नज़र में ही खिंचाव पैदा कर दे।

उसने साधारण-सी हिन्दी में पूछा, "क्या यहाँ बैठ सकता हूँ।"

अवंतिका जी ने चौंककर सिर हिलाया। वह विदेशी था, लेकिन उसकी हिन्दी आत्मीय और सहज थी।

"अच्छी जगह है," उसने मुस्कराते हुए कहा।

"क्या इसे आपने बनाया है?"

"हाँ," अवंतिका ने हल्की मुस्कान के साथ जवाब दिया।

"मैं डैनियल हूँ," उसने हाथ जोड़ते हुए कहा, "इज़राइल से, लेकिन अब तो भारत मेरा घर है। हिमालय और अध्यात्म ने मुझे यहाँ रोक लिया है।" अवंतिका जी डैनियल को ध्यान से देख रही थीं, उसका व्यक्तित्व उसके यहूदी होने की पहचान करवा रहा था।

डैनियल की नज़र कोने में रखी किताबों की अलमारी पर पड़ी। वह धीरे-धीरे वहाँ गया, जैसे किसी पुराने मित्र से मिलने। उसकी उँगलियाँ किताबों के पन्नों को छूते हुए ठहर गईं। उसने मुड़कर पूछा, "क्या मैं इसे पढ़ सकता हूँ?"

अवंतिका ने हामी भरी, लेकिन उनकी नज़रें डैनियल के चेहरे पर टिक गई थीं। एक अजनबी होकर भी वह इतना परिचित क्यों लग रहा था?

डैनियल: " यहाँ कैफ़े में इज़रायली संगीत चल रहा है लेकिन कोई वहाँ की डिश भी हो, तो बताइए।"

अवंतिका, "जैसे हलवा, बाबका या बोरका?"

डैनियल: (चौंककर) "आपने बोरका का नाम लिया? अद्‌भुत! क्या आपके पास है?"

अवंतिका: (हँसते हुए) "जी, है।"

डैनियल: (गर्मजोशी से) "बस एक कॉफ़ी और बोरका।"

अवंतिका ने हल्की मुस्कान के साथ उसकी पसंद का ध्यान रखते हुए कॉफ़ी और ताज़ा डिश टेबल पर रखवा दी। दोनों में ख़ूब बातचीत हुई। डैनियल ने अपनी उँगलियों में कॉफ़ी के कप को थामा, और पहली चुस्की लेते ही उसकी आँखों में एक अपरिचित चमक उभरी और उसने अवंतिका जी को ध्यान से देखा। अवंतिका जी ने यह देख, चुपचाप अपनी दृष्टि खिड़की के पार मोड़ ली। दोनों के बीच की बातचीत सहज, निश्छल, और अप्रत्याशित थी। डैनियल की आवाज़ में कहीं दूर की वादियों की गूँज थी और अवंतिका जी के शब्दों में उस घाटी की चुप्पी, जो उसे सुन रही थी। वह उसकी कहानियों को सुनती रहीं। सुदूर देशों की बातें, समुद्रों के विस्तार, और उन जगहों का ज़िक्र, जिनका रंग और रूप उन्होंने केवल कल्पना में महसूस किया था।

सारी शाम में डैनियल तीन कप कॉफ़ी पी गया। तीसरे कप के बाद वह हँसते हुए बोला, "आपकी कॉफ़ी में ऐसा क्या है, जो मैं ख़ुद को रोक नहीं पा रहा?"

यह पहली शाम थी—बातों की शुरुआत का पहला स्वाद। डैनियल की आँखों में उनकी तरफ देखने का ढंग, उनकी हर बात को सुनने का धैर्य, और उसके उत्तरों में उस ख़ास ठहराव का स्पर्श... यह सब अवंतिका जी के लिए किसी अधूरे गीत की तरह था।

सर्दियों की वह शाम जैसे दोनों के बीच कोई अनकही बात लिख रही थी। शायद यह शुरुआत थी, उस कहानी की जो समय के साथ पन्ना दर पन्ना खुलने वाली थी।

अगले दिन अवंतिका जी को कैफ़े के

काउंटर पर सफ़ेद गुलाब रखा मिला। जिसके कार्ड पर डैनियल का नाम लिखा था। यह सिलसिला अब रोज़ का हो गया था। वह कोई पत्र नहीं लिखता, शब्दों की जगह फूल छोड़ जाता, जो कहने से ज़्यादा अनकहा कह जाते। फूलों को वह अच्छे से सहेज कर रख लेती और महसूस करतीं कि, यह प्रतीक्षा, यह मौन ही उनका संवाद है। सर्दियों के दिन अब जैसे अपनी एक नई लय में ढलने लगे थे। कैफ़े शालोम ब्रू की टेबल, जो पहले एक अजनबी कोने की तरह थी, अब डैनियल के लिए एक परिचित ठिकाना बन गई थी। वह नियमित आगंतुक बन गया था, और उसे अब कभी ऑर्डर देने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। अवंतिका जी उसकी पसंद जान चुकी थीं। कॉफ़ी के साथ एक प्लेट में स्ट्रॉबेरी टार्ट, कभी एप्पल स्ट्रूडेल, और कभी लेमन मैरिंग पाई। डनियल जब भी आता, वह खिड़की के पास वाली अपनी पसंदीदा सीट पर बैठता। बाहर, पहाड़ियों से उतरती ठंडी हवा और भीतर कॉफ़ी और बेक्ड चीज़ों की महक का मेल, जैसे किसी पुराने संगीत का सुर ताल। अवंतिका जी की नज़र हमेशा उसकी तरफ होती, पर यह नज़रें चुप्पी के भीतर छुपी बातें कहती थीं।

"आज क्या है?" डैनियल मुस्कराते हुए पूछता।

अवंतिका जी मुस्कराते हुए प्लेट उसके सामने रख देतीं जिन में कभी पाइन नट्स और कभी हनी टार्ट होता। डैनियल पहला निवाला लेता, और उसकी आँखों में चमक आ जाती और वह अवंतिका जी को प्रेम से देखता। उनके बीच की बातचीत, जैसे धीमी आँच पर सिंकते इज़रायली चल्लाह ब्रेड का स्वाद, हर शब्द, हर बात में सौंधी मिठास, जो मन के भीतर तक उतर जाती थी। डैनियल अपने यात्राओं के क़िस्से सुनाता और अवंतिका कभी उसकी बातों में खो जाती, तो कभी उसकी कहानियों के किसी अनकहे हिस्से को टटोलती। दोनों के बीच यह संवाद, जैसे किसी अनगढ़ कविता का रूप ले रहे थे।

शामें यूँ ही बीतने लगीं। डैनियल के लिए यह कैफ़े अब केवल एक जगह नहीं, बल्कि एक अनुभव बन चुका था और अवंतिका जी के लिए, हर डिश जो वह उसके लिए परोसती, जैसे किसी अनकही भावना का इज़हार थी। खिड़की के बाहर धुँध के पार छुपी घाटियाँ और भीतर की इस कहानी में, एक अनजानी समानता थी। दोनों अपनी गहराई में किसी को खींच लेने की ताक़त रखती थीं।

वह हर बार नई कहानियाँ अवंतिका जी को सुनाता, उसकी अपनी यात्राओं की कहानियाँ। उसने जवानी के दिनों में दो बार माउंट एवरेस्ट फतह की थी, इसके इलावा कंचनजंगा, किलिमंजारो, मकालू आदि की यात्राएँ वह अनंत बार कर चुका था। माउंट एवरेस्ट पर चढ़ाई करने वाले पहले इज़रायली व्यक्ति डोरोन एरन से प्रभावित होकर उसने जीवन भर यायावरी को ही अपना धर्म बना लिया था। परिवार बसाने का ख़याल कभी उसकी प्राथमिकताओं में नहीं रहा। जवानी के दिनों की कुछ अधूरी प्रेम कहानियाँ उसने अवंतिका जी को सुनाई थीं, जो कभी अपने मुकाम तक नहीं पहुँच सकीं। अपनी घुमक्कड़ी के साथ वह हर बार अकेला ही चलता रहा, मानों उसकी सच्ची जीवन संगिनी उसकी यात्रा ही हो। उसका ज़्यादातर वक़्त यहाँ धर्मकोट या कसोल में बीतता, जहाँ उसके देश के अन्य लोग भारतीय जीवन में रचे बसे थे। वह गले में एक चेन डाले रहता था जिसमें एक हंसा के डिज़ाइन वाली अँगूठी होती थी।

अवंतिका जी रोज़ उसका इंतज़ार करतीं और उसके पास बैठ कर उसकी यात्राओं के बारे में सुनती रहतीं। उतनी देर कैफ़े को ताशी और पेमा सँभालतीं।

एक दिन अवंतिका जी ने साहस करके पूछा, "यह हंसा वाली अँगूठी जो आपने गले में पहनी है... इसकी क्या कहानी है?"

डैनियल ने क्षणभर अँगूठी को देखा, जैसे कोई पुरानी स्मृति का द्वार खुला हो। उसकी आवाज़ धीमी और गहरी हो गई।

"यह मेरी माँ की थी। जब मैं छोटा था, वह इसे पहनकर कहती थीं, "हंसा आत्मा का दूत है। यह हर तूफ़ान में सही दिशा दिखाएगा।" डैनियल कुछ पल रुका, फिर कहा, "माँ अब नहीं हैं। लेकिन इस अँगूठी में उनका स्पर्श बचा है। कभी-कभी लगता है, यह मुझे उनके पास वापस ले जाएगी।" अवंतिका ने चुपचाप उस अँगूठी को देखा। उसमें जैसे माँ की याद की एक अनकही कहानी जीवित थी।

शालोम ब्रू में अवंतिका और डैनियल एक अदृश्य पुल के दोनों किनारों पर खड़े यात्री थे, जैसे कोई किसी अंतरिक्षीय यात्रा पर निकले हों, समय और स्थान के बंधन से मुक्त। अवंतिका का चेहरा, जो हमेशा अपने भीतर की गहरी सोच को ढके रहता था, अब हल्का हो रहा था, वह उनसठ की उम्र में, फिर से युवावस्था की ताज़गी को महसूस कर रही थीं जैसे शरीर और आत्मा ने समय की सीमाओं को पार कर लिया हो। वे दोनों, एक अदृश्य राग में बँधे हुए थे, वह राग न किसी शब्दों में समाया था, न किसी ध्वनि में, वह बस एक अनुभव था। डैनियल का उनके जीवन में आना सिर्फ एक संयोग नहीं था, बल्कि एक चेतना की जागृति थी। जहाँ कोई सोच नहीं थी, कोई भविष्य नहीं था, बस वर्तमान का एक संगीत था, जो भीतर से बाहर और बाहर से भीतर बह रहा था।

एक शाम वे दोनों पहाड़ की चोटी पर खड़े थे। सामने धौलाधार का बर्फ़ से ढका विस्तार था, जैसे उस पहाड़ ने अपनी आत्मा के सच्चे रंगों को शांतिपूर्वक आच्छादित कर लिया हो। चाँदनी जब बर्फ़ पर गिरती, तो पूरा इलाक़ा एक दिव्य आभा में डूबा प्रतीत होता। ठंडी हवा देवदार और बाँज के वृक्षों के बीच से गुज़रती हुई ऐसे महसूस हो रही थी जैसे कोई अदृश्य बाँसुरी बजा रही हो। कहीं दूर हिमालयन मॉनाल पक्षियों की स्वर-लहरियाँ सुनाई दे रहीं थीं। नीचे की पहाड़ी से मोनेस्ट्री से हल्का धुआँ उठ रहा था, जैसे पर्वतों की गहरी चुप्पी में कुछ अज्ञेय विचार ऊपर उठ रहे हों।

डैनियल ने धीरे से कहा, "क्या आपने सुना? ये हवा, ये पक्षी...ये पेड़ों की फुसफुसाहट...सब अपनी कहानी कह रहे हैं।" अवंतिका ने उस वक़्त महसूस किया कि पहाड़ का मौन, सचमुच मौन नहीं था। वह

एक अदृश्य गीत था। एक सुंदर कविता। अवंतिका जी की आँखें, जो दूर किसी काल्पनिक संसार में खोई हुई थीं, वापस डैनियल की तरफ लौट आईं।

उन्होंने धीरे से कहा, "डैनियल..सुनिए, एक कविता है।" उन्होंने बिना किसी तैयारी के, सहज ही पाब्लो नेरुदा की कविता सुनानी शुरू की।

"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ,
यह जाने बिना कि
कैसे, कब, या कहाँ
मैं तुमसे प्रेम करती हूँ,
बिना किसी जटिलता या गर्व के
निश्चल, निष्कपट प्रेम...
क्योंकि मुझे पता है
इसके अलावा
कोई और रास्ता नहीं है...।"

उनके शब्द हवा में तैर रहे थे। वह पल जैसे ठहर गया था। दो प्रेमियों का मिलना, बर्फ़ के पहाड़ों और उन ठंडी हवाओं के बीच, जहाँ सब कुछ था, फिर भी कुछ नहीं था। शब्दों का असर पहाड़ की चुप्पी में गूँज उठा था। डैनियल उनकी बातें गहरे ध्यान से सुन रहा था, और फिर उसने आवाज़ में एक ठहराव के साथ कहा, नेरुदा तो यह भी कहते हैं, "क्या कहते हैं चक्रवातों को, जब वे ठहरे हुए होते हैं?" अवंतिका जी उसके शब्दों का अर्थ समझ रही थीं, जैसे वे उनके अपने अनुभवों की गूँज हो, लेकिन कुछ बोली नहीं, मानों उन शब्दों का उत्तर उनके भीतर गहरे कहीं छिपा हुआ था, जिसे वह शब्दों में नहीं बता सकती थीं।

दोनों वापस कैफे की तरफ चल पड़े। चलते चलते डैनियल एक यहूदी गाना गुनगुनाना रहा था "एरेव शेल शोशनीम, नेत्से ना एल हाबुस्तान।".. जिसका अर्थ उसने अवंतिका जी को बताया कि "यह गुलाबों की शाम है, चलो बगीचे की ओर चलें, जहाँ सुगंधित फूल और ख़ुशबू हमारी राह को सजाएँगे..।" दोनों की आँखें ऐसी थीं जैसे दोनों ही अपने भीतर कुछ अनदेखा खोज रहे हों। उनके गानों और कविताओं में एक नई लय थी, जैसे एक दूसरे के पास आना ही था, बिना किसी शब्द या सीमा के। दोनों का अकेलापन धीरे-धीरे मिटता जा रहा था, जैसे पगडंडी पर चलते हुए वे एक-दूसरे के संग वह ख़ालीपन भर रहे हों, जिसे कभी शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता था।

अवंतिका जी ने देखा, डैनियल की आँखों में भी वही नमी थी, जो उनके अपने दिल में थी। उनका यह मिलन, यह यात्रा, जैसे एक अदृश्य धागे से बँधी हुई हो। एक बेज़ुबान समझ, जो दोनों के बीच अब एक सहज सी बात बन गई थी। वह जानती थीं या शायद नहीं भी जानती थीं कि इस पल के साथ ही, इस पहाड़ी रास्ते पर, प्यार धीरे-धीरे क़दम रखते हुए दस्तक दे रहा था। जैसे उनके बीच कुछ अनकहा था, जो धीरे-धीरे अब शब्दों में तब्दील हो रहा था। विशुद्ध प्यार, जो अभी तक दबे पाँव आ रहा था, अब अपना रूप लेने को लगभग तैयार था। वे दोनों, अकेले होते हुए भी, किसी और ही जगह, किसी और ही समय में मौजूद थे, पैरेलल युनिवर्स में शायद।

समय आगे बढ़ रहा था और उनका अनकहा प्यार भी। फरवरी की बर्फ़बारी की उस शांत और सर्द शाम, जब धर्मकोट को बर्फ ने अपनी आगोश में लेकर उसकी गति को शांत कर दिया था, अवंतिका जी अकेली कैफ़े में बैठी हुईं थीं। खिड़की से गिरती हुई बर्फ को देख रही थीं। उनकी दृष्टि में एक अधूरी प्रतीक्षा थी, एक अनकहा आह्वान। शायद उनको किसी का इंतज़ार था। फिर अचानक, दरवाज़े के उस ओर बर्फ़ की चादर के बीच एक छाया सी महसूस हुई। दरवाज़ा खुला और डैनियल का चेहरा, जो सर्द हवाओं और बर्फ़ के फाहों से नम था, सामने आया। उसकी आँखों में वही हल्की सी गर्मी थी, जो अवंतिका जी ने हमेशा महसूस की थी। वह चुपचाप, फायरप्लेस के पास जाकर बैठ गया, बिना किसी शब्द के। अवंतिका जी ने बिन कहे, उसे फ्रेंच प्रेस कॉफी और बाबका दिया, बाहर का साइन टाँगा और ख़ुद भी आकर उसके पास बैठ गईं।

आज तक वे दोनों भीड़ में मिले थे। जब उन्होंने पहली बार एकांत में एक-दूसरे की आँखों में देखा, तो जैसे सब कुछ ठहर गया। कोई आवाज़ नहीं, कोई हलचल नहीं। डैनियल ने धीरे से अवंतिका के हाथ को छुआ और उस पल ने दोनों को ऐसे अपनी गिरफ़्त में लिया, जैसे एक चुप्प सन्नाटा, जो एक-दूसरे के ख़यालों में खो जाने का पैगाम हो। उनके बीच की दूरी जैसे सिमट कर ग़ायब हो गई और वह नाज़ुक स्पर्श दोनों के दिलों में एक हलचल की तरह महसूस हुआ।

डैनियल ने एक शांत मुस्कान के साथ "हंसा" के डिजाइन वाली अँगूठी अवंतिका जी को पहना दी। अँगूठी में हाथ और एक आँख उकेरित थे, यह न केवल रक्षा का प्रतीक थी बल्कि एक अनकहा वादा भी, एक सूक्ष्म-सा इशारा था। अपनी माँ की अँगूठी किसी को देना, शायद यही एक ऐसा पल होता है, जब शब्द नकारे जाते हैं और भावनाएँ अपनी पूरी गहराई में व्यक्त होती हैं।

अवंतिका जी की आँखों में नमी थी, जो शब्दों से कहीं अधिक कह रही थी। पहली बार, उनके दिल में यह एहसास गूँजा कि कोई उनकी आत्मा के उस कोने को देख सकता है, जहाँ प्यार और स्नेह की तलाश, निराशाओं में खो गई थी।

अवंतिका जी कुछ सँभल कर बोलीं, "डैनियल, तुमने ओब्लिवियन के बारे में सुना है।"

डैनियल- "ओब्लिवियन? यह किसी कविता का नाम लगता है।"

अवंतिका जी- "नहीं, यह एक नदी है। कहते हैं, जो भी वहाँ पहुँचा, उसने अपने सारे दर्द, सारी यादें... सब कुछ भुला दिया।"

डैनियल (मुस्कराते हुए)-"और यह नदी कहाँ मिलती है?"

अवंतिका जी- "यही तो रहस्य है। इसका रास्ता कोई नहीं जानता। ये किसी नक्शे में नहीं है।"

डैनियल (थोड़ा हैरान)- "तो लोग वहाँ पहुँचते कैसे हैं?"

अवंतिका जी (धीमे स्वर में)- "शायद खोजने से नहीं, बुलाने से। जिसने भी उसे पाया, उसने उसकी धारा में डुबकी लगाई...या उसका जल पिया...फिर, वह हर दुख, हर कसक से मुक्त हो गया।

डैनियल (सोचते हुए)- "हर दुख? क्या यह सच है?"

अवंतिका जी (आँखों में गहराई लिए)- "हाँ, डैनियल। यहाँ तक कि वह प्यास भी मिट जाती है, जो जन्म-जन्मांतर से इंसान के साथ चलती है।"

डैनियल (धीरे से)- "यह नदी की बात नहीं कर रहीं हैं आप।"

अवंतिका जी (मुस्कराकर)-"तो तुम समझ गए।"

डैनियल (आँखें मूँदते हुए)-"तो क्या आपको वह नदी मिल गई अवंतिका?"

अवंतिका जी - "शायद नदी ने ख़ुद मुझे बुला लिया।"

बर्फ गिरती रही, फायरप्लेस जलता रहा और कैफ़े की पीली रोशनी में गूँजती जैज़ म्यूजिक की धुन, यह सब जैसे समय की धारा को रोककर उन्हें एक साथ समेट लेना चाहता हो। वे दोनों एक-दूसरे के क़रीब बैठे रहे, पूरी दुनिया से बेख़बर और उस पल में, उनके बीच केवल एक ही सच था "एक-दूसरे के प्रेम का एहसास" जिसे केवल वायु, अग्नि और हिम ही समझ सकते थे। प्रकृति जैसे श्वास रोक, उस क्षण की साक्षी बन रही थी।

इस रिश्ते का क्या भविष्य था? दोनों में से कोई भी नहीं जानता था। प्रेम भविष्य नहीं देखता, वह बस वर्तमान में होता है। वह सिर्फ उस पल की सच्चाई है, जो हम जीते हैं। उम्र और समय, ये सब प्रेम के रास्ते में रुकावट नहीं डाल सकते। यह तो एक मुक्त प्रवाह है, जो किसी भी बंधन से परे, हमारी आत्मा को संपूर्ण करता है।

अवंतिका जी ने अपने सपनों का संसार पा लिया था, क्योंकि वे जान चुकी थीं कि प्रेम वही है जो बिना किसी अपेक्षा के बस "होता" है। वह प्रेम में खो गईं, उस शुद्ध प्रेम में, जो उम्र, समय, देशकाल, धर्म और परिस्थितियों से परे था। एक निर्वाण, जहाँ कोई बीती हुई यादें नहीं थीं, न भविष्य की चिंता। दोनों वर्तमान में, यहीं और अब, खोए हुए थे।

"शालोम ब्रू" के भीतर दोनों प्रेमी उस क्षण में पूरी सृष्टि को समेटे हुए थे।

000

लघुकथा

बैनर

डॉ. दिलबाग सिंह विर्क

"तुम्हें पता है इन पर क्या लिखा है।" बैनर लगा रहे कुछ बच्चों से मनीष ने पूछा।

"नहीं!" तीन-चार आवाज़ें आईं।

"हाँ!" थोड़ी दूर बैनर चिपकाने की तैयारी कर रहे बच्चे की एक दबी-सी आवाज़ आई।

"वाह! बताओ क्या लिखा है।" मनीष ने उसकी तरफ़ बढ़ते हुए कहा।

"मेहनत-मज़दूरी न करवाओ, इन हाथों को क़लम थमाओ।" बच्चे ने शब्दों को जोड़ - जोड़कर पढ़ा।

"इसका मतलब पता है?" मनीष ने सवाल किया।

बच्चे चुप थे। पता नहीं उन्हें नारे का मतलब पता नहीं था या उन्हें मनीष का सवाल समझ नहीं आया था। उन्हें चुप देखकर अमित ने बैनर की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा,

"इससे तुम्हें क्या मिलेगा?"

"पैसे।" एक बच्चे ने कहा।

"खाना।" दूसरे ने कहा।

"तुम स्कूल जाते हो?" अमित ने पूछा।

"नहीं।" सामूहिक रूप से उन्होंने कहा।

"तुम भी नहीं जाते।" मनीष ने उस बच्चे से पूछा जिसने पोस्टर पढ़कर सुनाया था।

"पहले जाता था, अब नहीं।" उस बच्चे ने बैनर दीवार पर चिपकाते हुए कहा।

"क्यों?" अमित ने एक और सवाल किया।

"माँ काम पर भेज देती है।" बच्चा बैनर चिपकाने के बाद आगे बढ़ गया। बाकी बच्चे भी बैनर लगा रहे थे। अमित और मनीष चाय पीने के लिए रुके थे। गाड़ी की तरफ़ लौटते हुए उन्हें ये बच्चे दिखे। बाल मज़दूरी के ख़िलाफ़ बैनर वे रास्ते में देखते आ रहे थे। बच्चों को बैनर लगाते देख मनीष ने अमित को उनसे बात करने के लिए मजबूर किया था।

"बाल मज़दूरी के ख़िलाफ़ क़ानून बने होने के बावजूद यह सब कैसे हो रहा है।" मनीष की आवाज़ में आक्रोश था।

"कानून की धज्जियाँ उड़ाना तो इस देश में बड़प्पन का काम है।" अमित ने सहजता से कहा।

"प्रशासन को कुछ तो करना चाहिए।" मनीष के युवा खून ने उबाल मारा।

"हर आदमी व्यवस्था से जुड़कर उसका अंग बन जाता है, क्योंकि व्यवस्था से लड़ना बहुत मुश्किल है।" अमित ने अनुभव के दम पर कहा और गाड़ी की ओर चल पड़ा। मनीष उसके पीछे तो चल पड़ा, लेकिन उसका दिल बेचैन था, बैनर उसकी आँखों से ओझल होने का नाम नहीं ले रहे थे।

000

डॉ. दिलबाग सिंह विर्क, पीओ - मसीतां, डबवाली, सिरसा (हरियाणा)
मोबाइल- 9541521947
ईमेल- dilbagvirk23@gmail.com

लाल छत वाला घर

ममता त्यागी

आकाश को छूने की होड़ में लगी ऊँची सी इमारत के तेईसवें माले की बालकनी में खड़े होकर वह कनाडा की ख़ूबसूरती को निहार रही थीं। जहाँ तक नज़र जाती ऊपर नीला स्वच्छ आकाश जिसमें बादल अठखेलियाँ कर रहे थे। उनके बीच से जब कोई हवाई जहाज़ गुज़रता तो उसे पल भर अपने आग़ोश में लेते और फिर निरभ्र आकाश में स्वच्छंद विचरण करने को छोड़ देते। तीव्र गति से बहती साँय-साँय करती हवा कानों में सीटियाँ सी बजा रही थी। नीचे सड़क पर चींटियों की क़तार से दिखते अनवरत भागते वाहन और बीच-बीच में कानफोड़ू साइरन से वातावरण को गुंजायमान करते फायर ट्रक अलग ही समा बाँध रहे थे। दायीं तरफ़ दूर रंग-बिरंगे वृक्षों की इन्द्रधनुषी छटा मन मोह रही थी।

कनाडा में फॉल का अपना अलग ही समा दिखाई देता है। वातावरण में हल्की सी ठंडक का स्पर्श पाते ही वृक्षों के पत्ते अपना रंग बदल कर कहीं लालिमा, हरीतिमा में डूब और कहीं पीली चादर ओढ़ कर मुस्कराने लगे थे। तेज़ चलती हवाओं के संग झूम-झूम कर जैसे अपने जीवन का आख़िरी गीत गा रहे हों। बस कुछ दिन और यह समा रहेगा, फिर तीव्र हवा के झोंके इन्हें डालियों से अलग कर अपने साथ उड़ा ले जाएँगे। ज़मीन पर लाल-पीला-हरा क़ालीन सा बिछ जाएगा और उदास वृक्ष ठूँठ से खड़े रह जाएँगे, आने वाले समय की भीषण बर्फ़बारी को झेलने और सफ़ेदी की चादर ओढ़ने के लिए।

यही प्रकृति का नियम है, यही परिवर्तन है जिसे हम सबको चाहे अनचाहे स्वीकारना ही पड़ता है।

उसकी अपनी ज़िंदगी भी तो परिवर्तन के थपेड़े खाती हुई कहाँ से कहाँ आ चुकी थी और अब तो ज़िंदगी एक अटैची में सिमट कर रह गई थी। एक यायावर की तरह कभी यहाँ कभी वहाँ, ज़िंदगी की दौड़ में क़दम बढ़ाती। उम्र के इस पड़ाव पर अब बच्चों के अनुसार उनकी ज़रूरत के अनुसार उसने ख़ुद को ढाल लिया था। कभी कनाडा, कभी अमेरिका और यदा कदा इंडिया, बस इसी तरह यात्राओं में जीवन निकल रहा था। इंडिया का ख़ाली घर अब बाँहें फैलाए प्रतीक्षा करता है परंतु अकेले अब उस घर में रहा नहीं जाता। यदि कणिका के पापा हाथ छुड़ाकर असमय ही यूँ न चले जाते तो आज ज़िंदगी कुछ और ही तरह गुज़र रही होती। सारी उम्र उन्होंने बस अपने मन का किया, उन्हें कभी बोलने नहीं दिया, और जब गए तब भी ऐसे अचानक चले गए सब कुछ मन में ही रह गया।

हमेशा कहते थे बेटी के पास घूमने चले जाएँगे लेकिन रहना तो इंडिया में अपने घर में ही है। समर और कणिका हमेशा कहते रहते कि कनाडा भी अब आपका ही घर है पर वह तो मानते ही नहीं थे। उनकी सोच उनके तो विचार वही पुरातनपंथी थे कि बेटी के घर कैसे रह सकते हैं और विधाता की रचना ऐसी हुई कि कनाडा बेटी के घर आए बिना ही दुनिया छोड़ गए और उन्हें जीवन के इस मोड़ पर मँझधार में थपेड़े खाने के लिए अकेला छोड़ दिया, सहसा ज़िंदगी बदल गई।

अब समर और कणिका ने नया घर लिया तो उसकी ज़रूरत देखते हुए फिर से कुछ महीनों के लिए कनाडा आई थीं। बच्चों की अब ज़िद थी कि वापस नहीं जाना है पिछले दो सालों से बार-बार आते जाते अब उन्हें भी लगने लगा था कि इस ज़िंदगी को अपनाना और सहजता से स्वीकारना ही सही रहेगा। कुछ देर बालकनी से ख़ूबसूरत नज़ारा देखते हुए अपने विचारों में खोई रहीं और फिर सहसा ध्यान आया कि अभी सारी पैकिंग करवानी है तीन दिनों बाद तो यहाँ से चले जाना होगा।

यहाँ की बालकनी से देखते हुए सामने टोरंटो की गगनचुंबी इमारतों पर पड़ती सूर्य की किरणें जब अपना सुनहरा रंग बिखेरती थीं तो लगता था सब कुछ स्वर्णिम हो गया। ऐसा नज़ारा अब कहाँ देखने को मिलेगा। अपार्टमेंट की ज़िंदगी से निकलकर दूसरे शहर के बड़े से घर की

ममता त्यागी
411 ब्रायरली ड्राइव, एपेक्स, नॉर्थ कैरोलाइना यू एस ए
मोबाइल-9842186178
ईमेल- mamta.t80@gmail.com

ज़िंदगी। बिल्डिंग में भी बहुत से लोगों से जान पहचान हो गई थी। यहाँ अधिकतर भारतीय थे तो उन्हें अपनी भाषा बोलने वाले सब अपने से लगने लगे थे, मन लगने लगा था। अब नई जगह पता नहीं किस तरह के लोग मिलेंगे तो मन बड़ा शंकित सा था।

अगले सप्ताह वह बच्चों के साथ उनके नए घर में थी। टोरोंटो की भीड़ भरी ज़िंदगी के बाद शहर से थोड़ा दूर खुली सी विस्तृत कम्युनिटी में प्यारा-सा घर, सड़क के दोनों तरफ़ लगे वृक्षों की पंक्तियाँ देखते ही मन मुग्ध हो गया और ऊँची बिल्डिंग से आकाश और दूर तक फैला शहर निहारने का ग़म जाता रहा। सड़क के एक तरफ़ मेपल के पेड़ों की पंक्तियाँ थीं जिनके पत्तों का अब रंग सुर्ख़ हो चुका था और दूसरी तरफ़ पीले पत्तों से लदे पेड़ थे। कुछ घरों के बाद सड़क बंद थी जिस कारण उसे क्रेसेंट कहा जाता था और वहाँ बना था एक बड़ा सा घर, जिसकी ढलुआ लाल छत दूर से ही अपने आकर्षण में बाँध लेती थी। एक पल को उस घर को देखकर लगा वह नैनीताल के किसी घर को देख रही है। हिमाच्छादित देवदार के वृक्षों से घिरा ढलुआ लाल छत का वह बँगला उसे हमेशा ही आकर्षित करता था। उसे लगा जैसे वह ओंटारियो में नहीं बल्कि उत्तराखंड या कुमायूँ के ख़ूबसूरत पहाड़ों में है। पूरी लेन पत्तों से ढक सी गई थी और उस घर की लाल छत पर तो हवाओं ने लाल और पीले पत्तों की चादर सी बिछा दी थी।

पूरी सड़क पर हवा से संग बहते लाल पीले पत्ते ऐसे लग रहे थे मानों वर्दी पहने फ़ौज की कोई टुकड़ी कहीं आक्रमण करने जा रही हो और सहसा सिपाही स्वच्छंद हो इधर-उधर भागने लगे हों।

शनिवार का दिन आया तो देखा पड़ोस के सब लोग अपने-अपने घरों से बाहर थे। मौसम में हल्की सी गर्मी थी, धूप भी चटक निकली हुई थी, कनाडा वासियों के लिये तो यह दिन किसी वरदान से कम नहीं था। सबने अपने-अपने फ्रंट यार्ड और बैक यार्ड से लोहे के बड़े-बड़े कँटीले झाड़ूनुमा डंडों से पत्ते एकत्रित किए और काग़ज़ के बने बड़े-बड़े

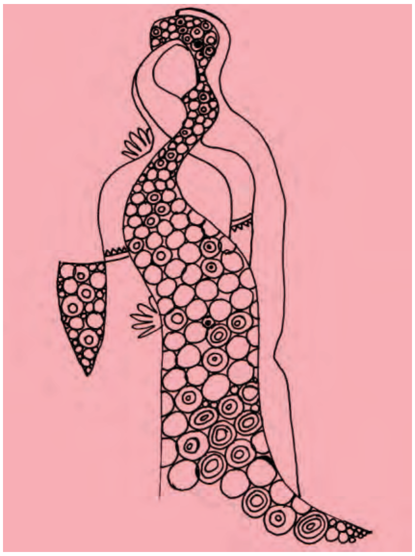

लिफ़ाफ़ों में भरकर रख दिए। सोमवार को ट्रैश जाएगा तो गाड़ी भरकर सारे पत्ते चले जाएँगे, यह वहाँ का नियम था। अगर पत्ते समेट कर लिफ़ाफ़ों में भरकर न रखे गए तो फाइन लगना निश्चित था। इंडिया में तो अब तक जगह-जगह पत्तों में आग लगा कर लोग हाथ सेक रहे होते, वातावरण के नुक़्सान की किसी को परवाह ही नहीं होती।

पूरे सप्ताह मौसम खुला रहा, हवा धीमे-धीमे बहती रही और पत्ते यूँही सड़क पर अठखेलियाँ करते रहे। घर काफ़ी हद तक सेट हो गया था तो उन्होंने सोचा अब सैर शुरू की जाए मन भी लगेगा और आस-पड़ोस को समझने का अवसर भी मिलेगा। बच्चे तो सुबह ही अपने-अपने काम पर निकल जाते थे, सारा दिन वह घर पर अकेली होतीं। अपार्टमेंट में तो वह दिन के समय काम ख़त्म कर नीचे चली जाती थीं और कोई न कोई साथ मिल जाता था, सैर करतीं, बातें करतीं। यहाँ बग़ल के घर में रहने वाली लिज़ा मिली जो बड़ी मिलनसार तबीयत की, मददगार थी। फिर भी लगता था कोई हमउम्र होता तो अच्छा था।

उन्होंने सैर करनी शुरू की तो पहले अपनी ही लेन में घूमने लगी। अभी रास्ते पूरी तरह समझ नहीं आए थे तो अपनी कम्यूनिटी ही अधिक सुरक्षित लगती थी, सड़क के पार करते ही एक पार्क भी था कई बार वहाँ चली जातीं। जब भी उस कोने के लाल छत वाले घर के पास से निकलती तो उन्हें एक उत्सुकता सी होती थी, कौन रहता होगा इस घर में ? कभी कोई बाहर नज़र नहीं आता था। बाहर पत्ते भी ऐसे ही पड़े हुए थे, उन्हें भी साफ़ नहीं किया गया था।

पहले लगा ख़ाली घर होगा परंतु उस घर के भीतर लाइट जलती देख उनके मन में जिज्ञासा हुई कोई तो रहता है पर कभी दिखाई नहीं देता। अपने घर की खिड़की से उनके घर की खिड़की साफ़ नज़र आती थी। अब तो जब भी फ़ुरसत मिलती उनकी नज़र वहाँ जाती और देखने का असफल प्रयास करती रहती।

भारत का पड़ोस होता तो अब तक गृह सहायिका आकर पूरे मोहल्ले की ख़बर सुना गई होती अब यहाँ तो गृह सेविका के नाम पर स्वयं ही कुक, धोबी, महरी सब कुछ हैं। पता नहीं क्यों वह लाल छत वाला घर उन्हें बहुत आकर्षित कर रहा था और उसमें रहने वालों के प्रति उनकी जिज्ञासा और भी बलवती हो रही थी।

एक दिन वह जब सैर करती वहाँ से गुज़री तो दरवाज़ा थोड़ा सा खुला देखा बाहर एक गाड़ी भी खड़ी थी। शायद किसी कंपनी की गाड़ी थी। उन्होंने अन्दाज़ लगाया कि शायद पानी की समस्या होगी तभी प्लम्बर को बुलाया होगा। यहाँ आकर ही उन्हें भी पता चला कि पानी में एक तरह का साल्ट डाला जाता है ताकि नलों में आने से पहले नल जम न जाएँ और फ़िल्टर को भी बार-बार साफ़ करना होगा।

अपार्टमेंट में तो ऐसा कुछ स्वयं करना ही नहीं पड़ता था सारी ज़िम्मेदारी बिल्डिंग की देख-रेख करने वालों की थी। अब वह भी यहाँ के सिस्टम को थोड़ा-थोड़ा समझने का प्रयास करने लगी थीं। दरवाज़ा अभी भी बंद था कोई नज़र नहीं आया। वह आगे की तरफ़ सैर करने चली गईं। लौट रही थीं तो देखा गाड़ी वापस जा रही थी और दरवाज़ा खुला था। वहाँ खड़ी एक क़रीब सत्तर वर्षीया महिला पर उनकी निगाह पड़ी, उनकी तो प्रसन्नता बढ़ गई कि चलो आज कोई तो दिखा। महिला से नज़रें मिलते ही उन्होंने मुस्कराकर हाथ हिलाकर अभिवादन किया। प्रत्युत्तर में शून्य में खोयी उस महिला ने कोई जवाब नहीं दिया और तुरंत

भीतर जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया।

वह हैरान सी हो गईं, अमूमन यहाँ किसी को अभिवादन करो तो मुस्कराकर ही उत्तर देता था। उन्होंने सोचा शायद यह महिला किसी से भी संपर्क नहीं रखना चाहती होगी तभी हमेशा अंदर ही रहती है। वह वहाँ से चली तो आईं पर उत्सुकता शांत नहीं हुई। इसी तरह एक महीना गुज़र गया, वह उस लाल छत वाले घर की तरफ़ देखना नहीं भूलती थीं।

वृक्षों के पत्ते अब पूरी तरह सूखकर वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। युद्ध क्षेत्र में मृत सिपाहियों की तरह पड़े पत्ते गाड़ी भरकर वहाँ से चले गए थे। वृक्ष बहुत उदास ठूँठ से खड़े थे, उनकी ही तरह उदासी जैसे वातावरण में भी व्याप्त होने लगी थी। हवा में ठंडक बढ़ रही थी अब तो सैर करना भी मुश्किल हो जाएगा। परंतु जब तक हो सैर तो करनी होगी, भले ही सामने कुछ दूरी पर बने मॉल में क्यों न जाना पड़े। जब अपार्टमेंट में थे तब से ही वह भी कनाडा वासियों की तरह ठंड के दिनों में मॉल में ही सैर करती थीं।

अगले सप्ताह बच्चे अपने अपने काम पर चले गए तो उन्होंने सोचा वॉलमार्ट जाकर कुछ ग्रोसरी भी ले आए और सैर भी कर ले। अब उन्हें आस-पास का काफ़ी ज्ञान हो गया था और सौभाग्य से सब कुछ थोड़ी-थोड़ी दूर पर था। उन्होंने अपना ट्रॉली बैग लिया और चली गईं, सामान लेकर निकल रही थी कि सामने वही महिला हाथ में कुछ बैग पकड़े आती दिखाई दी। वह आदत के अनुसार रुक कर मुस्कराई, तभी उस महिला के हाथ से पैकेट छूट कर गिर गया और सामान बिखर गया। उन्होंने जल्दी से उसका समान उठाने में मदद की। वह स्त्री अब कुछ सामान्य और आश्वस्त सी नज़र आईं।

कभी-कभी ज़िंदगी में कुछ ऐसा घटित हो जाता है जब इंसानियत और इंसानों पर से विश्वास हट जाता है। जाने क्यों उस महिला के चेहरे पर एक ऐसा ही डर उन्हें नज़र आया।

उन्होंने मुस्करा कर आत्मीयता का हाथ आगे बढ़ाया और बोलीं, 'मैं रीमा हूँ आपके पड़ोस में ही रहती हूँ। हम अभी वहाँ मूव हुए हैं मैंने आपको वहाँ देखा था इसलिए बात करने लगी।' उन्होंने महिला से अंग्रेज़ी में कहा। स्त्री अब कुछ सहज हो गई थी, 'आई एम मार्ग्रेट। नाइस टू मीट यू। थैंक्स फॉर योर हेल्प। (मैं मार्ग्रेट हूँ, आपसे मिल कर अच्छा लगा, सहायता के लिए धन्यवाद।)' इतना कहकर वह अपनी कार की तरफ़ चली गई और उन्होंने भी घर की तरफ़ कदम बढ़ा दिए।

उसके बाद जब भी रीमा सैर करने जाती और कभी मार्ग्रेट दिख जाती तो मुस्कराहटों का आदान-प्रदान होने लगा। परंतु रीमा को उनके चेहरे पर उदासी की घनी रेखाएँ सी नज़र आती थीं। कुछ समय इसी तरह दूर से मुस्कराहट एक दूसरे की तरफ़ उछाल दी जाती और रीमा आगे चली जाती। एक दिन मार्ग्रेट उसे अपने गेट पर खड़े मिली, रीमा अपनी आदत के अनुसार मुस्कराई तो उसने कहा, 'आर यू फ्री ? वुड यू लाइक तो स्पेंड सम टाइम विद मीं ?' (अगर आप फ्री हैं तो क्या आप मेरे साथ समय गुज़ारना पसंद करेंगी?)

रीमा पल भर को हतप्रभ सी रह गई, सोच में थी कि इस अनजान के घर के अंदर जाए या नहीं ? पराए देश में थोड़ा फूँक-फूँक कर चलना ही बेहतर होता है। फिर सोचा क्या कर लेगी, मेरे से तो कमज़ोर ही है और फिर फ़ोन तो पास है ही डरना क्या ? फिर ख़ुद की सोच पर हँसी आ गई। अरे पड़ोसी है कोई बाहर किसी अजनबी ने तो नहीं पूछा।

उसे सोच में देख मार्ग्रेट ने कहा, 'अगर आपको ठीक नहीं लगता तो कोई बात नहीं है।' उसने अंग्रेज़ी में ही कहा।

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, मैं थोड़ी देर के लिए आ सकती हूँ।' रीमा की अंग्रेज़ी ज़्यादा अच्छी नहीं थी बस थोड़ा काम चला लेती थी। मार्ग्रेट आश्वस्त सी हो गई। 'आओ, अंदर चलें।'

रीमा सोच रही थी बाहर से इसका घर इतना गंदा और अस्तव्यस्त दिखता है, अंदर तो पता नहीं क्या हाल होगा। गेट पार कर बाहर बरामदे में गई तो देखा वहाँ के फ्लोर की लकड़ी जगह-जगह से उखड़ सी रही थी। पत्तों का साम्राज्य वहाँ भी था, उनमें से कुछ पैरों से कुचले जाने पर अपनी दुर्दशा पर शायद रो रहे थे। पास ही डाक में आए हुए कुछ पुराने काग़ज़ आराम फ़रमा रहे थे। रीमा को अब लगा अंदर तो पक्का ही बुरा हाल होगा। वह ख़ुद बहुत सफ़ाई पसंद थी तो और भी अजीब-सा लग रहा था। जैसे ही उसने दरवाज़े के अंदर कदम रखा तो लिविंग रूम की हालत देख कर हैरान रह गई।

प्रवेश करते ही सामने की तरफ़ एक हल्का ग्रे रंग का आरामदेह काउच पड़ा था, जिस पर जगह-जगह धब्बे पड़े हुए थे। सामने रखी मेज़ पर एक टूटी सी बास्केट में उलझी पड़ी ऊन और क्रोशिया तथा अधबुना एक स्कार्फ था। दीवारों पर दो बहुत सुंदर पेंटिंग्स कुछ तिरछी सी लटकी थी। लिविंग रूम के कोने में एक आरामदायक कुर्सी थी उसके साथ की छोटी सी मेज़ पर किताबें अस्तव्यस्त तरीक़े से रखी थीं। घर में एक अजीब सी गंध भरी हुई थी।

रीमा को घर बाहर से जितना अस्तव्यस्त और बिखरा दिखता था, भीतर भी उतना ही अव्यवस्थित था। उसके चेहरे के भाव और आँखों में उपजे प्रश्न को शायद मार्ग्रेट ने समझ लिया बोली, 'मैं यहाँ बिलकुल अकेली रहती हूँ। कुछ करने का मन ही नहीं होता, और करूँ भी तो किसके लिए ? ज़्यादा किसी से मिलती भी नहीं हूँ, बाहर की दुनिया में हर तरह के लोग हैं तो मन में भी एक डर सा बना रहता है।'

रीमा को उस दिन एहसास हुआ दुनिया के किसी कोने में भी चले जाओ स्त्री को आत्मरक्षा का भय बना ही रहता है। क्यों उसे पुरुष के कंधे की हमेशा ज़रूरत महसूस होती है, वह ख़ुद भी तो कितनी आश्रित थी कणिका के पापा पर, अब भी लगता है अकेली कैसे सँभाले ख़ुद को। यह तो अच्छा है ईश्वर ने बेटी और दामाद दोनों ही ऐसे दिये जो हर समय बहुत ख़याल रखते हैं।

उसने झिझकते हुए मार्ग्रेट से उसके परिवार के बारे में पूछा तो पता चला कि बेटा है पर यूएस ए चला गया; क्योंकि उसे यहाँ नहीं रहना था। हसबैंड की मृत्यु चार वर्ष हुए हो गई थी तब से वह अकेली ही हैं। बेटा पहले कभी-कभी बात कर लेता था अब अपनी

दुनिया में व्यस्त हो गया है, पूछता तक भी नहीं है।

उस दिन थोड़ी देर में ही रीमा को लगा जैसे मार्ग्रेट अवसाद में घिरी है, एक डर उसके भीतर बैठ गया है और इसी कारण किसी से मेलजोल नहीं रखती। उसके साथ यह सब कुछ बीत चुका था जब उसके पति की आकस्मिक मृत्यु हुई थी। तब उसे हर किसी से डर लगने लगा था, बस यही लगता था जैसे वह घर में बंद होकर बैठी रहे। समर और कणिका के प्रयासों, डॉक्टर की सलाह और दवा के बलबूते पर वह इस स्थिति से निकल पाई। उसके लिए भी कितना कठिन रहा था सब कुछ, अब समय बीतने के साथ उसका आत्मविश्वास भी लौट रहा था। इसीलिए मार्ग्रेट को देखकर उसका मन द्रवित होने लगता था और उसे लगता था किसी तरह उसकी सहायता कर सके। उसके बच्चों ने तो उसे इस परिस्थिति से निकाल लिया परंतु सब इतने ख़ुशक़िस्मत नहीं होते।

मार्ग्रेट उस दिन रीमा के साथ थोड़ा-सा सहज हुई। प्रश्न तो रीमा के मन में बहुत से थे परंतु उसने पूछना उचित नहीं समझा।

क़रीब एक महीना इसी तरह चला, कभी मार्ग्रेट दूर से देख कर सिर्फ़ मुस्करा देती और कभी उसे आग्रह से भीतर बुला लेती। दोनों के बीच धीरे-धीरे प्रगाढ़ दोस्ती का बीज प्रस्फुटित हो रहा था। मन मिल रहे थे और उन दोनों के बीच भाषा व्यवधान नहीं बन रही थी। रीमा टूटी-फूटी अंग्रेज़ी से अपनी बात समझा देती थी और मार्ग्रेट कुछ शब्दों में और कुछ इशारों में अपनी बात कह देती थी। रीमा को उससे बात करते-करते एक फ़ायदा तो हुआ कि उसके मन का डर निकल गया। पहले पहल जब वह कनाडा आई थी तो उसे किसी की भी बात समझ नहीं आती थी, अंग्रेज़ को देखकर तो वह दूर भागती थी। बच्चों के दोस्त अगर घर आएँ तो बहाना बनाकर अपने कमरे में जाकर बैठ जाती थी। कणिका और समर ने उसकी हिम्मत बढ़ाई और उनसे कहा, 'आप स्टोर में जाकर ख़ुद सामान ख़रीदो उनसे बात करो तो आपको भी धीरे धीरे समझ आने लगेगा।' वही अब उनके काम आ रहा था, अब जब यही रहना है तो यहाँ की भाषा यहाँ के लोगों को समझना भी ज़रूरी था। अब वह प्रयास करने लगी थी और उसका आत्मविश्वास भी बढ़ रहा था।

अगले चार महीने मौसम के लिहाज़ से बहुत दुष्कर थे। तापमान माइनस तीस तक जा रहा था, चारों तरफ़ सफ़ेदी का साम्राज्य था। सड़कों पर से बर्फ लगातार हटाई जा रही थी पर अगले दिन उतनी ही फिर जमा हो जाती। किनारों पर बर्फ के ढेर लग चुके थे। कई दिन तक रीमा मार्ग्रेट से नहीं मिल सकी। चार दिन की भीषण बर्फ़बारी के बाद जब सूर्य देवता के दर्शन हुए तो उसने स्नो पैंट और स्नो जैकेट पहनी। पूरी तरह से गर्म कपड़ों से लैस होकर बाहर जाने लगी। समर बाहर गया हुआ था और कणिका घर से ही काम कर रही थी। उसे हैरानी हुई कि इतनी ठंड में मम्मी कहाँ की तैयारी कर रही हैं ? सैर करने तो जाना संभव नहीं था फिर कहाँ ? पता चला कि सहेली की खोज ख़बर लेने जा रही हैं। वह अकेली रहती हैं पता नहीं किस हाल में होगी ?

रीमा का अनुमान सही निकला। जब उसने मार्ग्रेट के घर की घंटी बजाई तो कोई उत्तर नहीं आया फिर ऊपर लगे माइक्रोफ़ोन से क्षीण सी आवाज़ आई। मार्ग्रेट ने उसे कैमरे से देख लिया था पर उठ कर नहीं आ सकी वहीं से उसने रीमा को डोर का कोड बताया जिससे लॉक खोलकर रीमा अंदर चली गई। मार्ग्रेट सामने काउच पर ही ब्लैंकेट लेकर लेटी हुई थी। सदा की तरह आज भी घर पूरी तरह से बिखरा हुआ था। किचन के सिंक में झूठे बर्तन पड़े थे। क्रोचेट बास्केट भी ऐसे ही पड़ी थी लग रहा था जैसे कई दिनों से हाथ नहीं लगाया वरना मार्ग्रेट हमेशा कुछ न कुछ बनाती रहती थी।

'ओह गॉड, थैंक्स तुम आ गई। मुझे कल से कोल्ड और फीवर है। नी पेन भी अधिक हो रहा था तो ऊपर भी नहीं जा सकी। सच में इस बार तो मेरा अकेले बहुत बुरा हाल हो रहा था।' रीमा को देखते ही मार्ग्रेट ने कहा।

'अरे, तुम मुझे कॉल कर देती तो मैं आ जाती। बताया क्यों नहीं ?' रीमा ने थोड़ी नाराज़गी सी दिखाई।

'मुझे तुम्हें परेशान करना ठीक नहीं लगा, बस प्रे कर रही थी कि तुम आ जाओ। और देखो मेरे मन की आवाज़ तुम तक पहुँच गई।'

'अगर मुझे फ्रेंड कहा है तो पहले ही बताना चाहिए था।' रीमा ने प्यार से कहा। मार्ग्रेट भावुक हो गई। अपने अकेलेपन और डिप्रेशन से जूझते हुए वह किसी पर आसानी से भरोसा भी नहीं कर पा रही थी। पर आज रीमा को देखकर उसका मनोबल बढ़ गया।

रीमा ने जल्दी से उसके लिये कॉफ़ी बनाई और कुकीज़ के साथ टेलेनॉल भी दे दी। उसका घर भी थोड़ा व्यवस्थित कर दिया।

'अब तुम रेस्ट करो, मैं अभी तो घर जा रही हूँ कणिका चिंता करेगी। परंतु तुम्हारे लिए शाम का ख़ाना लेकर आती हूँ, आज तुम इण्डियन फ़ूड ख़ाना। मैं तुम्हारे हिसाब से स्पाइसेस बहुत कम डालूँगी।'

'नो इट्स ओके, मैं इंस्टेंट रामन नूडल्स खा लूँगी। तुम परेशान मत होना। आई एम फीलिंग बेटर।'

'नहीं हम इण्डियन लोग अपने दोस्तों को बीमारी में अकेला नहीं छोड़ते और बीमारों वाला स्पेशल ख़ाना भी खिलाते हैं।' रीमा ने हँस कर कहा। मार्ग्रेट को उसने अपनी बात किसी तरह समझा दी और वापस आ गई।

कणिका और समर को लगा कि पता नहीं मम्मी इस तरह ख़ाना लेकर जाएँगी और कोई रिएक्शन हो गया तो क्या होगा। यहाँ गोरे ज़रा सी बात को लेकर परेशान हो जाते हैं। पर मम्मी के सामने उनकी कुछ न चली। रीमा ने मूँग की दाल की खिचड़ी बनाई, सिर्फ़ हींग और ज़ीरा डालकर, ऊपर से घी डालकर कैसरोल में रख ली।

बच्चे मुस्करा रहे थे कि आज बेचारी मार्ग्रेट की ख़ैर नहीं, हींग का स्वाद चखना पड़ेगा पता नहीं कैसे खाएगी ?

रीमा ने मार्ग्रेट को राइस एंड लेंटिल सूप बताकर खिचड़ी ही नहीं खिलाई बल्कि हल्दी वाला दूध भी पिलाकर दम लिया। मार्ग्रेट उसके स्नेह के सामने नतमस्तक थी। उसे आज तक किसी ने इतने स्नेह से ख़ाना नहीं खिलाया था।

दो दिन में ही उसके स्वास्थ्य में सुधार आ

गया। उनका दोस्ती का बंधन और भी सुदृढ़ हो गया। दोनों अकेली थीं एक दूसरे का सहारा बन गईं। रीमा का भी अब नए परिवेश में मन रमने लगा था। मार्ग्रेट का डिप्रेशन अब कम हो रहा था। घुटने का दर्द भी कम था तो दोनों नियमपूर्वक सैर को जाने लगीं।

सर्दी का प्रकोप कम हो गया था और वसंत की बयार दस्तक दे रही थी। यही चार महीने कनाडा वासियों के लिये उत्फुल्लता लेकर आते थे। भारी भरकम कपड़ों से कुछ दिनों के लिए निजात मिलने वाली थी। ऐसा लगता था मानो कंधों पर से भारी बोझ सा उतर गया हो। सूरज देवता भी छुट्टी मनाकर लौट आए थे, पुन: हरीतिमा का साम्राज्य हो आया था और रंग-बिरंगे फूलों ने वातावरण को महका दिया था।

सब जी भर कर इस मौसम का लुत्फ़ लेने में लगे थे। एक साल कैसे गुज़र गया पता ही नहीं चला। एक बार फिर पतझड़ का मौसम आने को था। रीमा और मार्ग्रेट सैर करके वापस आ रही थीं तो सामने टिम होर्टन में कॉफ़ी पीने रुक गईं।

सहसा मार्ग्रेट बोली, 'रीमा, ! मैं बहुत ख़ुश हूँ कि मुझे तुम्हारे जैसी दोस्त मिली और वह भी ऐसे समय में जब मैं ज़िंदगी से बहुत निराश हो चुकी थी। सच कहूँ तुमने मुझे एक नई ज़िंदगी दी है।'

रीमा ने उसका हाथ अपने हाथों में लिया और कहा, 'मुझे भी तुम्हारी जैसी दोस्त ऐसे समय में मिली जब मैं ज़िंदगी के एक ऐसे अप्रत्याशित मोड़ पर आ खड़ी हुई थी जहाँ से कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। मैं भी अपने जीवन में आए बदलाव और परिस्थितियों से जूझ रही थी। तुम मेरे लिये एक बड़ा सहारा बन गईं।'

'आज तुम्हें कुछ और भी बताना है।' कहकर मार्ग्रेट चुप हो गई। रीमा की आँखों में सैंकड़ों प्रश्न उभर आए।

'मैंने तुमसे झूठ कहा था कि मेरा बेटा यूएस में रहता है, सच तो यह है कि वह अब इस दुनिया में ही नहीं है।' कहते हुए उसका गला भर आया। रीमा भी भावुक हो गई।

'उसे गए बीस साल हो चुके हैं पर मैं आज तक ख़ुद से ही यह झूठ बोल कर ज़िंदगी गुज़ार रही हूँ। मैं उसका जाना आज तक एक्सेप्ट नहीं कर पाई। मैंने अपने लिए झूठ का एक आवरण गढ़ लिया कि वह कहीं भी है जीवित तो है।'

'उसे क्या हो गया था, क्या बीमार था ?' रीमा ने संकोच से कहा। वह एक माँ के ज़ख्मों को उधेड़ना नहीं चाहती थी पर ख़ुद को रोक नहीं पाई।

मार्ग्रेट के चेहरे पर एक पल को शून्य सा घिर गया। फिर एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा, 'पता नहीं किसी बुरी संगत में पड़कर वह ड्रग्स लेने लगा था। हमने उसे बहुत समझाया, री- हैब में भी भेजा पर थोड़े दिन ठीक रहा और बाद में फिर वही हाल हो गया और उसी में चल बसा।'

'क्या पता उसके अंदर क्या चल रहा था जो उसे ड्रग्स की आदत पड़ी। शायद हमारी परवरिश में कोई कमी रह गई थी जो उसका दर्द नहीं समझ पाए।' उसका गला रुँधने लगा।

'शायद ईश्वर की यही इच्छा रही होगी।' रीमा बस इतना कह सकी।

'एक बात और है। अब तुम जानती हो मेरा दुनिया में अपना कहने को कोई नहीं है सिर्फ़ तुम्हारे। मेरा स्वास्थ्य भी उम्र के साथ अब ख़राब ही होगा। बहुत सोच विचार के बाद मैंने तय किया है कि अब मैं बाक़ी की बची ज़िंदगी रिटायरमेंट होम में गुज़ारूँगी।' संयत होकर मार्ग्रेट ने कहा।

'अरे यह तो तुमने पहले कभी नहीं बताया कि तुम ऐसा सोच रही हो।' रीमा हतप्रभ सी रह गई।

'अभी तक मैं घर और घर की बेजान वस्तुओं के मोह में डूबी थी। उनसे निकल नहीं पा रही थी। तुमसे मिलने के बाद ज़िंदगी में ख़ुशी मिली और लगा कि व्यर्थ के मोह से अच्छा है मैं अपनी ज़िंदगी के बचे दिन ऐसी जगह रहूँ जहाँ मेरी देखभाल भी हो सके वरना अकेले समय गुज़ारना मुश्किल होगा।'

'पर तुम्हारा घर है इतने सालों की बनाई गृहस्थी है, उसका क्या होगा?' रीमा ने प्रश्न किया।

'घर को तो मैं बेच रही हूँ, अच्छा पैसा मिल रहा है। मेरी कुछ सेविंग्स भी है तो रिटायरमेंट होम का ख़र्च भी आसानी से निकल जाएगा और रहा सामान तो जो बिकेगा ठीक है वरना गुडविल में डोनेट कर दूँगी। अब समय आ गया है सब कुछ समेट कर जाने की तैयारी करने का।' मार्ग्रेट के चेहरे पर एक निश्चिंतता का सा भाव था।

रीमा को उसकी बात सुनकर एक पल के लिए झटका लगा फिर उसने तटस्थ होकर सोचा तो महसूस किया मार्ग्रेट सही कर रही है। अगर उम्र के इस पड़ाव पर सही देखभाल नहीं होगी तो उसके लिये मुश्किल हो जाएगा।

एक महीने बाद मार्ग्रेट अपनी बहुत सारी पेंटिंग्स और क्रोशिया से बना सामान रीमा को देकर चली गई। उसने कहा कि इन वस्तुओं को बेचने से बेहतर है कि ये रीमा के पास रहें।

मार्ग्रेट के चले जाने से रीमा की ज़िंदगी में फिर एक ख़ालीपन-सा घिर आया। ज़िंदगी इसी का तो नाम है। यह तो बस एक सफ़र है लोग मिलते हैं बिछड़ते हैं, ज़िंदगी का सफ़र चलता ही रहता है। मार्ग्रेट एक हवा के झोंके की तरह कुछ समय के लिए उसकी ज़िंदगी में आई और कुछ ख़ुशियाँ देकर चली गई। उसकी भी तो अपनी मजबूरियाँ थीं। सप्तपदी के समय जिसने उम्र भर साथ चलने का वादा किया था जब वही हमसफ़र बीच राह में छोड़ कर चला गया तो यह तो कुछ समय के लिये मिला साथ था।

जाने के कुछ महीनों बाद एक दिन मार्ग्रेट का फ़ोन आया उसने रीमा को मिलने बुलाया था। रीमा जब वहाँ पहुँची तो मार्ग्रेट ने कहा, 'रीमा, मुझे पता नहीं क्यों ऐसा लगता है जैसे मेरे पास अब कम समय बचा है।'

रीमा ने क्रोधित होकर कहा, 'कैसी बात करती हो ? मुझसे कुछ दिन दूर रही हो और फिर निराशा की बातें करने लगी हो।'

'मेरी बात समझने की कोशिश करो, अब ढलती उम्र है ज़िंदगी का क्या भरोसा है। मैंने अपना सारा पैसा एक बैंक में रख दिया है, एक ट्रस्ट बना दिया है। मैं चाहती हूँ कि तुम ट्रस्टी की ज़िम्मेदारी सँभाल लो। यह पैसा उन बच्चों के काम आना चाहिए जो पढ़ना चाहते हैं पर आर्थिक अभाव से पढ़ नहीं पाते।' रीमा

के चेहरे पर आत्मिक संतोष दिख रहा था।

रीमा समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे और इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी कैसे ले?

मार्ग्रेट ने फिर कहा, 'मेरा और कोई नहीं है और मेरी और मेरे पति की सारी ज़िंदगी की कमाई हुई पूँजी है इसका सदुपयोग होगा तो मेरी आत्मा को भी संतोष मिलेगा।'

'एक बात और है, मैं तुम पर यह ज़िम्मेदारी डाल रही हूँ। तुम्हारा वक़्त भी इसमें लगेगा, इसके लिए हर महीने कुछ पैसा तुम्हारे लिये भी रखा है।' उसने थोड़ा रुक-रुक कर कहा।

रीमा ने उसे बीच में ही रोक कर कहा, 'मार्ग्रेट! तुम इतना अच्छा काम कर रही हो तो इसमें मैं यथासंभव तुम्हारी मदद करूँगी। जो समझ नहीं आएगा बच्चों की सहायता लूँगी और रही पैसे की बात वह मैं नहीं ले सकती, ईश्वर की कृपा से मुझे कोई कमी नहीं है। मेरी और मेरे पति की पेंशन आती है और बच्चे भी समर्थ हैं। विश्वास रखो, तुम्हारा पैसा सार्थक जगह ही प्रयोग होगा।'

मार्ग्रेट भावुक हो गई, 'अब मैं भी कह सकती हूँ मेरे पास परिवार है। मुझे तुम जब से मिली हो ज़िंदगी सुखद सी हो गई है अब मुझे कोई डर नहीं सताता।' रीमा ने उसका हाथ थाम लिया, एक स्पर्श और आँखों के नीर ने बिना कुछ कहे सब कुछ कह दिया।

अगले महीने ही समाचार मिला कि मार्ग्रेट की हृदयघात से मृत्यु हो गई। रीमा ने बच्चों के साथ मिलकर उसकी अंतिम क्रिया से लेकर ट्रस्ट तक की ज़िम्मेदारी बख़ूबी निभाई।

अपनी खिड़की से आज भी जब वह लाल छत वाला घर देखती है तो एक टीस कलेजे में उठती है। वह चाहकर भी उस तरफ़ वॉक करने नहीं जा पाती। ऐसा लगता है अभी दरवाज़े से मार्ग्रेट मुस्कराती हुई उसे पुकार लेगी।

लाल छत वाला घर उसके आस-पास बिखरे पत्ते सब कुछ वैसा ही था पर वह तो हवा में उड़ते पत्तों के संग जैसे बहते हुए न जाने कहाँ जा चुकी थी, किस अनंत में विलीन हो चुकी थी।

000

लघुकथा

सिसकियाँ

सुशील स्वतंत्र

बलात्कार के एक महीने बाद ही महुआ के पेट से होने की ख़बर पूरी बस्ती में फ़ैल गई। गोवर्धन शाम को रोज़ की तरह थका-हारा नशे में धुत घर लौटा तो सब उसे घूरने लगे। बुझे हुए चेहरों पर तीर-सी तीखी आँखों को देख उसे कुछ अटपटा लगा। उसने सबसे पूछा कि आख़िर क्या बात है, पर कोई कुछ न बोला। जामुनी भाभी से रहा न गया और वह चीख कर बोली - "जा कमरे में अपनी नामर्दी का सबूत देख ले।"

गोवर्धन को समझते देर न लगी कि पिछले पाँच साल की शादीशुदा ज़िंदगी में महुआ के पाँव जो भारी न हो पाए, वे पिछले महीने इज़्ज़त लुटने के बाद हो गए।

गोवर्धन उस कोठरी में दाखिल हुआ, जहाँ अस्पताल से लौटने के बाद से ही महुआ ने ख़ुद को बंद कर लिया था। छोटी-सी कोठरी उसकी सिसकियों से भरकर और तंग हो गई थी। गोवर्धन के मुँह पर ताला लगा था और शरीर जैसे काठ हो गया था। कोशिश भी की तो कंठ ने साथ न दिया। एक भी शब्द मुँह से निकल न पाया। सोचता रहा कि आख़िर क्या बोलूँ? बहुत मुश्किल घड़ी थी, मानों पूरा बदन पत्थर हो गया हो। वह आत्मग्लानी से मरा जा रहा था। झट से वह महुआ के पैर पर जा गिरा। बड़ी मुश्किल से बोल पाया "हमको माफ़ कर दो महुआ।" महुआ रोती रही, कुछ न बोली। बहुत देर तक दोनों के बीच बस सिसकियाँ रहीं। गोवर्धन फिर उसके पैरों को छूकर बोला -"हमको माफ़ कर दो महुआ, हम तुमको बहुत दु:ख दिये हैं। कमी मुझमें थी और माँ, दीदी, मौसी सब तुमको ज़िंदगी भर गरियाती रहीं- कुलक्षणी, बाँझ है बाँझ। बस, एक बार हमको माफ़ कर दो।"

जैसे ही गोवर्धन ने महुआ के पैरों को छुआ, उसने झट से अपने पाँव खींच लिये, मानों कोई बिजली दौड़ गई हो पूरे शरीर में। उसकी सिसकियाँ तेज़ हो गईं। अगले ही क्षण वह गोवर्धन के सीने से जा लगी।

कोठरी के बाहर घरवाले बहुत देर तक महुआ के रोने की आवाज़ सुनते रहे।

000

सुशील स्वतंत्र, स्वतंत्र प्रकाशन भवन, गीता सदन,
अपूर्वा हॉस्पिटल के पीछे, राँची रोड, पोस्ट - मरार,
जिला - रामगढ़, झारखण्ड, पिन - 829117
मोबाइल-9811188949
ईमेल- sushilswatantra@gmail.com

कथा-कहानी

थोड़ा सा मज़ा

रोचिका अरुण शर्मा

रोचिका अरुण शर्मा
ए 2- 103 कासा ग्रैंड एमेथिस्ट,
एलकोट एवेन्यू, शोलिंगनाल्लोरर,
चेन्नई - 600119
मोबाइल- 9597172444
ईमेल- sgtarochika@gmail.com

कई दिनों से मालिनी अपने प्रिय अध्यापक डॉ. अमरेन्द्र को लगातार वाट्सएप पर संदेश भेज रही थी लेकिन उनकी तरफ से कोई उत्तर न पाकर वह थोड़ी सी आशंकित थी। आख़िर ऐसा क्या हो गया ? सर तो स्वयं शुभ सुबह, दोपहर, सायं, रात्रि दिन में तीन-चार संदेश वाट्सएप पर भेजा करते हैं। उसने सर के ख़ास मित्र प्रोफ़ेसर मलिक को फ़ोन किया, "प्रोफ़ेसर मलिक आजकल डॉ. अमरेन्द्र कहाँ है ? मैं कितने दिनों से उन्हें संदेश भेज रही हूँ उनका कोई जवाब नहीं मिल रहा। फ़ोन किया तो उनका नंबर आउट ऑफ़ सर्विस बता रहा है।"

"ह्म्म्म, ठीक कहती हैं आप मालिनी, मैं भी उनका नंबर कई दिनों से ट्राय कर रहा हूँ लेकिन लग ही नहीं रहा।"

"लेकिन आप तो उनके ख़ास दोस्त हैं, ऐसे कहाँ ग़ायब हो गए डॉ. अमरेन्द्र, आपको कुछ बताया भी नहीं ?"

"वही तो, ऐसे में फ़िक्र होती है कि कहीं कुछ ग़लत तो नहीं ..."

"वही तो मुझे अंदेशा हुआ प्रोफ़ेसर मलिक, इसीलिए मैंने आपको फ़ोन किया। दरअसल शिक्षक दिवस नज़दीक आ रहा है, आप तो जानते ही हैं इस दिन कई संस्थाएँ शिक्षकों को सम्मानित करती हैं। मैंने डॉ. अमरेन्द्र के बारे में किसी को बताया था, सो वे उन्हें विशेष सम्मान से सम्मानित करना चाहते हैं।

"उनके बड़े भाई यहाँ रहते हैं, हो सकता हो उनके पास गए हों, लेकिन उनका नंबर मेरे पास नहीं। आजकल कोई बगैर फ़ोन के तो रहता नहीं, इसीलिए मेरा भी मन कुछ आशंकित है। उनकी पत्नी का फ़ोन नंबर भी नहीं है मेरे पास, कभी काम ही नहीं पड़ा।"

मालिनी ने फ़ोन रख दिया था लेकिन मन नहीं माना तो डॉ. अमरेन्द्र जहाँ कार्यरत थे उस यूनिवर्सिटी में ही कार्यरत प्रोफ़ेसर आशा को भी फ़ोन कर लिया।

"हाँ, आजकल मेरे वाट्सएप संदेश भी नहीं देख रहे डॉ अमरेन्द्र...मैं सभी को रोज़ मोटिवेशनल कोट्स भेजती हूँ, उनका रोज़ जवाब आता था। लेकिन कई दिनों से वे जवाब ही नहीं दे रहे तो मैंने उन्हें संदेश भेजना बंद कर दिया।"

"क्यों आप किस लिए पूछ रही हैं ?"

"मैम मैं भी इसीलिए पूछ रही हूँ क्योंकि वे मेरे संदेशों के भी जवाब नहीं दे रहे। कुछ तो बात है, ऐसे में यही लगता है कि कहीं तबियत तो ख़राब नहीं ? अच्छा ठीक है, मैं आप से बाद में बात करूँगी, अभी कुछ ज़रूरी काम है"

कुछ दिन और बीत गए, शिक्षक दिवस भी निकल चुका था कि एक दिन डॉ. अमरेन्द्र का सुप्रभात संदेश मालिनी के वाट्सएप पर आया। उसने उसी समय डॉ. अमरेन्द्र को फ़ोन किया "सर कहाँ थे आप इतने दिनों, कितने मैसेज किये, आपका फ़ोन भी आउट ऑफ़ सर्विस बता रहा था।"

"क्या बताऊँ मालिनी तबियत कुछ ठीक नहीं थी। घुटनों में दर्द बढ़ गया था, हार्ट में भी अचानक से दर्द हुआ तो अस्पताल में भर्ती था। अस्पताल से सीधे अपने भाई के घर चला गया था। तुम्हें तो पता है कि मेरा बेटा अमेरिका में रहता है। यहाँ कोई देखभाल करने वाला नहीं था, तो भाई ने अपने घर बुला लिया।"

"सो तो ठीक है सर लेकिन आपने मेरे मैसेज भी नहीं देखे ? फिर अब तो मैम भी रिटायर हो चुकी हैं ?"

"हाँ, वह तो है लेकिन अब मैम की भी तो उम्र हो चुकी है न, अकेली यहाँ कितना सँभालतीं? भाई के तो बच्चे भी साथ में ही रहते हैं न। दूसरी बात यह कि मेरा फ़ोन हाथ से छूट कर गिर गया था और स्क्रीन डैमेज हो गई थी। इसलिए रिपेयर के लिए दिया था। अब फ़ोन मिला तो तुम्हारे एवं अन्य लोगों के मैसेज एवं मिस्ड कॉल देखे।"

"ख़ैर, मैं तो आपको शिक्षक दिवस के सम्मान की सूचना देना चाहती थी, आप मेरे प्रिय अध्यापक जो हैं। लेकिन अब तो शिक्षक दिवस निकल चुका सर, अब अगले साल देखेंगे।"

करीब पंद्रह दिन बीत चुके थे। एक दिन मालिनी को उसकी सहपाठी रीता बाज़ार में मिली। दोनों पास के ही एक कैफ़े में कॉफ़ी पीने चली गईं। बातों-बातों में रीता ने उसे बताया "तुम्हें पता है डॉ. अमरेन्द्र जेल में थे इन दिनों।"

"क्या ? क्यों?"

"पोक्सो एक्ट में।"

"यह एक्ट तो बच्चों के साथ छेड़छाड़ के आरोपी पर लगाया जाता है।" मालिनी हैरत में थी।

"सही समझा तुमने, डॉ. अमरेन्द्र के घर फिज़िक्स ट्यूशन के लिए बच्चे आते हैं न।"

"लेकिन अब तो उनकी पत्नी भी रिटायर हो चुकी हैं, वे भी तो घर में होती होंगी ट्यूशन के समय, तुम्हें किस ने बताया यह सब रीता?" मालिनी ने बात काट एक के बाद एक प्रश्न दाग दिए थे।

"सभी बड़े अखबारों में ख़बर थी, तुम्हें मेरी बात का भरोसा न हो तो ऑनलाइन गूगल कर सकती हो। यह ख़बर पूरे शहर को पता है एक तुम्हें ही इस की जानकारी नहीं है शायद।"

"मैंने कुछ लोगों से पूछा भी था इन दिनों उनके बारे में, लेकिन किसी ने कुछ बताया नहीं।"

"क्योंकि सभी जानते हैं कि तुम्हारे उनके साथ घनिष्ठ संबंध हैं इसलिए उन्होंने नहीं बताया होगा, कोई नहीं चाहता कि बात घूम कर उन तक वापिस पहुँचे।"

"हम्म्म, यह भी हो सकता है रीता।" मालिनी शॉपिंग करके घर लौट आई थी। घर में दाखिल होते ही उसने अपने मोबाइल फ़ोन पर गूगल कर सबसे पहले ख़बर पढ़ी। उसे अपने कानों सुने एवं आँखों से पढ़े पर भरोसा नहीं हो रहा था, धड़कन बढ़ी हुई थी। डॉ. अमरेन्द्र इतने सुलझे हुए सरल, सहृदय इंसान, सभी को बहुत सम्मान देने वाले ऐसा कर सकते हैं ? वह भी एक पंद्रह वर्ष के लड़के के साथ, सोच भी नहीं सकती थी वह। उसके पति टी वी देख रहे थे, उन को जाकर उसने वह ख़बर पढ़वाई। वे भी हैरत में थे कि रिटायर होने के बाद प्राइवेट कॉलेज में पढ़ाना जारी रखा और घर में ट्यूशन ले कर अपना ख़र्च निकाल रहे सादा जीवन उच्च विचार वाले डॉ. अमरेन्द्र ऐसी हरकत भी कर सकते हैं।

"सब कुछ संभव है इस युग में" मालिनी के पति ने गहरी साँस ली।

"मुझे तो उनकी पत्नी पर तरस आ रहा है, बेचारी सारी ज़िंदगी अपने पति पर भरोसा करते हुए नौकरी करती रही और अब रिटायर होने पर यह देखना भी बाकी था। उस विद्यार्थी के बारे में सोचूँ तो और भी बुरा लग रहा है। बेचारे माता-पिता पर क्या बीत रही होगी। सभी अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए उन्हें पढ़ा-लिखा कर बड़ा करते हैं और यदि शिक्षक ही ऐसी हरकत कर दे तो फिर किसका भरोसा करें भला ? यह तो अच्छा हुआ कि बच्चे ने घर में बताया और ज़रूर उसके माता-पिता भी रुतबे-रूआबदार होंगे जिन्होंने पुलिस में रिपोर्ट करने की हिम्मत की, वरना कई बार ऐसी बातें दबा दी जाती हैं।" मालिनी भावों के उतार-चढ़ाव संग अत्यंत भावुक हो उठी थी।

वह रात को बिस्तर पर लेटी तब भी डॉ. अमरेन्द्र का चेहरा उसकी आँखों के समक्ष घूमता रहा। एक बार वह डॉ. अमरेन्द्र के घर गई थी, तब उसने उनका घर देखा था। उसे मन ही मन उन से घिन्न आने लगी "उफ़ ! उस अन्दर के कमरे में ले गए पंद्रह वर्षीय विद्यार्थी को ? इतनी हिम्मत कैसे हो गई उनकी ? लेकिन उन्होंने यह पहली बार नहीं किया होगा, न जाने कितने बच्चों को ....उफ़ ! कितना सम्मान था उनके लिए मेरे मन में।"

रात भर नींद में उसे वहीं बातें याद आती रहीं। सारी रात करवटें बदलते हुए काटी। सवेरे नाश्ता खा कर उसने रीता को फ़ोन किया "सुनो रीता मुझे सारी रात नींद ही नहीं आई। डॉ. अमरेन्द्र के बारे में ही सोचती रही रात भर।"

"लेकिन मुझ से बहुत सहज रूप से बात की उन्होंने, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो।"

"तुमने तो ख़ुद उन्हें चला कर फ़ोन किया तो वे और भी ज़्यादा ख़ुश हुए होंगे कि चलो कोई तो है जिसे जानकारी नहीं।"

"तुम ठीक कहती हो, लेकिन डॉ. अमरेन्द्र तो यह भी बता रहे थे कि जब वे बीमार थे तब उनका बेटा अमेरिका से आया था और उनका इलाज करवा कर गया है।"

"इलाज तो पुलिस ने किया है उनका रिमांड लेकर, बेटा न आता तो अब तक जेल की हवा खा रहे होते, हक़ीक़त तो यह है कि उनके जेल से रिहा होने की भी उम्मीद नहीं थी। बेटे ने ही कुछ जुगाड़ भिड़ा कर उन्हें बचाया है।"

"बेटे पर भी कैसी गुज़री होगी अपने पिता की इस हरकत पर ? सचमुच सोच कर भी बात गले से नीचे नहीं उतर रही है। मैं सोचती हूँ इस प्रकार के अपराध कोई कैसे कर सकता है भला ? कुछ पलों के मज़े के लिए किसी और के जीवन से खेलना...उफ्फ्फ ! कितना घिनौना कृत्य !" मालिनी रीता से बात कर डॉ. अमरेन्द्र के प्रति घृणा महसूस कर रही थी।

कुछ दिन बीत चुके थे, डॉ. अमरेन्द्र मालिनी से निरंतर संपर्क में थे। मालिनी न चाहते हुए भी उनसे बात कर लिया करती। वह नहीं चाहती थी कि डॉ.अमरेन्द्र को भनक भी लगे कि वह उनकी हक़ीक़त जान चुकी है। उसने सोचा एकदम से बात बंद करने से उन्हें बुरा लगेगा सो वह कभी अपनी व्यस्तता जता देती और कभी कोई और बहाना। इतने बरसों से अच्छा रहा संबंध एकदम से तोड़ देना उसे अशोभनीय सा प्रतीत हो रहा था। उसने तय कर लिया था कि किसी से भी वह उनके बारे में बात नहीं करेगी। लेकिन एक दिन जब वह पुनः प्रोफ़ेसर आशा से मिली तो उन्होंने ही बात छेड़ दी।

"तुम्हें पता है डॉ. अमरेन्द्र के बारे में मालिनी ?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझी मैम ? क्या हुआ डॉ. अमरेन्द्र को ?"

"तुम्हें सचमुच कुछ नहीं पता उनके बारे में ? तुम्हारे तो अच्छे संबंध हुआ करते थे डॉ. अमरेन्द्र से ?"

"वह तो अब भी हैं मैम, लेकिन मैं उनसे रोज़-रोज़ थोड़े ही न मिलती हूँ। जब कभी कुछ ख़ास बात हो तब फ़ोन करती हूँ बस। लेकिन इन दिनों काम की कुछ ज़्यादा ही व्यस्तता रही सो उनसे बात भी नहीं हुई।"

"तुम्हें पता है वे पोक्सो एक्ट में जेल गए थे ?" मालिनी ने चुप रहने में ही समझदारी समझ ऐसे गर्दन हिलाई कि वह कुछ जानती ही नहीं।

"बेचारे ज़बरदस्ती फँसा दिए गए इस एक्ट में।"

प्रोफ़ेसर आशा की बात सुनते ही मालिनी ने चिहुंक कर पूछा "वह कैसे मैम ?"

"आजकल के बच्चों का क्या कहें मालिनी? तुम तो जानती ही हो अक्सर सभी अभिभावकों के एक-एक या ज़्यादा से ज़्यादा दो बच्चे होते हैं। माता-पिता भी नौकरियों एवं गृहस्थी के अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं। फिर सोशल मीडिया, टी.वी. एवं इंटरनेट से बच्चों को ग़लत-सही सभी प्रकार की जानकारी भी तो मिल जाती है।"

"लेकिन हुआ क्या मैम...जल्दी बताइए न, मेरा तो दिल बैठा जा रहा है और घबराहट सी होने लगी है।"

"देखो मालिनी मैं यहाँ विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर होने से पहले एक निजी संस्थान में अध्यापन का कार्य किया करती थी। वहाँ अक्सर अभिभावक शिक्षकों के ख़िलाफ़ शिकायत लेकर आते थे कि फलाँ शिक्षक ने मेरे बच्चे को डाँट दिया, मार दिया, या कक्षा से बाहर खड़ा कर दिया। अभिभावकों का अक्सर यह भी कहना होता है कि हम स्वयं ही अपने बच्चों को कुछ नहीं कहते तो शिक्षक उन्हें सज़ा कैसे दे सकते हैं ? इसलिए अब शिक्षक भी विद्यार्थियों को कुछ रोक-टोक करने से डरने लगे हैं। न घर में कोई कहने वाला न ही विद्यालय में। संयुक्त परिवार भी कम हो गए हैं इसलिए इस पीढ़ी के कुछ विद्यार्थी स्वयं को उपेक्षित महसूस करते हैं सो अब पहले की अपेक्षा ज़्यादा दुर्व्यवहार करने लगे हैं। यही कारण है कि आजकल अच्छे विद्यालयों में काउंसलर भी रखे जाते हैं। लेकिन कितने अभिभावक अपने बच्चों को काउंसलिंग के लिए भेजते हैं ? ऐसे में कुछ विद्यार्थी निरंकुश व्यवहार के बन जाते हैं, यह मामला भी कुछ ऐसा ही है।"

"मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ मैम...आप साफ़ शब्दों में बताएँगी तो अच्छा रहेगा।"

"दरअसल हुआ यह है कि यह विद्यार्थी जो डॉ. अमरेन्द्र से ट्यूशन पढ़ने आया करता था, इसी सत्र में उसका ट्यूशन के लिए दाखिला हुआ था। उनके अधिकतर छात्र पुराने हैं जो कक्षा सात-आठ से ही उनसे फिज़िक्स ट्यूशन पढ़ते हुए अब दसवीं कक्षा में आ गए थे।"

"लेकिन मैम हक़ीक़त में हुआ क्या था ?"

"दरअसल आजकल दसवीं कक्षा के सभी विद्यार्थियों के पास मोबाइल फ़ोन होते ही हैं। यह विद्यार्थी जिसने उनके ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज की है मोबाइल फ़ोन लेकर ही ट्यूशन में आता था। जब सर पढ़ाया करते तो इसका ध्यान अक्सर मोबाइल में ही रहता। सर ने कई बार उसे मना भी किया था लेकिन वह नहीं माना और अन्य विद्यार्थियों को भी डिस्टर्ब किया करता। एक बार डॉ. अमरेन्द्र ने उसकी माँ को फ़ोन कर शिकायत भी की थी। तब उसकी माँ ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह आइन्दा से ऐसी हरकत नहीं करेगा। लेकिन उसकी हरकतें थमने की बजाय बढ़ रही थीं। फिर एक दिन किसी कारणवश सर को ट्यूशन के समय घर पहुँचने में ट्रैफिक के चलते थोड़ी देरी हो गई। लेकिन सभी विद्यार्थी घर पर जमा थे। सो ट्यूशन ज़रा देरी से शुरू हुई। उसने अन्य विद्यार्थियों को ट्यूशन शुरू होने से पहले एक अश्लील वीडिओ फॉरवर्ड किया। तुम तो जानती ही हो इस उम्र में बच्चों में सेक्स को लेकर विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाएँ होती हैं। विद्यार्थियों ने वीडिओ देखना शुरू किया तभी डॉ. अमरेन्द्र वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने पढ़ाना शुरू कर दिया। लेकिन उस दिन विद्यार्थियों का ध्यान पढाई में नहीं था। डॉ. अमरेन्द्र उस दिन अपना आपा खो बैठे और उन्होंने सभी विद्यार्थियों को ज़ोरदार डाँट लगा दी। वे डर कर चुप बैठ गए और पढ़ने लगे।

लेकिन अगले ही दिन जब डॉ. अमरेन्द्र ट्यूशन पढ़ाने लगे तो अचानक से वहाँ पुलिस आ गई और उन्हें थाने ले गई। वहाँ ले जा कर उनसे पूछताछ की गई। शिकायतकर्ता विद्यार्थी के अभिभावक भी वहाँ पर मौजूद थे। विद्यार्थी ने पुलिस थाने में यह बयान दिया कि डॉ. अमरेन्द्र अक्सर ट्यूशन समाप्त होने के बाद उसे अकेले में रोक कर उससे कुछ देर बातचीत किया करते थे। इसलिए वह अक्सर देरी से घर लौटता था। लेकिन पिछले दिन डॉ. अमरेन्द्र ने उससे शारीरिक छेड़छाड़ की एवं अश्लील वीडियो भी दिखाया।

"क्या ?" मालिनी भौंचक्की थी।

"हाँ मालिनी, लेकिन हक़ीक़त कुछ और ही थी। जिस दिन वह छात्र ज़्यादा ही देरी से घर लौटा तो उसकी माँ ने उस पर तेज़ ग़ुस्सा किया। उस दिन विद्यार्थी ने घबरा कर रोना-धोना शुरू कर दिया। रो-रो कर उसने अपनी माँ को डॉ. अमरेन्द्र की झूठी शिकायत कर दी कि वे कक्षा के बाद उसे रोज़ रोकते हैं और उस दिन दूसरे कमरे में ले जा कर उसके साथ छेड़छाड़ कर शारीरिक संबंध बनाने की कोशिश की।"

"ओह माय गॉड इतना घिनौना इल्ज़ाम?"

"लेकिन फिर डॉ. अमरेन्द्र कुछ न बोले पुलिस थाने में ?"

"वही तो विद्यार्थी की माँ के पुलिस महकमे में अच्छे ताल्लुकात हैं, इसलिए डॉ. अमरेन्द्र ने सफाई देते हुए हक़ीक़त बयान की तो किसी ने उनकी बात का भरोसा ही नहीं किया। वे बेचारे इतने दिन जेल में बंद रहे और यह ख़बर अख़बार के माध्यम से पूरे शहर में फ़ैल गई, फिर जितने लोग उतने मुँह और उतनी ही बातें।"

"लेकिन मैम फिर हक़ीक़त सामने कैसे आई ?"

"जैसे ही पुलिस उन्हें लेकर थाने गई उनकी पत्नी ने अपने बेटे को फ़ोन कर सूचित किया। वह एक हफ्ते बाद अमेरिका से अपने देश में लौट पाया। तुम तो जानती हो क्रिसमस के समय स्कूल बंद होते हैं और अमेरिका आने-जाने वाली सारी फ्लाइट्स ओवर बुक्ड होती हैं। उनके बेटे को अचानक से टिकट नहीं मिल पा रहा था और फिर दोनों देशों के बीच की कम से कम सोलह घंटों की फ्लाईट।"

"लेकिन मैम फिर राज़ कैसे खुला ?" मालिनी की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

"जब उनका बेटा अमेरिका से आया तब डॉ. अमरेन्द्र की जान में जान आई और उन्होंने

हकीकत अपने बेटे को बताई। उसने एक वकील से बात की और सलाह ली। उनके बेटे ने अन्य विद्यार्थियों के अभिभावकों से भी बात की। पहले तो कोई भी उनके साथ बातचीत के लिए तैयार नहीं हुआ लेकिन वकील के बताए अनुसार जब उसने झूठी कहानी घड़ी और बताया कि कुछ बच्चों की फ़ोन चैट से मालूम हुआ है कि सारे बच्चे मिल कर अश्लील चैट किया करते थे। तब अभिभावकों का समूह थोड़ा ढीला पड़ा और सभी अपने-अपने बच्चों को बचाने में लग गए। तब दबाव और डर के मारे किसी एक विद्यार्थी ने अपना मुँह खोला और उसकी फ़ोन चैट से मालूम हुआ कि शिकायत करने वाला विद्यार्थी डॉ. अमरेन्द्र की डाँट सुन कर स्वयं को बेइज्ज़त महसूस करने लगा था और उनसे बदला लेने के लिए उसने यह इल्ज़ाम उन पर लगा दिया।

जब सभी विद्यार्थियों की फ़ोन चैट चेक की गईं तो शिकायतकर्ता के द्वारा भेजे गए संदेश में लिखा था "अब मज़ा चखाता हूँ सर को... अब देखना क्या होता है ?"

अगले दिन डॉ. अमरेन्द्र की पत्नी का डॉक्टर के साथ अपॉइंटमेंट था, सो वह घर में नहीं थीं। इसी का फ़ायदा उठा कर विद्यार्थी ने यह झूठी कहानी गढ़ी।

"ओह माय गॉड, कितना बदमाश ?"

"लेकिन फिर वह अक्सर देरी से घर क्यों पहुँच रहा था ?"

"दरअसल डॉ. अमरेन्द्र ट्यूशन समाप्त होने के बाद अक्सर उसे रोक कर अकेले में समझाया करते थे कि वह पढ़ाई में ध्यान दे और दूसरे विद्यार्थियों को भी डिस्टर्ब न करे। वे नहीं चाहते थे कि उसे सबके सामने डाँटा-फटकारा जाए; क्योंकि ऐसे में अक्सर विद्यार्थी बेइज्ज़त महसूस करते हैं। लेकिन वह नहीं समझा और उसने ट्यूशन के समय सभी को डिस्टर्ब करना जारी रखा। सो डॉ. अमरेन्द्र को एक दिन ज़ोर से ग़ुस्सा आ गया तो उन्होंने सभी के बीच उसे डाँट दिया।"

"ह्म्म्म, लेकिन ट्यूशन से छूट कर वह घर देर से क्यों पहुँचा फिर ? इतनी देर कहाँ रहा वह ?"

"सर के घर के पास में एक सुपर मार्केट है, वह वहाँ गया और उसने कुछ सॉफ्ट ड्रिंक वहाँ से लिया। वह अक्सर उस सुपर मार्केट में जा कर कुछ न कुछ खाने-पीने ले लिए लिया करता था। आजकल सभी जगह कैमरा लगे होते हैं ताकि कोई चोरी करे तो पकड़ा जाए। इसलिए उनका बेटा वकील एवं पुलिस की मदद से यह सब सबूत जुटा पाया। दरअसल वह दूसरे विद्यार्थियों को भी कभी-कभार वहाँ ले जा कर चॉकलेट, बिस्किट, स्प्राइट वगैरह पिलाया किया करता था। इसीलिए वे सब आपस में दोस्त बने हुए थे। सभी विद्यार्थी देरी से घर लौटते और अपने घरों में कहते कि सर ने देर तक क्लास ली। ये सारी जानकारी ट्यूशन पर जाने वाले अन्य विद्यार्थियों ने दी।"

"और मैं डॉ. अमरेन्द्र के लिए अपने मन में कितनी घृणा जमा कर चुकी थी। मुझे बहुत दु:ख हो रहा है उनके लिए मैम।"

"बात है ही दु:ख की..."

"मैम फिर उस स्टूडेंट का क्या हुआ ?"

"उसकी काउंसलिंग चालू है, जेल से छूटने के बाद डॉ. अमरेन्द्र नहीं चाहते थे कि इसे किसी प्रकार की सज़ा दी जाए जिससे उसका भविष्य ख़राब हो जाए, इसलिए वे स्वयं भी जैसे पहले थे वैसे ही रहे।"

"हाऊ नाइस ही इज़"

"दरअसल उस विद्यार्थी के माता-पिता की आपस में पटरी नहीं खाती थी। घर में हर वक़्त कलह-क्लेश रहता। बच्चा बचपन से अकेलेपन का शिकार है। पिता तो अक्सर काम के सिलसिले में बाहर आते-जाते रहते हैं। माँ अपने इकलौते बेटे के मोह में ऐसी पड़ी थी कि उसे कुछ कहना ही नहीं चाहती थी, उसकी हर माँग पूरी करती। आजकल माता-पिता भी तो डरते हैं कि कहीं बच्चा कुछ कर न ले। शायद पति-पत्नी के आपसी झगड़ों के कारण बच्चा बचपन से ही डर के साए में रहा और उसे स्वयं को बचाने के लिए झूठ बोलने की आदत पड़ गई। दसवीं कक्षा तक आते-आते वह बहाने बनाने में माहिर हो चुका था। लेकिन इस वर्ष बोर्ड की परीक्षा है यह सोच कर उसके पिता पढ़ाई के लिए ज़ोर देने लगे थे और उसकी माँ को भी हिदायत देते रहते कि वह अपने बेटे पर ध्यान दे। बच्चे का पढ़ने में मन नहीं लगता और दूसरा यह मोबाइल और इन्टरनेट हर वक़्त साथ जो रहता है। इसके फायदे हैं तो नुकसान भी तो हैं।

किशोरावस्था में ग़लत-सही का फ़र्क़ भी तो नहीं कर पाते बच्चे, सो गेम खेलने लगा और कभी-कभार गेमिंग साइट्स पर ही अश्लील वीडियो का विज्ञापन देख कर अश्लील विडियो में भी रुचि लेने लगा। मालिनी दोष बच्चे का नहीं है, उसकी उम्र का है, उसकी परवरिश का है। जिसके लिए उसके माता-पिता दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। आजकल आसान नहीं है बच्चों की परवरिश।"

"आपको किसने बताया यह सब?"

"विद्यार्थी के स्कूल की एक अध्यापिका मेरी पुरानी सहेली है। वैसे तो स्कूल वाले यह मामला दबा देना चाहते थे क्योंकि इस से उनके स्कूल का नाम भी ख़राब होगा। लेकिन मेरी सहेली ने पर्सनली मुझे यह बात बताई।"

"फिर मैम अख़बार वाले क्या सही ख़बर नहीं छाप रहे ?"

"विद्यार्थी के माता-पिता नहीं चाहते थे कि बच्चे का नाम ख़राब हो इसलिए अब तक रुकी हुई थी। फिर उसके विद्यालय वालों ने भी डॉ. अमरेन्द्र से रिक्वेस्ट की कि इस बात को दबा दिया जाए। लेकिन मीडिया कहाँ रुकने वाला है... ख़बर तो ज़रूर छपेगी ही और हक़ीक़त तो सामने आनी भी चाहिए ही। इसीलिए दो दिन पहले यह ख़बर अख़बारों में पुन: सुर्खियाँ बटोर रही है।" आशा मैम ने उसे ख़बर दिखाई तो मालिनी की आँखें भर आईं।

"तो कुल मिला कर बात यह हुई कि थोड़ा सा मज़ा डॉ. अमरेन्द्र नहीं, वह विद्यार्थी ले रहा था।" मालिनी ने गर्दन हिलाई।

"हाँ मालिनी, सच में डॉ. अमरेन्द्र बेवजह फँसाए गए।"

"अच्छा मैम, अब मैं चलती हूँ।" मालिनी यंत्रवत उठ खड़ी हुई।

"कहाँ ?"

"डॉ. अमरेन्द्र से मिलने।" मालिनी मुस्कराई और डॉ. अमरेन्द्र को फ़ोन लगा दिया।

000

पुनरागमन

पूजा गुप्ता

पूजा गुप्ता
भगवानदास की गली, आदर्श स्कूल के सामने, गणेश गंज, मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)
पिन कोड - 231001
मोबाइल- 7007224126
ईमेल- guptaabhinandan57@gmail.com

सुनीता की कार्यकुशलता ने पाँच सालों में ही मुझे एकदम निकम्मा बना दिया था। इसलिए जब एक दिन उसने स्थाई रूप से गाँव जा बसने का ऐलान करके बोरिया-बिस्तर समेटा तो मेरे तो हाथ-पैर ही फूल गए। घर के इस छोर से लेकर उसे छोर तक फैले काम में समझ ही नहीं आता था कि काम की शुरुआत करूँ तो कहाँ से करूँ? ऐसे संकट काल में सुमन का आगमन मुझे वरदान जैसा लगा।

पड़ोस में रहने वाले सोनी जी की नौकरानी मधु की बहन बीस वर्षीया सुमन, पति की असामयिक मृत्यु के बाद दो महीने के बिरजू के साथ भरण-पोषण के अलावा आवास की समस्या से भी जूझ रही थी। सुमन की समस्याएँ मेरी समस्याओं के निवारण का ज़रिया बन गई। हालाँकि उसकी आवासीय समस्या हल करने में मुझे ख़ासी मेहनत करनी पड़ी। दरअसल नौकरों के बारे में इनके उसूल निश्चित और एकदम स्पष्ट है। उनके साथ इंसानियत के बर्ताव की हिमायत के बावजूद ये एक निश्चित दूरी रखना पसंद करते हैं। इसलिए साथ रखने के पक्ष में नहीं है। पिछवाड़े वाली कोठी में सुमन को रखने के लिए इन्हें मुश्किल से राज़ी कर पाई।

अपनी असहायता के एहसास ने सुमन को इतना अधिक विनम्र बना दिया था कि कई बार उसकी विनम्रता मुझे दीनता-सी लगने लगती। धीरे-धीरे उसने घर के सारे उत्तरदायित्व सँभाल लिए। अब अलसुबह किचन में जाकर मुझे बेड टी नहीं बनानी पड़ती थी। बाथरूम धोकर मँजी हुई बाल्टी में पानी भरकर, कपड़े अरगनी पर टाँग कर सुमन मुझे नहाने के लिए पुकारती। पूजा की अलग व्यवस्था मिल जाती। पूजा निबटते-निबटते वह मैले कपड़े वाशिंग मशीन के सुपुर्द कर नाश्ते की तैयारी में लग चुकी होती। रसोई घर में सुमन की घुसपैठ ने दोनों समय के भोजन बनाने के मेरे दायित्व को काट-छाँटकर सिर्फ सब्ज़ियाँ छौंकने और खाना परोसने तक समेट दिया था। अपने इसी गुण से सुमन मेरे मन में जगह बनाती चली गई और मैं जान भी नहीं पाई कि नौकरानी बनकर घर में प्रविष्ट हुई सुमन कब मेरे लिए परिवार की सदस्य जैसी अपनी और आत्मीय बन गई।

सुमन जिस दिन घर आई, उसी दिन विक्रांत का सीपीएमटी का परीक्षा फल निकला। परीक्षा के दौरान विक्रांत के बीमार पड़ जाने के कारण हम उसकी सफलता के प्रति आशान्वित नहीं थे, पर वह चयनित हो गया था। अंधविश्वासी ना होने के बावजूद मेरे मन में एक विश्वास घर कर गया कि सुमन के पैर मेरे घर के लिए शुभ है। प्रसन्न मन:स्थिति में उपजी उदारता में मैंने उसे आश्वासन दे डाला, "मैं तेरे बिरजू को पढ़ाऊँगी।"

विक्रांत का जब एमबीबीएस पूरा हुआ तब मैं बिरजू को 'क' से कबूतर 'ख' से खरगोश पढ़ाना सिखा रही थी। विक्रांत के छोटे पड़ गए कपड़ों से मैं बर्तन ख़रीदकर उकता चुकी थी। बिरजू के माध्यम से उनका सदुपयोग कर एक संतोष मिला। वह विक्रांत के स्कूल के दिनों वाली ग्रै निक्कर और सफेद कमीज़ पहन कर पढ़ने बैठता तो कई बार मुझे लगता है कि मेरे सामने बीस साल पहले का छोटा सा विक्रांत आ बैठा है। उसके तेल चुआते बाल, मोटे काजल से आँजी आँखों और कड़वे तेल से गंधाती देह से वितृष्ण हुए बिना मैं उसे सीने से चिपटा लेती। एक आध बार इन्होंने देखा, लगा, पसंद नहीं आया। अकेले में समझाते हुए बोले, "देखो, नौकर चाकर के प्रति मैं स्नेह-ममता का विरोधी नहीं हूँ, पर इन भावों का मन में रहना ही अच्छा है, ऐसा खुला प्रदर्शन उचित नहीं।"

"क्यों भला?" मैंने किंचित अप्रसन्नता से पूछा।

"इसलिए कि अगर कल यही बराबरी उसकी तरफ़ से हुई, तब तुम्हें ही गवारा नहीं होगा।"

हालाँकि उनकी बात अपनी जगह सही थी, पर मुझे अच्छी नहीं लगी। चिढ़कर जवाब दिया, "आप पुरुष हैं, स्त्री होते तो जानते, स्त्री की ममता भेदभाव नहीं जानती।"

इन्हें गुस्से से अपनी और घूरता पाया तो जैसे और चिढ़ाती-सी बोली, " मैंने तो कहीं पढ़ा है कि जो व्यक्ति संगीत, फूल और बच्चों से प्यार नहीं करता वह..."

"ख़ून कर सकता है, यही न।" इन्होंने ग़ुस्से से मेरा वाक्य पूरा किया। "ठीक है नौकरानी के लड़के को कलेजे से चिपका-चिपका कर जब आपकी ममता तृप्त हो जाए, तो मेरे कमरे में एक कप चाय भिजवा दीजिएगा।"

इसके बाद इस विषय पर उनकी ओर से कोई टिप्पणी नहीं हुई।

विक्रांत को डॉक्टर बने एक वर्ष पूरा होने को आ रहा था। कुलीन घर-परिवार का लड़का अगर काम पर लग जाए और सुदर्शन भी हो तो जाने किन बेतार के तारों पर तैरती हुई उसकी विवाह पात्रता की सूचना अविवाहित कन्याओं के पिताओं तक जा पहुँचती है प्रस्ताव का ताँता लग गया था।

ढोलक की थाप पर गूँजते बन्ने की पृष्ठभूमि में घोड़ी पर सेहरा बाँधे विक्रांत की मनमोहक कल्पना करते हुए मैं तो अभी से मग्न हुए जा रही थी। लेकिन मेरी ग़लतफ़हमी के नाज़ुक काँच को विक्रांत की वयस्कता के एक ही ऐलान ने फर्श पर पटक कर झन्न से चकनाचूर कर दिया, "मम्मी तुम किसी जगह 'हाँ' मत कर बैठना, मेरी अपनी पसंद है।"

बेटे की इस बेहिचक, बल्कि सच कहूँ तो निर्लज्ज उद्घोषणा से हम मियाँ-बीबी आसमान से ज़मीन पर आ गए। और जब बेटे की 'पसंद' को प्रत्यक्षत: देखा तब तो जैसे निष्प्राण ही हो गए। यह उसकी सुरुचि का अध:पतन था या सौंदर्य के नए मापदंड, हम समझ नहीं सके।

विक्रांत की पत्नी का तीखे नाक-नक्शों के बावजूद रंग गहरा साँवला था और चेहरे पर नाराज़गी भरी ऐसी शुष्कता व्याप्त थी, जो आमतौर पर पब्लिक डीलिंग का काम करने वाले चेहरे की स्थाई पहचान बन जाती है। पुरुषों जैसी ऊँचाई के साथ शरीर इतना दुबला था कि डॉक्टरनी ख़ुद ही रोगिणी होने का भ्रम पैदा करती थी। कहाँ अपनी अछूती सुंदरता को घूँघट में ढँके, पलकें झुकाए, सकुचाए क़दमों से चलती आती पुत्रवधू की हमारी कोमल कल्पना और कहाँ इस छह फुटी विजातीय श्यामा की किसी विख्यात मॉडल जैसी दर्पीले आत्मविश्वास भरी एक बार बाएँ दूसरी बार दाएँ लचकती नि:संकोच चाल का कठोर यथार्थ। मैंने इसे अपने नियति समझ कर स्वीकार कर लिया।

शादी के दौरान मुझे सुमन की तबीयत ढीली होने की ख़बर मिली तो थी, पर मैं उसकी गंभीरता का अनुमान नहीं लगा पाई थी। एक-दो बार बुखार की गोलियाँ देकर सोचा था मौसमी बुखार है, उतर जाएगा। मगर शादी निबटते-निबटते जब वह बिस्तर से जा लगी तो मुझे चिंता होने लगी। बुखार उतरने का नाम नहीं ले रहा था, जाँचें हुई, परिणाम देखकर तो मेरे पैरों तले धरती ही खिसक गई। सुमन को रक्त कैंसर था।

सुमन की बीमारी से मैं मानसिक रूप से बहुत परेशान थी। ऐसे में बहू का असहयोग मुझे और भी दु:खी कर जाता। वह सुमन को सरकारी अस्पताल में भर्ती करवाने का कई बार मशवरा दे चुकी थी। उसकी तार्किक सोच में तनख़्वाह और नौकर का गणित एकदम साफ था। वेतन थमाते ही नौकर मिल जाने की सुविधा होते हुए भी नौकरानी की सेवा करना और नौकरानी भी वह, जिसे ठीक ही नहीं होना है, उसके लिए भावनात्मक मूर्खता थी। यह सच था कि कभी सुमन की ओर से चाकरी और मेरी तरफ से वेतन हमारे संबंध जोड़ने का पुल बना था। लेकिन आत्मीयता की बाढ़ में वह पुल तो कब का टूट कर बह चुका था। अब तो इस पार से लेकर उस पार तक केवल हार्दिकता का छलछलाता जल था। इसे मेरी बहू कभी नहीं समझ सकी।

इस तरह की छोटी-छोटी घटनाएँ भविष्य के एकदम साफ संकेत दे रही थी। लेकिन सच स्वीकार करने की हिम्मत न होने से मैं जानबूझकर अनदेखी कर रही थी। ये मुझसे ज़्यादा दुनियादारी जानते है और कुशाग्र बुद्धि भी है इनमें, इसलिए आगत को मुझसे कहीं ज़्यादा साफ देख रहे थे। पर इनका पुरुष अहं इन्हें दु:ख को स्वीकार नहीं करने दे रहा था। इसलिए यह दोहरी पीड़ा झेल रहे थे। अंदर दु:ख सहने की, बाहर छिपाने की। मैं तो फिर भी रसोईघर में मसाला भूनते हुए, कपड़े प्रेस करते हुए या मंदिर में रामायण पढ़ते हुए मौका पाकर चोरी से रो लेती थी, पर यह गंभीर मुद्रा और खामोशी के आवरण तले भीतर का चित्कार छुपाए रखते।

विक्रांत के विवाह को छह महीने होने चले थे इन छह महीनें में बहू-बेटे ने हमें हर तरह से जता दिया था कि हमने उनके लिए सिर्फ समस्याएँ खड़ी की है, बहू-बेटे के मनोभावों को भाँपकर हालाँकि यह किसी भी तरह की टोका-टाकी कब की छोड़ चुके थे, पर उस दिन पता नहीं कैसे भूल हो गई। पार्टी से आधी रात गए लौटने पर इनका मामूली सवाल-जवाब दोनों की नाराज़गी का बहुत बड़ा कारण बन गया और उनके निर्मम प्रस्ताव की भूमिका भी। इसमें उन्होंने पुराने मुहल्ले के इस 'ओल्ड फैशन्ड' पुश्तैनी मकान को बेचकर नई कॉलोनी में नए ढंग के मकान बनवाने की इच्छा प्रस्तावित की थी, जिसमें आने-जाने के दो स्वतंत्र रास्ते निश्चित रूप से हों, ताकि उनके देर-सबेर आने का अव्वल तो हमें पता ही न लगे और लग जाए तो आपत्ति का कोई आधार ना हो।

उस दिन इनका संचित आक्रोश एक साथ फूट पड़ा। इनके साथ स्वभाव का उत्तेजना भरा यह नया रूप देखकर मैं तो सहम गई।

"न यह मकान बिकेगा, न इसे छोड़कर हम कहीं जाएँगे। हाँ, तुम अपनी सुख-सुविधा के हिसाब से जहाँ चाहो जा सकते हो।" नपे-तुले शब्दों में दो टूक जवाब का पत्थर उनके मुँह पर मारकर जैसे यह ख़ुद ही आहत हो गए।

लगा, बहू-बेटे ने शायद इसी हरी झंडी को पाने के लिए ही सारा उपक्रम रचा था। कुछ ही दिन बीते कि बहू ने खाड़ी देश में बसे अपने भाई का भेजा नियुक्ति पत्र हमारी विस्फारित आँखों के सामने लहरा दिया, जिसमें दोनों के लिए पैसा उगलती नौकरियों के आमंत्रण थे।

'अपनी सुख-सुविधा के हिसाब से जहाँ चाहो जा सकते हो' कथन कहने में जितना आसान था, उसकी वास्तविकता झेलना उतना मुश्किल था, लेकिन तीर कमान से

निकल चुका था।

आने वाला हर दिन सुमन और मौत का फ़ासला कम करता जा रहा था। विक्रांत की उड़ान को बीस दिन बचे थे, जब सुमन ने अंतिम विदा ली। उसके अंतर्मन की याचना शब्दविहीन होकर भी शून्य मे टिकी उसकी आँखों की कातरता और सूखे होठों की फड़फड़ाहट में पूरी तरह अर्थपूर्ण थी। मैंने उसकी दुबली हथेलियाँ थाम ली। माथे पर स्नेह भरा हाथ फेरकर आश्वासन दिया, "मैं हूँ ना, तेरा बिरजू मेरी ज़िम्मेदारी है।"

मैंने तो बड़े आत्मविश्वास से बिरजू की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली थी, पर मुझे क्या पता था कि मुझे परलोकवासी सुमन का अपराधी बनना पड़ेगा।

इनका व्यवहार अप्रत्याशित था, जैसे बेटे से मिले आघात का बदला निर्दोष बिरजू से ले रहे हो- "आख़िर तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती? इस नासमझ बच्चे को किस हक़ से अपने साथ रखना चाहती हो?"

बिरजू को अपने साथ रखने में किसी हक़ की भी ज़रूरत पड़ सकती है, यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। कोई जवाब नहीं सूझा। सिटपिटा कर बोली, "जैसे सुमन को रखा था, वैसे ही बिरजू को भी रख लूँगी।"

"पागल हो गई हो?" यह मेरे ग़ैर दुनियादारी वाले रवैये पर झल्ला कर बोले, "नाबालिग बच्चा है। दस तरह के झँझट खड़े हो सकते हैं। कल किसी ने बच्चों को नौकरी पर रखने की झूठी रिपोर्ट दर्ज करा दी तो जेल जाने की नौबत आ सकती है। रखा रह जाएगा सारा परोपकार।"

"फिर कहाँ रहेगा यह बेचारा?" पूछती हुई मैं अपनी लाचारी पर रो पड़ी।

"क्यों, मधु..... इसकी मौसी नहीं है? वही रहेगा।" ये कठोरता से बोले।

"आपके हाथ जोड़ती हूँ, इसे मेरे साथ रहने दीजिए।" अनुनय में मैंने सचमुच ही हाथ जोड़ दिए।

"देखो मैं कोई कानूनी झमेला नहीं चाहता..।" कहते ही ये एक क्षण को रुके। इनका स्वर एकदम उतार पर आ गया, "एक धक्का खाकर अभी जी भरा नहीं, जो फिर नया नाता जोड़ने चली हो।" इनकी ओढ़ी हुई कठोरता की वजह मेरी समझ में आ रही थी।

मधु के चेहरे पर अनचाहा बोझ आ पड़ने का असंतोष साफ ज़ाहिर था। एक कोने में मासूम बिरजू सहमा खड़ा सब देख रहा था। मैं सामान के साथ मधु को बिरजू का बस्ता भी थमाने लगी तो वह किंचित उकताकर बस्ता वापस करती हुई बोली, "बहू जी, ये पोथी-पत्तर तो आप ही रखो। हमारे घर में इसका कोई काम नहीं है।"

मेरा अनबूझा सवाल भाँपकर ही शायद उसने जवाब दिया, "कल से अपने बड़े भाइयों के साथ गैराज के काम पर यह भी जाएगा।" अपने कहे हो जायज़-सा ठहराती वह बोली, "क्या करें बहूजी, हम ग़रीबों के यहाँ तो जितने पेट हैं, उतने ही जोड़ी हाथ काम करें, तभी दाल-रोटी का जुगाड़ हो पाता है।"

मैंने बिरजू के नन्हे-मुन्ने हाथ देखे। जाड़ों में सुमन अक्सर दूध के जूठे भगौने की तली में चिपकी रह गई मलाई काँछकर उसके हाथ-पैरों में मलती थी। कल से इन छोटी-छोटी उँगलियों में पेचकस, पाना और रिंच होंगे। कलेजे में मरोड़-सी उठी, मैंने उसे सीने से चिपटा लिया। माथा चूमकर भरे गले से बोली, "जब भी कोई ज़रूरत हो, बेहिचक चले आना।"

उदास आँखों दिए बिरजू ने 'अच्छा' के भाव से सिर हिला दिया।

मधु के पीछे छोटे-छोटे क़दम रखकर जाते हुए बिरजू को मैं अपनी डबडबाई आँखों से ओझल होने तक देखती रही। कमरे में आकर हिलक-हिलक कर रोई अपनी विवशता पर। जीवन में पहली बार ये मुझे बहुत बुरे लगे। कुछ दिनों के लिए हम दोनों में संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई, लेकिन जिस दिन बेटा-बहू रवाना हुए, उनकी हालत देखकर मैं सारा आक्रोश भूल गई। संधि प्रस्ताव लेकर ख़ुद ही आगे बढ़ आई। किसी अनहोनी के घटने का डर हो आया था मुझे, बहू-बेटे की पीठ फिरते ही इनके संयम का बाँध भरभरा कर ढह गया था। इतना विचलित मैंने इन्हें कभी नहीं देखा था। भीतर से उमड़ता रुलाई का वेग रोकने की कोशिश में इनके होंठ काँप रहे थे। समूची देह हवा से झकझोर डाली गई टहनी-सी हिल रही थी। सहारा देकर मैं इन्हें बिस्तर तक लायी और रोने का अवकाश देने के लिए झूठ बोलती पलट गई, "हाय राम, आग लगे मेरी याद को, गैस पर दूध चढ़ा ही छोड़ आई हूँ।"

दूध का गिलास और दवा की गोली लेकर जब मैं लौटी तो ये बाहर जा चुके थे। सोनी जी के यहाँ ही गए होंगे, मैंने सोचा। उन्हीं के यहाँ इनका सुबह-शाम का उठना-बैठना था। तसल्ली हुई- चलो, कह-सुनकर मन हल्का कर आएँगे। ये दोपहर के खाने तक नहीं लौटे तो मैंने सोनी जी के यहाँ फ़ोन किया। ये वहाँ गए ही नहीं थे। फिर कहाँ जा सकते हैं? सोचते-सोचते मुझे चिंता होने लगी। एक-एक करके सभी परिचितों के यहाँ फ़ोन मिला डालें। इनका कुछ पता नहीं चला। इंतज़ार करते-करते घड़ी की सुई चार को पार कर चली थी। अब मेरे हाथ-पाँव ठंडे पड़ने लगे। अर्द्धमूर्छित-सी मैं भगवान् के सामने ढह पड़ी, "हे प्रभु अनजाने में किये मेरे पापों का दंड उन्हें मत देना।"

तभी डोरबेल बजी, यही थे। क्रोध और रुलाई के आवेग में इतना ही कह पायी, "बताकर तो जाते...!"

"फिर यह सरप्राइज़ कैसे देता?" कहने के साथ इन्होंने बोगनबेलिया की आड़ में छिपे बिरजू को खींचकर सामने कर दिया।

"क्या?" आनंद और आश्चर्य के अतिरेक में मैं और कुछ नहीं बोल पाई।

"लो सँभालो...अपना बिरजू..." मेरे एक हाथ में बिरजू का हाथ पकड़ा कर, "और यह रहा तुम्हारा अधिकार पत्र...!" कहते हुए इन्होंने मेरे दूसरे हाथ में एक लिफाफा थमा दिया। खोल कर देखा तो गोद लेने की कानूनी कार्यवाही के काग़ज़ थे। मैंने आभार और आनंद भरी नज़रों से इनकी ओर देखा। उनकी आँखों में नटखट शरारत थी और होठों पर विक्रांत की शादी के बाद पहली बार आई मुस्कान। कुछ वैसे ही मीठी-सी, जैसे नवजात विक्रांत के माथे पर पहला चुंबन रखते हुए आई थी।

000

मुझे माफ़ कर दो अम्माँ

पद्मा मिश्रा

पद्मा मिश्रा
एलआईजी-114, रो हाउस
आदित्यपुर-2, जमशेदपुर-13
झारखण्ड
ईमेल- padmasahyog@gmail.com

वार्ड का ख़ालीपन न जाने क्यों आज एक अव्यक्त से सूनेपन का आभास दे रहा था, केबिन के पास वाले बेड नंबर 10 का कोना रह रह कर मन में टीस भर रहा था। पहले न जाने कितने मरीज़ आए और गए पर नर्स राजम्मा का मन आज से पहले इतना आकुल, व्याकुल कभी न था। नर्सिंग के पेशे में इतने वर्षों से कार्य करते हुए कभी कर्त्तव्य पालन में शिथिलता आई हो- उसे याद नहीं। पर जीवन की लंबी यात्रा में पारिवारिक उलझनों, टूटते-बिखरते रिश्तों की कड़वाहट शायद उम्र के साथ-साथ उसके व्यवहार तथा व्यक्तित्व में भी झलकने लगी थी। हृदय में प्रवाहित होती संवेदना और सहानुभूति का अजस्र स्रोत सूख चला था, तभी तो उसकी कर्त्तव्यपरायनशीलता में हुई ज़रा-सी चूक ने उसके पेशे को ही दाग़दार बना दिया था। हॉस्पिटल के इस महिला वार्ड में काम करते हुए दस वर्ष कब गुज़र गए, पता ही नहीं चला था। वह एक लोकप्रिय, सेवाभावी नर्स बनने का सपना लेकर यहाँ आई थी। मदर टेरेसा, सिस्टर निवेदिता, फ़्लोरेंस नाइटेंगल जैसे बड़े बड़े नाम आदर्श थे उसके सामने। मानवता की सेवा, दया, करुणा, त्याग, सहनशीलता के सारे पथ रोम-रोम में समाहित थे। मरीज़ों के बीच जब वह हाथों में सिरिंज लिए या सलाइन की बोतलें थामे सधे क़दमों से चलकर वार्ड में आती, तो सभी एक प्रिंसेज़ की तरह उसका स्वागत करते थे। मरीज़ आते और ठीक होकर चले जाते। कुछ को अंतिम विदा दे आँखें भर आतीं, पर तुरंत सजग भी हो जातीं- फिर एक नया दिन और नया मरीज़। तरह-तरह की बीमारियाँ उनके ईलाज के लंबे-लंबे उलझनों भरे दिन। पर आज से पहले राजम्मा ने किसी ख़ास एहसास का अनुभव नहीं किया था। वार्ड का वह ख़ाली कोना उसे आज भी धिक्कारता है। शायद वह मनहूस दिन उसकी यादों का एक अमिट हिस्सा बन गया है,ठीक उस घाव वाले अंग की तरह जिसे काट कर भी ठीक होने की कोई संभावना शेष न हो।

डॉ. प्रसाद का वह विषादपूर्ण स्वर अभी भी उसके कानों से टकराता है- "सिस्टर राजम्मा, मुझे आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी।"

सोचते हुए उसकी आँखें भींगने लगी थीं। बेड नंबर दस की सत्तर वर्षीया श्यामा कभी उसे सिस्टर न कहकर 'बिटिया' ही पुकारती थी, और राजम्मा उन्हें कभी प्यार से 'अम्माँ' तो कभी ग्रेनी कहकर बुलाती थी। हॉस्पिटल के नियमानुसार हर मरीज़ के साथ एक सेविका रखी जा सकती थी- श्यामा के साथ उसकी अठारह वर्षीया पोती गुड़िया रहती थी। उसकी देखभाल करते, बाल बनाते, सूप पिलाते या कपड़े बदलते समय वह जितने प्यार से उनका लाड़-दुलार करती- एक माँ की तरह, कि सभी उसे पहचानने लगे थे। उछलती, कूदती इस कोने वाले मरीज़ से लेकर दूसरे छोर पर लेटी दस वर्षीया रजनी तक सभी दादी-पोती के प्यार से परिचित हो चले थे। बगल में ही नर्सों का केबिन होने के कारण राजम्मा और अन्य नर्सें भी उनके इस लगाव को देख कर प्यार से मुस्करा उठती थीं।

उस दिन श्यामा की तबियत कुछ ज्यादा ही ख़राब थी, बुखार 104 डिग्री तक बढ़ गया था, और साँस में दिक़्क़त की वजह से ऑक्सीजन लगाना पड़ा था। थोड़ी देर में दवा से बुखार उतरने लगा था, पर साँस लेने में कुछ कठिनाई थी। उस दिन राजम्मा रात की ड्यूटी पर थी। स्टाफ रूम से कॉफ़ी पीकर जब वह वार्ड में आई, तो ड्यूटी का चार्ज सौंपते समय नर्स शिखा ने बताया था

कि श्यामा का विशेष ध्यान रखना, बुखार कभी भी बढ़ सकता है, ब्रेन हैमरेज का भी ख़तरा है, क्योंकि ब्लड-प्रेशर काफी बढ़ा हुआ है। मशीन जैसे यंत्रचालित-सी सारी नर्सें साथ-साथ चलती हुईं कार्यभार लेने की मानों औपचारिकता निभा रही थीं। राजम्मा ने भी शायद उसे रूटीन का ही एक हिस्सा माना था, और वह केबिन में जाकर बैठ गई किसे कब और क्या दवा देनी है, इसे नोट करते और तत्संबंधी दवा निकाल कर क्रमवार ट्रे में सजाने में व्यस्त राजम्मा श्यामा का विशेष ख़्याल रखने वाली बात भूल गई। उस दिन वार्ड में कई सीरियस मरीज़ भी थे अत: पूरा स्टाफ आज काफी व्यस्त था।

दिन भर ओ पी डी की भाग-दौड़ में व्यस्त रह कर शाम को सब्ज़ियाँ खरीदकर, बेटे को स्कूल से लाना, टेलीफोन-बिजली के बिल जमा करवाने, जैसे न जाने कितने कामों को निपटाते-निपटाते राजम्मा की ड्यूटी का समय भी हो चला था। उसने जल्दी-जल्दी खाना बनाकर बेटे को खिलाया, ख़ुद भी खाकर हॉस्पिटल चली आई थीं। एक पल भी आराम नहीं किया था, इसलिए बहुत थक गई थी, शरीर थकान से शिथिल हो रहा था। इच्छा नहीं थी कि वार्ड का एक चक्कर ही लगा ले। शायद अन्य नर्सों की तरह उस पर भी स्वार्थ हावी हो रहा था। थकानग्रस्त शरीर इन कमज़ोर पलों में उसे कर्त्तव्य-विमुख भी कर रहा था। यह सोचने की भी मानों उसे फुरसत नहीं थी। वह दवा की ट्रे लेकर सबको दवा देती हुई जब बेड नंबर 10 पर पहुँची तो श्यामा जाग रही थी। उसे देखते ही श्यामा के होठों पर मुस्कान दौड़ गई थी, इशारे से श्यामा ने पूछा- "कैसी हो ?" राजम्मा ने सिर हिलाया और आगे बढ़ गई। अपने दर्द व पीड़ा के बीच भी श्यामा ने मुस्कराकर राजम्मा का स्वागत किया था। वह कुछ कहना या बताना चाहती थी -पर क्या ? यह बात राजम्मा न जान सकी, क्योंकि उसने तो आँखें उठाकर ठीक से उन्हें देखा भी नहीं था शायद। '24 नंबर को सलाइन की सात बोतलें चढ़ानी हैं', 'बेड नंबर 20 को कंबल व 21 नंबर को बेड-पैन दिलवाना है' ये सारे काम यंत्रचालित सी रटती हुई राजम्मा

एक पेशेवर नर्स नज़र आ रही थी। उसके मन की संवेदना की जगह पता नहीं कहाँ से एक रूखेपन और कड़वाहट ने ले ली थी। वह केबिन में लौटी। दूसरी नर्सों ने कॉफ़ी बनाई थी,वह भी उस बैठक में शामिल हो गई थी। सभी बातों में मशगूल थीं, रात के दस बज रहे थे-अचानक कहीं से कराहने की आवाज़ आई। एक बार, दो बार, फिर आवाज़ शांत हो गई थी, सभी ने सोचा कि शायद वह मरीज़ सो गई होगी, केबिन की अधिकांश नर्सें वार्ड नंबर ए के इमरजेंसी वार्ड में चली गई थीं और बी वार्ड में राजम्मा ड्यूटी पर थी, श्यामा की पोती गुड़िया बार-बार केबिन के पास आती और लौट जाती। राजम्मा ने भी उसे आते देखा था, पर पूछा कुछ नहीं। गुड़िया फिर केबिन के पास आई और पुकारा- "सिस्टर!"

"क्या है ?" इस बार राजम्मा ने जवाब दिया।

"आज दादी के सिर में बहुत दर्द हो रहा है। बार-बार उल्टी की शिकायत कर रही थीं, पर शाम तक ठीक हो गई थीं। डॉक्टर ने दवा भी बदली थी पर तब उसकी ज़रूरत नहीं पड़ी थी। ड्यूटी नर्स ने कहा था कि रात में सिस्टर से माँग कर दवा दे देना, मैं दवा लेने आई हूँ।"

राजम्मा व्यस्त थी, अत: बेमन से उसने जवाब दिया- "जब कोई तकलीफ़ नहीं है, तो क्या परेशानी है ? सो रही हैं न ? सोने दो। सुबह दवा दे देंगे।" राजम्मा आज स्वार्थी हो चली थी, दिन भर की थकान ने उसे तोड़ दिया था, और अब वह भी एक झपकी लेना चाहती थी अत: उसने गुड़िया को टाल दिया था। बस यही एक पल था, जिसने राजम्मा की सम्मानित दस वर्षों की सेवा पर एक प्रश्नचिह्न लगा दिया था। श्यामा को दवा नहीं दी जा सकी थी।

रात गहरा रही थी, दो बज रहे थे, पूरे वार्ड में सन्नाटा छाया हुआ था, एक क्षीण सी आवाज़ आई- "गुड़िया !" कोई जवाब नहीं। "गुड़िया, ज़रा पानी पिला दे बेटा" फिर भी कोई नहीं बोला, आवाज़ की छटपटाहट बढ़ती जा रही थी-"पानी... पानी... बिटिया ! सो रही है क्या ? पानी पिला दे बेटा।" शायद यह पुकार राजम्मा के लिए थी, प्यास से व्याकुल बैचैन हो श्यामा ही पुकार रही थी। उनकी पोती गुड़िया या तो वार्ड के किसी कोने में जाकर सो गई थी, या घर चली गई थी। कहीं नज़र नहीं आई। श्यामा बार-बार पानी माँगती रही, पर टेबिल पर सिर झुका कर सोती हुई राजम्मा ने भी नहीं सुना। बगल के बेड वाली सहायिका जाग रही थी, उसके मरीज़ को भी ऑक्सीजन लगा हुआ था, उसने राजम्मा को आवाज़ लगाई-"सिस्टर, श्यामा को पानी पिलाना है।"

"तो पिला दो," राजम्मा ने एक क्षण के लिए आँखें खोलीं।

"पर सिस्टर मैं कैसे पिलाऊँ- ऑक्सीजन मास्क लगा है, कैसे हटाऊँ, मैं तो उन्हें उठा भी नहीं सकती।"

"देखो उनकी पोती यहीं कहीं होगी, अभी आ जाएगी।" वह फिर सो गई। कर्त्तव्य-भावना पर स्वार्थ हावी हो गया था या विधाता ही वाम था, जिसने राजम्मा की निष्कलुष सेवा भावना पर एक काला दाग़ लगा दिया था। श्यामा की प्यासी पुकार शायद पूरे वार्ड में सभी ने सुनी थी, पर उस क्षण सबकी संवेदना कहीं खो गई थी।

सुबह होते ही पाँच बजे के क़रीब राजम्मा उठी, बगल से रजिस्टर उठाया, और सुबह की दवा लेने वालों के नाम पढ़ने लगी। श्यामा का नाम आते ही सहसा वह चौंकी और लगभग दौड़ती हुई सी उनके बेड पर पहुँची। श्यामा को जगाना चाहा, बार-बार हिलाया-डुलाया पर वह बोली नहीं। फ़र्श पर सोती हुई

गुड़िया को जगाया- "दादी को पानी दिया था न रात में ? कहाँ थीं तुम ?"

"मैं तो टॉयलेट गई थी, देर से लौटी, मेरे आने तक दादी सो चुकी थीं, क्या हुआ सिस्टर ?" उसने रुआँसे स्वर में पूछा। "जल्दी से लाइट जलाओ, वे उठ नहीं रही हैं।" गुड़िया ने तुरंत लाइट जलाई, अब तक दूसरी नर्सें, और आस-पास के मरीज़ भी आ जुटे थे। राजम्मा ने बार बार श्यामा को हिलाया-डुलाया, पर जवाब नहीं... वह यहाँ कहाँ थी ? उसकी प्यासी आत्मा तो न जाने किस गहरी चिर निद्रा में जा चुकी थी। कान से, नाक से, ख़ून की एक पतली लकीर बहती हुई गालों तक आकर सूख चुकी थी। उन्हें ब्रेन हैमरेज हो गया था रात में ही। राजम्मा चक्कर खाकर वहीं बैठ गई- "हाय !यह क्या हुआ अम्माँ।" श्यामा की निर्जीव अधखुली आँखें मानों पूछ रही थीं- "अब जाकर अम्माँ की याद आई बिटिया?" अब तक कई सीनियर डॉक्टर भी आ गए थे, डॉ. प्रसाद ने श्यामा का निरीक्षण किया और बोले- "सॉरी -अब वे नहीं रहीं।"

गुड़िया दादी से लिपट कर दहाड़ें मार कर चीख-चीख कर रोती रही। श्यामा के मुख को चादर से ढँकते हुए डॉ. प्रसाद ने कहा- "मुझे आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी सिस्टर राजम्मा।"

राजम्मा तो जैसे विक्षिप्त सी हो चुकी थी। हताश-निराश बस सोचे जा रही थी- "श्यामा पानी माँगते-माँगते जीवन की लड़ाई हार गई। उसकी आत्मा प्यासी ही रह गई। वह कैसा मनहूस पल था, उसके जीवन में, जब उसकी तुच्छ नींद, व्यक्तिगत तनाव, एवं पेशे से लापरवाही के कारण उसका कोई प्यारा मरीज़ जान से हाथ धो बैठा था।"

केबिन में चुपचाप बैठी राजम्मा के आँसू रुक नहीं रहे थे- "मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ अम्माँ !" उसका मन बार-बार उसे धिक्कार रहा था- 'काश! वह वार्ड का एक चक्कर लगाकर अम्माँ की तबियत के बारे में जानकारी ले लेती हमेशा की तरह, तो शायद श्यामा की जान बच जाती। वह यूँ प्यासी नहीं मरती।'

पुलिस भी आई जो श्यामा के परिजनों ने बुलाई थी, पर डॉक्टरों ने समझा-बुझाकर सारा मामला सँभाल लिया था। परिजनो कों शांत करते हुए डॉ. प्रसाद अतयंत विक्षुब्ध नज़र आ रहे थे। शाम को विज़िट करते समय ही उन्होंने देखा था कि श्यामा की हालत कुछ ठीक नहीं है, ब्लड-प्रेशर बढ़ा हुआ देख उन्होंने दूसरी शक्तिशाली दवा देने के लिए स्टाफ़ को कहा था, जो राजम्मा की लापरवाही के कारण नहीं दी जा सकी थी। नर्सिंग प्रशिक्षण के समय मानव-सेवा, विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं मानने की शपथ आज झूठी नज़र आ रही थी। श्यामा के शव को वार्ड से हटा दिया गया। नम आँखों से श्यामा को जाते हुए देख कर राजम्मा अतयंत भाव-विह्वल हो उठी थी। पीड़ा व दर्द से हृदय कराह उठा था, दस नंबर बेड का ख़ालीपन उसे कचोट रहा था। नज़रें न चाहते हुए भी बार-बार उधर ही चली जातीं। चारों तरफ़ खिलखिलाकर हँसती हुई श्यामा। सलाइन चढ़ाते समय दर्द की शिकायत करती श्यामा। कभी सूजे हाथों पर कोई दवा लगाने का आग्रह करती श्यामा। फूँक-फूँक कर चाय के घूँट भरती हुई, न जाने कितनी कहानियाँ सुनाकर पूरे वार्ड को हँसाती हुई श्यामा, हर तरफ़ नज़र आ रही थी। राजम्मा आज ख़ुद को अपराधी महसूस कर आरोपों के कटघरे में खड़ा पा रही थी। इसके पहले भी कई लापरवाहियाँ हुई हैं उससे, पर अब तक किसी की जान नहीं गई थी। वे सारी ग़लतियाँ समय रहते सुधार ली गई थीं। आज न केवल उसकी कर्त्तव्य भावना कलंकित हुई थी, बल्कि उसकी ममता, संवेदना, सहानुभूति, सेवा, त्याग, व समर्पण की भावना भी कलंकित हुई थी।

वह जानती थी कि हॉस्पिटल से उसे निलम्बित कर दिया जाएगा, शायद मुकदमा भी चले, या उसकी वर्षों की कर्त्तव्य परायणता को देखते हुए उसे माफ़ भी कर दिया जाए, पर वह ख़ुद को कभी माफ़ नहीं कर पाएगी। 'बिटिया' का सम्बोधन दे उसे अपनापन देने वाली अम्माँ के प्रति उसने अपराध किया था, अचानक वह फूट फूट कर रो पड़ी- "मुझे माफ़ कर दो अम्माँ, मुझे माफ़ कर दो !"

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

अंजना वर्मा

उसे रोक लेना बहुत है ज़रूरी
कभी सच भी कहना बहुत है ज़रूरी
बचा ही नहीं प्यार सच्चा धरा पर
अगर है, परखना बहुत है ज़रूरी
रहे देखते दोष सब में सदा वे
कि दर्पण दिखाना बहुत है ज़रूरी
सताते रहे ईश की सर्जना को
इसे अब समझना बहुत है ज़रूरी
अँधेरे में डूबी हुई सूरतें हैं
दिया इक जलाना बहुत है ज़रूरी

000

बेबसी की मार खा रहता यहीं है
झुर्रियों का दर्द कुछ कहता नहीं है
लौट आएगा दिया है जो भी तुमने
एक अनकहा बही-खाता कहीं है
संकटों से बच गया हर बार ही वो
इन दुआओं का असर होता कहीं है
आँख से दिखता नहीं है सामने भी
जब कहीं तन और मन होता कहीं है
अजनबी था चाँद तो मामा हमारा
हो गई पहचान तो नाता नहीं है
अक़्ल से ताले खुलेंगे सब जगत् के
प्रश्न दिल का हल मगर होता नहीं है

000

अंजना वर्मा
ई-102, रोहन इच्छा अपार्टमेंट,
भोगनहल्ली, विद्या मंदिर स्कूल के पास,
बेंगलुरु 560103, कर्नाटक
ईमेल- anjanaverma03@gmail.com

भाषांतर

अब दिल ख़ुश है

पंजाबी कहानी- रवि शेरगिल

हिन्दी अनुवाद- डॉ. अमरजीत कौंके

रवि शेरगिल

अमरजीत कौंके
718, रणजीत नगर-ए, भादसों रोड,
पटियाला- 147001 (पंजाब)

लगता है आज पूरा दिन ख़राब बीतेगा। ऐसा नहीं कि मैं अंधविश्वासी हूँ और कोई काली बिल्ली मेरा रास्ता काट गई। सुबह से ही मन बुझा-बुझा सा है। जब से गाँव से चाचा का फ़ोन आया है, दिमाग़ का ढाँचा ही हिल गया। बापू इतने बीमार हैं तो मुझे उनके पास जाना चाहिए। ख़ुद ही उनकी देखभाल करनी चाहिए। उन्होंने मेरे लिए जो किया है, उसका देना नहीं दिया जा सकता। यह मेरे दिल की आवाज़ थी। लेकिन अगर सब कुछ ऐसे ही छोड़ कर चला गया तो काफी नुक़्सान हो जाता। अस्पताल बंद करने का मतलब था ख़ुद को दस साल पीछे धकेलना। ज़िंदगी की गाड़ी पटरी से उतरने वाली थी। दिमाग़ का अपना तर्क था। किस की मानूँ, कुछ समझ नहीं था आ रहा। दिल और दिमाग़ की इस खींचतान में काम करने को मन बिल्कुल भी नहीं कर रहा। पर क्या करें? यदि अपने देश में होते तो सौ बहाने बना लेते। मौसम ठीक नहीं या मौसम बहुत बढ़िया है। बस आवश्यकतानुसार मौसम का इस्तेमाल करके घर बैठ जाना था। वैसे भी अगर अपने देश में होते तो शायद बहाना बनाने की नौबत ही न आती। न काम का बोझ और न बिलों की सिरदर्दी। खाओ, पियो और ऐश करो ही जीवन का मूलमंत्र होना था। अब दोष भी किस को देना। ख़ुद ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी थी कि जाना तो अमेरिका ही है, भले ही जहाज़ के पंखों पर बैठकर क्यों न जाना पड़े। अब लो अमेरिका के नज़ारे।

सारा दिन कुत्तों की तरह काम कर करके दिमाग़ भारी-भारी रहता है। हाँ, सच कुत्ते से याद आया, पूछूँ तो सही आज कितनी मीटिंग हैं?

"जेसिका, आज का कार्यक्रम क्या है?" स्वागतकर्ता को आवाज़ देता हूँ।

"कोई ख़ास नहीं डॉक्टर, पर डेविड आ रहा है दस बजे कोबी को लेकर।" जेसिका ने स्वागत मेज़ की ओर चलते हुए कहा और मैं डेविड के बारे में सोचने लगा।

डेविड मेरा पुराना ग्राहक था। चार साल पहले जब से गोरे डॉक्टर से अलग होकर मैंने अपना अलग अस्पताल खोला था, उसका बुलडॉग नस्ल का कुत्ता, कोबी, तब से मेरा मरीज़ है। डेविड एक पचास-पचपन वर्षीय श्वेत व्यक्ति है। पहले उसका ख़ूब भरा-पूरा परिवार था, लेकिन अचानक सब कुछ टूटी हुई माला के मोतियों की तरह बिखर गया। पत्नी-बच्चे सब ने उसका साथ छोड़ दिया और कोबी दिन-रात के लिए उसका साथी बन गया। जब भी वह कोबी को लेकर मेरे पास आता तो अपने दिल की बात भी कहता। कोबी के बाद मैं ही उसका राज़दार था।

जब भी मैंने कोबी के बिना उसके जीवन की कल्पना की तो मेरा दिल दहल गया। वही तो उसके जीवन जीने का सहारा था।

उसके आने की ख़बर सुनकर मैं हमेशा ख़ुश हो जाता हूँ, पर आज ऐसा कुछ नहीं हुआ। जेसिका से उसके आने के बारे में सुन कर चिंता में डूब गया हूँ। वास्तव में तकरीबन तीन सप्ताह पहले जब वह कोबी को लेकर मेरे पास आया था तो बहुत घबराया हुआ था। उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहे थे, केवल आँखों से आँसू बह रहे थे...

"डॉक्टर, कृपया मेरे बच्चे को बचा लें। प्लीज़ डॉक्टर।" वह मेरे गले लगकर गिड़गिड़ाने लगा था। दरअसल कोबी अपनी उम्र के आख़िरी पड़ाव पर था और पिछले कुछ दिनों से उसकी तबीयत ख़राब चल रही थी। अब अचानक उसने खाना-पीना भी बंद कर दिया था।

"हौसला रखो, डेविड।" मेरी आँखें भी नम हो गई थीं। "कुछ नहीं हुआ कोबी को। यह जल्द ही बेहतर हो जाएगा, तुम अपने आप को सँभालो।"

"प्लीज़ डॉक्टर, उसने कुछ भी खाया-पिया नहीं। देखो वह कितना दुबला और कमज़ोर हो गया है।" वह बहुत चिंतित था। शुरुआती जाँच करने पर पता चला कि कोबी की गुर्दे की हालत काफी हद तक ख़राब हो चुकी है। इस उम्र में गुर्दे का ठीक से काम न करना एक बहुत ही घातक बीमारी का संकेत होता है। लेकिन मैं सच बताकर डेविड को और अधिक आहत नहीं करना चाहता था। "देखो डेविड, कोबी के गुर्दे पुराने हो गए हैं। अब पहले की तरह काम नहीं कर रहे हैं। इससे कोबी को काफी दर्द हो रहा है और उसका मन कुछ भी खाने-पीने में नहीं लग रहा है।"

"डॉ. सिंह, मुझे आप पर पूरा भरोसा है। जो कुछ भी आप कर सकते हैं वह करें। पैसों की चिंता मत करो। यही मेरा सब कुछ है। मैं इसके लिए कुछ भी कर सकता हूँ। कृपा करके आप बस इसे ठीक कर दीजिए।" वह ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था।

"ठीक है। डेविड। मैं अपनी हर संभव कोशिश करूँगा। कोबी को कुछ दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती करना पड़ेगा।" मैंने डेविड को बताया और उसने जल्दी से काग़ज़ात पर हस्ताक्षर कर दिए। एक बार भी पैसों की ओर देखे बिना कि कितना ख़र्च होने वाला है। कोबी दो दिन तक अस्पताल में भर्ती रहा और डेविड भी लगभग पूरे समय उसके पास ही रहा। उसने पल-पल की ख़बर रखी और बताया कि कोबी के स्वस्थ होने पर सभी को बहुत ख़ुशी से मिला और मुस्कराते हुए उसे घर ले गया। मेरे मोबाइल फ़ोन की घंटी ने मेरी सुध तोड़ी। मैं स्क्रीन की ओर देखता हूँ। इंडिया का नंबर फ्लैश होता देख मैं तुरंत अंदाज़ा लगा लेता हूँ कि यह गाँव वाले चाचा जी का फ़ोन होगा। वे पिछले दो-तीन दिनों से लगातार फ़ोन कर रहे हैं।

"भतीजे, हो सकता है तुम्हें आना पड़े। भाई की हालत ज़्यादा ख़राब है। दाखिल करवाना पड़ा। हैं तो होश में, लेकिन तुम्हारे बिना अब नहीं चल पाएगा।" चाचा ने आज सुबह ही फ़ोन करके बताया तो मेरा दिमाग़ चक्कर सा खा गया।

"अगर चाचा मेरे बिना काम चला लो तो...बहुत काम है। अस्पताल को बंद भी नहीं किया जा सकता और दूसरा डॉक्टर ढूँढ़ने में कुछ समय लगेगा। सब कुछ एक साथ छोड़ देना बहुत मुश्किल है।" मैंने अपनी मजबूरी जाहिर की।

"लेकिन भतीजे, यहाँ भी फसल की कटाई का ज़ोर है। मैं हर जगह नहीं रह सकता। मण्डी में रहना भी ज़रूरी है। तुझे काम के कसाव का पता ही है। अस्पताल में भी भाई के पास रहने के लिए कोई न कोई तो चाहिए।" चाचा ने अपनी मजबूरी बताई।

"चलो करता हूँ मैं कुछ, फिर बताता हूँ आपको।" कहकर मैंने फ़ोन रख दिया। पहली बार मुझे एक परिवार की इकलौती संतान होने का दु:ख हुआ था। अकेला होने के कारण ही ऐसी स्थितियों में फँस गया था। इस समय आसपास के रिश्तेदारी में से अपने केवल नाम मात्र ही थे। एक-दो दिन की बात होती तो पापा के साथ अस्पताल में कोई न कोई रुक जाता, लेकिन चाचा कह रहा था कि हालत ज़्यादा ख़राब है, समय लग सकता है। वरना उसने फ़ोन भी नहीं करना था। थोड़ा बहुत तो पापा अक्सर ही बीमार हो जाते थे और चाचा ख़ुद ही सँभाल लेता था। वैसे चाचा भी क्या करें? जितना वह कर रहा था, उतना भी आजकल कोई किसी के लिए नहीं करता। लेकिन उनकी भी अपनी मजबूरियाँ हैं।

डॉक्टर सिंह! डेविड कोबी को साथ लेकर आ गया है। मैंने उसे कमरा नंबर दो में बिठा दिया। नर्स ने आ कर मेरे ऑफ़िस का दरवाज़ा खटखटा कर मुझसे कहा।

"ओ के।" कह कर मैं कमरा नंबर दो की ओर चल पड़ा।

"नमस्ते डेविड। क्या हाल है?" मैं उससे गले लग कर मिला।

"पूछने के लिए धन्यवाद। लेकिन मेरे बच्चे की हालत बहुत ख़राब है। कुछ दिन तक तो ठीक रहा। लेकिन अब वह फिर से पहले की तरह बीमार हो गया है। कुछ खाता-पीता नहीं। न ही पहले जैसा खेलता है। सारा दिन बस वहीं निढाल पड़ा रहता है। कभी-कभी वह रोने लगता है, जैसे उसे दर्द हो रहा हो। मैं इसे लेकर बहुत चिंतित हूँ। कृपया कुछ कीजिए डॉ. सिंह।" रुँधे गले से उसने एक ही साँस में सब कुछ कह दिया। कोबी को देखकर मुझे भी चिंता हो रही थी। वह सचमुच बहुत बीमार लग रहा था। आज वह हमेशा की तरह उठ कर मेरे पास नहीं आया था। मेरे पुचकारने पर भी वह टस से मस नहीं हुआ। उसकी पूँछ भी कोई हरकत नहीं थी कर रही। वह फर्श पर लेटा हुआ आँखें फाड़े मुझे घूर रहा था।

"कोई बात नहीं डेविड। हम अभी देख लेते हैं। सबसे पहले, उसके रक्त परीक्षण को दोहराया जाना होगा ताकि यह पता लग सके कि उसके गुर्दों का क्या हाल है। क्या वे पहले जैसे हैं, या वे पहले से बेहतर हैं, या फिर बिल्कुल ही ख़राब हो चुके हैं?"

मेरी बात सुनकर उसकी आँखें भर आईं। मानों वह आने वाले समय का अनुमान लगा रहा हो।

"जैसा आप कहें, डॉक्टर सिंह," कह कर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया। मैंने नर्स से कोबी का रक्त परीक्षण करने के लिए कहा और वापस अपने कार्यालय की कुर्सी पर बैठ गया। डेविड और कोबी के बारे में सोचने लगता हूँ। कितना गहरा रिश्ता है उन दोनों का। वे एक-दूसरे से पूरी दुनिया से भी ज़्यादा प्यार करते हैं। करें भी क्यों न? दोनों ने हमेशा एक-दूसरे का साथ दिया है। दोनों ने हर मुश्किल और आसान वक़्त में एक दूसरे का सहारा बने हैं दोनों। डेविड बताया करता था कि वह कोबी से इतना प्यार क्यों करता है। जब दुनिया के हर रिश्ते ने उनसे नाता तोड़ लिया था तब कोबी ही था जो उसके साथ खड़ा रहा था। वह उसे छोटे से को घर लाया था, अपने बेटे के पाँचवें जन्मदिन पर उसके लिए उपहार। सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था। उनके जीवन में ख़ुशी ही ख़ुशी थी। ख़ूबसूरत पत्नी, एक बेटा, अच्छी नौकरी और अपना घर। वह बहुत शांतिपूर्ण जीवन का आनंद ले रहा था। अचानक उनके जीवन में एक घटना घटी और सब कुछ उलट-पुलट हो गया। जिस कंपनी में वह काम करता था, वहाँ चोरी हो गई। चोरी के समय डेविड ही मैनेजर था। कंपनी ने जाँच की और डेविड को लापरवाही का दोषी पाया और उसे नौकरी से निकाल दिया। नौकरी से निकाले जाने से वह टूट गए। दूसरी नौकरी की तलाश की। लेकिन मंदी के कारण कोई ढंग की नौकरी नहीं मिल रही थी। हर बार निराशा हाथ लगी। उसका मन डोल गया। वह ख़ूब शराब पीने लगा। मकान की किश्तें टूट गईं। कार मालिक ने भी नोटिस भेजना शुरू कर दिया था। घर में कलह दिन-ब-दिन बढ़ती गई और आख़िरकार एक दिन उसकी पत्नी भी उसे छोड़कर चली गई। वह अपने बच्चे के साथ अपनी किसी सहेली के साथ रहने लग गई। जब उसका बेटा चलने लगा तो उसने कोबी के गले में पट्टा डाला और उसे अपने

साथ चलने का इशारा किया, तो वह दौड़कर डेविड के पैरों से लिपट गया। लड़के ने बहुत पुचकारा, लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। डेविड उसका प्यार देखकर ख़ुश हुआ और उस दिन से कोबी को ही अपना सब कुछ मान लिया। उसने तमाम सामाजिक रिश्तों को ठुकराकर कोबी को अपनी ज़िंदगी का हिस्सा बना लिया। यह उसका प्यार ही था जिसने उसे दोबारा अपने पैरों पर खड़ा होने का हौसला और हिम्मत दी। पहले उसने तीन-चार साल तक टैक्सी चलाई। कुछ पैसे बचाने के बाद उसने अपनी टैक्सी ले ली। फिर एक को पाँच होने में देर नहीं लगी। अब वह बहुत ख़ुश था। उसके पास किसी चीज़ की कमी नहीं थी। दोनों एक दूसरे के साथ ज़िंदगी का लुत्फ़ उठा रहे हैं।

"डॉक्टर सिंह, कोबी की ब्लड रिपोर्ट आ गई।" कहते हुए नर्स रिपोर्ट मेरी मेज़ पर रख गई।

रिपोर्ट देखने के बाद मेरा मन और उदास हो गया। वही हुआ जिसका डर था। कोबी के गुर्दे पूरी तरह ख़त्म हो चुके थे। ऐसी हालत में उनका ठीक होना संभव नहीं था। यह एक प्राकृतिक घटना थी। उम्र के कारण उसके गुर्दे बूढ़े हो गए थे। किसी भी दवाई से इनको पहले जैसा नहीं किया जा सकता। उसकी मृत्यु निकट लग रही थी। यह बात डेविड को बताना मेरे लिए सबसे कठिन बात थी। ऐसे में किसी दूसरे मरीज़ के बारे में मैं बड़ी आसानी से लोगों को सच्चाई बता देता था। लेकिन मैं डेविड और कोबी के रिश्ते को अच्छी तरह जानता और समझता था। ये ख़बर उसे तोड़ देगी। पता नहीं वह अपने आप को कैसे सँभालेगा। लेकिन आज यह बात हमें उसको हर हाल में बतानी पड़ेगी, क्योंकि कोबी दर्द से मर रहा था। उसे मौत का टीका लगाकर इस दर्द से मुक्ति दिलाने का समय आ गया था। मानव चिकित्सा में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जहाँ किसी लाइलाज रोग के साथ बुरे हालात में जूझ रहे रोगी को उसकी सहमति से इच्छा-मृत्यु दी जा सके। लेकिन पशु चिकित्सा में ऐसा हो सकता है। वर्ना डॉक्टर होने के नाते कानूनी तौर पर आपको ऐसा निर्णय लेना पड़ता है। जब कोई जानवर अत्यधिक दर्द से पीड़ित अवस्था में हो और उसका कोई इलाज संभव न हो। ऐसे मामले में, मालिक की सहमति से, जानवर को घातक इंजेक्शन द्वारा इच्छा-मृत्यु दी जा सकती है।

मेरे अनुसार आज कोबी की भी यही स्थिति थी। भारी कदमों से रिपोर्ट हाथ में थामे मैं कमरा नंबर दो की ओर चल दिया। मुझे देखकर डेविड ने मेरा चेहरा पढ़ने की कोशिश की।

"क्या रिपोर्टें सही नहीं आईं, डॉक्टर सिंह?" उसकी आँखें भरी हुई थीं और शब्द भी आर्द्र थे।

"नहीं मेरे दोस्त।" मैंने उसका हाथ ज़ोर से पकड़ लिया, "कोबी का अन्तिम समय आ गया है। उसके गुर्दे पूरी तरह से फेल हो गए है। अब तो भगवान् भी उसे नहीं बचा सकते। सुनने में यह ख़बर बुरी है, लेकिन सच्चाई से भागा नहीं जा सकता।" वह एकदम स्तब्ध हो गया। वह कोबी को अपनी आलिंगन में लेकर बैठ गया। जैसे ही उसने अपनी आँखें बंद की, भरे हुए आँसू बह निकले। उसके हाथ-पैर काँप रहे थे। कमरे में मातम छा गया। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने आँखें खोलीं और मन पक्का करके कहा, "आपकी क्या राय है डॉक्टर? आपका निर्णय मुझे स्वीकार होगा।"

"देखो डेविड! यह बात दिन उजाले तरह स्पष्ट है कि कोबी के पास ज़्यादा समय नहीं बचा है। अगर हम इसे दवाइयाँ भी दे देगें तो यह एक आधे दिन तक और जीवित रह सकेगा, लेकिन तड़पता रहेगा। ऐसे में हमें इसकी बेहतरी के लिए इसे टीका लगाकर दर्द रहित मौत दे देनी चाहिए।" मैं बड़ी मुश्किल से अपनी बात पूरी कर पाया। मेरी बात सुनकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने उसे आलिंगन में ले लिया। उनकी आँखों से आँसू नहीं रुक रहे थे। पाँच-सात मिनट के बाद वह कुछ सहज हुआ तब कह सका, "यह मेरे लिए बहुत बुरा समय है, डॉक्टर।"

मैंने अपने जीवन का बढ़िया समय इसके साथ बिताया है और इसके बिना जीने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन मैं इसकी हालत समझता हूँ। मैं स्वार्थी नहीं हो सकता। इसने मेरे लिए पहले ही बहुत कुछ किया है। साथ ही यह जीवन भर मेरे साथ नहीं रह सकता, यह प्रकृति का नियम है और मैं इसे चुनौती नहीं दे सकता। मैं आपसे सहमत हूँ और अपने प्यारे बच्चे को अब और पीड़ित नहीं देख सकता। कृपया इसे एक घातक टीका लगा दें और दर्द से राहत दें।"

"तुम इसके साथ कुछ और समय बिता लो, डेविड। जब तुम तैयार हो जाओ तो मैं इसको टीका लगा दूँगा।" इतना कहकर मैं अपने ऑफ़िस में आ गया। एक ग्लास पानी पिया। सिर भारी-सा महसूस हुआ। कुर्सी पर बैठते ही कब आँखें बंद हो गई, पता ही नहीं चला। थोड़ी देर आराम करने की कोशिश करता हूँ, लेकिन दिल और दिमाग़ की बेचैनी ने सब कुछ अस्त-व्यस्त कर रखा है। चाचा के फ़ोन के बारे में सोचते ही पापा का चेहरा आँखों के सामने आ गया। पापा के बारे में सोचने लगता हूँ। कितना कुछ किया पापा ने मेरे लिए। उन्होंने अपनी परवाह किए बिना मुझे पाला था। हर जायज़ और कभी नाजायज़ माँग भी पूरी की थी।

मुझे याद है मैं तब चौथी-पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था। माँ अचानक बीमार पड़ गई। बुखार चढ़ता, उतरता और फिर चढ़ जाता। ऐसा कितने दिनों तक चलता रहा? गाँव के डॉक्टर से फ़र्क़ न देखकर बापू माँ को शहर ले गए। वहाँ भी कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा। डॉक्टर की कोई दवा काम नहीं थी कर रही। दो एक सप्ताह में माँ इसी तरह बीमारी से लड़ते लड़ते हार गई और हम दोनों को अकेला छोड़ इस दुनिया से चली गई। लेकिन पिता ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अकेले ही जीवन की गाड़ी चलाने का फैसला किया। रिश्तेदारों ने उस पर दूसरी शादी करने का बहुत दबाव डाला। पापा के रिश्ता लिए कोई न कोई आया रहता था। लेकिन वह माँ का लाल टस से मस नहीं हुआ। अपनी धुन का पक्का रहा। एक ही रट लगाए रहा।

"यदि मैने दूसरा विवाह कर लिया तो यह छोटी सी जान दर-दर भटकेगी।" वह मुझे अपने आगोश में ले लेता, "क्या पता बेगानी औरत इसके साथ कैसा व्यवहार करेगी।"

सौतेली आख़िर सौतेली ही होती हैं। मैंने तो इसी के सहारे अपनी बाक़ी ज़िंदगी काट लेनी है। इसे पाल पोस कर किसी किनारे लगा दूँ, मेरा जीवन तो सफल समझो। साथ ही पालो ने मरने से पहले वचन लिया था कि मैं उसके लाल को दर दर भटकने नहीं दूँगा, उसका वचन निभाना भी मेरा धर्म है।" पापा का गला रुँध गया। तब से ही मैं उसका सब कुछ बन गया। अपना शेष जीवन उसने मेरे नाम कर दिया। ख़ुद ही घर का चूल्हा चौका करता। वह मुझे तैयार करके स्कूल भेजते और ख़ुद खेतों में चले जाते। हम दोनों एक-दूसरे के सहारे ज़िंदगी की सीढ़ियाँ चढ़ते रहे। और जब यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी कर गाँव लौटा तो पापा का चाव देखे नहीं था बन रहा। वह माँ का नाम लेकर कहते, "देख पालो, तुम्हारा लाल आज बड़ा डॉक्टर बन गया है।" मैंने तुम्हारी बात पूरी कर दी है। फिर जब मैंने पापा को किरण के बारे में बताया तो वे और भी ख़ुश हो गए।

"पापा, मेरे साथ एक लड़की पढ़ती थी। हम दोनों एक दूसरे को बहुत पसंद करते हैं।" मैंने एक दिन बात की थी।

"तभी महीना-महीना भर पापा की खैर ख़बर नहीं था लेता।" पापा हँसे थे, "तेरी पसंद ही मेरी पसंद है शेरा। तू अता पता दे लड़की के घर का, हम आज ही बात चला लेते हैं।"

लेकिन जब मैंने उन्हें बताया कि किरण एक अमेरिकी नागरिक है और शादी के बाद मैं भी उसके साथ वहीं चला जाऊँगा तो बापू की हँसी फिर ओझल हो गई। मेरी इच्छा पूरी करने के लिए उसने हाँ तो कर दी लेकिन कभी-कभी कह देते, "शेरा तू भी मुझे अपनी माँ की तरह अकेला छोड़ जाएगा।"

मैं उन्हें बहुत समझाता, कि पापा, मैं आपको अकेला नहीं छोड़ूँगा। जाते ही मैं आपको अपने पास बुला लूँगा। यह सुनकर वह फिर ख़ुश हो जाते। शादी के बाद अमेरिका आने पर मैंने पापा को विज़िटर वीज़ा पर अपने पास बुला लिया। लेकिन यहाँ आकर उनका मन बिल्कुल भी न लगा और पंद्रह दिन बाद उन्होंने वापसी का टिकट ख़रीदा और गाँव लौट गए और फिर कभी इधर का मुँह नहीं किया। मैं बहुत यत्न करता, लेकिन वह एक ही बात कहते, " गाँव में रहता हूँ तो मुझे लगता है मैं तेरी माँ के पास हूँ। वहाँ जा कर मैं उससे दूर हो जाता हूँ। फिर तो साल दो साल बाद मैं ही पापा के पास चक्कर लगा जाता था। जितना समय मैं उनके पास होता, वह पूरे स्वस्थ रहते। मेरे वापस लौटते ही अस्वस्था शुरू हो जाती। चाचा आदि सब सँभाल लिया करते। पर इस बार शायद बात ज़्यादा बढ़ गई थी। तभी वे बार बार फ़ोन कर रहे थे।

लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? तुरंत अस्पताल छोड़ने से बहुत नुकसान हो सकता था। और अपने स्थान पर दूसरे डॉक्टर की व्यवस्था करने में कुछ समय लगता है।

"डाक्टर सिंह! डेविड सेड ही इज रेडी फोर यू।" नर्स कोबी को लगने वाला टीका मुझे पकड़ा गई। उठ कर कमरा नंबर दो की ओर बढ़ जाता हूँ, जहाँ डेविड कोबी को अपनी गोद में लिए फर्श पर बैठा है। वह भी एक छोटे बच्चे की तरह उसकी गोद में आराम से लेटा हुआ है। मेरे हाथ में सिरिंज देखकर डेविड चौंक गया। उसने कोबी को अपनी बाहों में भर लिया। वह बार-बार उसके माथे को चूम रहा था। मैं चुपचाप उनके पास बैठ गया।

"ओ के डॉक्टर सिंह। लेट्स डू इट।" ये शब्द बड़ी मुश्किल से उसके मुख से निकले और वह फिर रोने लगा।

भरे मन से मैंने कोबी को टीका लगाया और वह पलक झपकते ही सदा की नींद सो गया। डेविड का रोना देखा नहीं जा रहा था। मैंने उसे आँख के इशारे से बताया कि कोबी अब इस दुनिया में नहीं रहा।

"आई वांट टू स्पैंड सम मोर टाइम विद माय चाइल्ड।" वह अभी भी रो रहा था।

"टेक योर टाइम माय फ्रैंड।" मैंने अपना हाथ उसके कंधे पर रखा और वापस अपने कमरे में आ कर कुर्सी पर बैठ गया।

मेरा दिमाग़ तेज़ी से फड़क रहा था। डेविड और कोबी का अलगाव मुझसे बर्दाश्त नहीं था हो रहा। दूसरे दिल और दिमाग़ की कशमकश भी पहले के जैसे जारी थी। फ़ोन उठा कर चाचा का छोड़ा हुआ वॉइस मैसेज सुनता हूँ।

"भतीजे तू जल्दी आ जा। भाई की हालत ज़्यादा ठीक नहीं है।" उसने दो टूक बात निबटाई थी। दिल और भी डर गया। ऐसा लग रहा है मानों मैं कोबी को नहीं बल्कि पापा को टीका लगा कर आया होऊँ। वह मेरे बिना तड़प रहे हैं और मैं उन्हे तड़पने दे रहा हूँ। क्या पापा कोबी से भी गए गुज़रे थे ? क्या वह कुत्ते से भी बद्तर मौत मरेंगे। दिल अब भी ज़ोर दे रहा था। नहीं नहीं मुझे उनके पास जाना चाहिए। उनकी क़ुर्बानी का मोल अदा करना चाहिए। मुझे ख़ुदग़र्ज़ नहीं बनना चाहिए। लेकिन दिमाग़ इन सब बातों को नकार रहा था। वह कल के लिए रो रहा था। कभी वह अपनी पत्नी और बच्चों का वास्ता और कभी बिज़नेस में असफलता का वास्ता देकर रास्ता रोके खड़ा था।

कमरा नंबर दो से निकलकर डेविड बाहर की ओर जा रहा है। उसे देखकर दिल तेज़ी से धड़कने लगता है। मस्तिष्क की गतिविधियाँ और भी तेज़ हो जाती हैं। मैं झट से उठ कर बाहर निकलता हूँ।

"कैंसिल ऑल द अपॉइंटमेंट्स जेसिका। वी आर क्लोजिंग हॉस्पिटल फॉर कपल ऑफ वीकस।" मैंने कमरे में से निकलते हुए कहा, "आई हैव टू गो।"

"क्या आप होश में हैं डॉ. सिंह? अस्पताल बंद करने से बहुत बड़ा नुक़्सान होगा।" जेसिका ने चौंकते हुए कहा।

"मुझे अब तक होश नहीं था, बस अभी आया है।" मैंने कहा और दरवाज़े से बाहर निकल आया।

कार स्टार्ट करके मैं इंडिया ट्रेवल्स की ओर चल दिया।

"मैं आ रहा हूँ पापा। अब आप कभी अकेले नहीं रहेंगे। आप कोबी से भी गए गुज़रे नहीं हो सकते और मैं डेविड बन कर दिखाऊँगा।"

अब दिल भी ख़ुश था और दिमाग़ का फड़कना भी कम हो गया था।

000

टीचर

विनीता कुमार

विनीता कुमार
8671 फॉस्टर लें, एपैक्स, नॉर्थ
कैरोलाइना-27539, यू एस ए
मोबाइल-919-771-6525
ईमेल- vinitatweb@gmail.com

क्लास में घूम-घूम कर एक-एक की कॉपियाँ पर निगाह करते हुए ध्यान फिर सायरा पर गया। वह अभी भी पेन को हाथ से उलट-पलट रही थी। घने लंबे बालों के पीछे चेहरे को छिपा अपने भावों को अपने आप से ही व्यक्त कर रही थी। पर मुझे सिर्फ अनादर दिख रहा था। आज ज़रूर इसके माँ-बाप से बात करनी है, मैं मन ही मन निश्चय कर चुकी थी। घंटी बजी सबने अपने-अपने पेपर्स टेबल पर रखे। सायरा बैग में लैपटॉप को किसी तरह ठूस कर तेज़ी से बिना मुझे देखे ही निकल गई। अब क्या! दूसरा कॉफ़ी का कप भर कर मैंने फ़ोन नंबर्स की लिस्ट निकाली और जुट गई इन टीनएजर्स के माता-पिता को उनके बच्चों का वह चेहरा दिखाने जो सिवाय उनके सब देख रहे थे।

जैक के माता-पिता दुखी हो गए कि उनका प्यारा फुटबॉल स्टार बेटा शायद साइंस में फेल हो जाएगा। वेन्डी के माता-पिता को पता था कि आज फिर वह क्लास में नहीं आई। न जाने ये बच्चे किस दुनिया में रहते हैं मैंने सोचा। इतने में ही मैं इमोशनली थक चुकी थी। पर सायरा का केस अभी बाकी था। कितनी ब्रिलियंट लड़की क्लास डिबेट में प्राकृतिक नेता के रूप में उभरी थी सब दंग रह गए थे, और आज यह कतराता हुआ स्वरूप। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

दस नंबर प्रेस किये, एक ही घंटी में किसी ने फ़ोन उठाया और आवाज़ आई "प्रेस्बेटेरियन चर्च, लिसा बोल रही हूँ आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?"

अरे यह क्या ! ज़रूर ग़लत नंबर है फिर भी अगर स्कूल में दिया है तो पूछ ही लेती हूँ। अपनी आवाज़ की उलझनों को लाख कोशिशों के बाद भी मैं छुपा नहीं पा रही थी। मन की अजीब सी स्थिति थी। ऐसी उहापोह की स्थिति कम ही होती है।

"मैंने सायरा जोंस के लिए फ़ोन किया था, माउंटेनविल्ल स्कूल में आपका नंबर उसके गार्डियन के स्थान पर लिखा हैं ? "

"हाँ यह ठीक है सायरा यहाँ रहती है।"

"चर्च में ? पर मुझे उसके माता-पिता या अभिभावक से बात करनी थी ? वह पढ़ने में होशियार है पर कुछ दिनों से काम करना बंद कर चुकी है।"

"हम यहाँ उसको दो घंटे का इंटरनेट टाइम देते हैं कि वह काम कर ले।" लिसा बोली।

दो घंटे टाइम ! मैंने मन ही मन सोचा यह क्या बकवास है! अचानक लगा इससे बात करके कोई फ़ायदा नहीं हैं। मैंने धन्यवाद करते हुए फ़ोन बंद कर दिया। इससे भी बदतर स्थितियों को

मैंने सँभाला हुआ है। फिर इतनी बेचैनी क्यों ? सोच ही रही थी कि अब क्या करूँ ? तभी क्लास के दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। जब से स्कूल शूटिंग्स की वारदातें बढ़ी हैं, हम लोग दरवाज़े बंद ही रखते हैं। धीरे से उठ कर दरवाज़ा खोला।

"हाई" सायरा धीरे से मुस्कराते हुए बोली।

मैंने गहरी साँस ली और उसे बैठने का संकेत दिया।

"दरवाज़ा बंद कर दूँ आपसे कुछ व्यक्तिगत बात करनी थी।"

"ठीक है" मैंने प्रश्न भरी नज़रों से उसको देखा। वह बैठी नहीं स्मार्ट बोर्ड का पेन उठा कर बोली- "मैंने माँ का घर छोड़ दिया है अपने छोटे भाई के साथ चर्च में रहती हूँ।"

"पर सायरा यह तो एक घंटा दूर है और तुम गाड़ी भी नहीं चलाती हो फिर आती-जाती कैसे हो।" मेरे मन में हज़ार सवाल उछाले मार रहे थे।

"हाँ साढ़े चार बजे सवेरे निकलती हूँ। चर्च का एक कर्मचारी दो दिन इस तरफ़ आते हुए छोड़ देता है, इसलिए बाक़ी दिन नहीं आ पाती।" बाप रे यह क्या सुन रही हूँ। कहीं चेहरे पर भाव तो नहीं आ रहे। सचेत हो जाती हूँ।

"पर क्यों सारा?"

उसने मेरे प्रश्न को नज़रअंदाज़ कर दिया बोली- "सोशल वर्कर को पता है, कुछ रास्ता निकल आएगा।"

फिर चमकीली आँखों में ज़बरदस्ती मुस्कान लाकर बोली- "मैं वेबकुएस्ट कल ख़तम करके दे दूँ, सॉरी लेट हो गई हूँ।"

उसके जाते ही मैं सोशल वर्कर के पास भागी। उसका दरवाज़ा बंद था और वह अंदर एक लड़के से बात कर रही थी, मुझे देख हाथ हिला कर रुकने का संकेत दिया।

जैसे ही वह बाहर निकली मैं लगभग चिल्लाते हुए बोली "सायरा जोंस ?"

वह धीरे से मुस्करा कर बोली "कहानी ही है गीता, पर मैं अभी तुम्हें नहीं बता पाऊँगी।"

दस मिनट अपनी भड़ास निकाल कर मैं वापस आ गई पर दिमाग़ में सायरा ही घूम रही थी। "चर्च क्यों ?"

"अभी 16 की ही तो है !"

दो दिन बीते और मैंने मन बना लिया था कि कुछ भी हो, कैसे भी हो, मैं सायरा को फेल नहीं होने दूँगी, यह जानते हुए भी की वह काम नहीं कर पाएगी।

एक दिन लंच में मुझे देख कर बोली "आपसे बात करनी थी।"

"ज़रूर आ जाओ" मैंने दरवाज़ा खोला लाइट जला कर एक चेयर उसकी तरफ खिसका दी। मेरी आँखों में देख कर बोली- "मेरी माँ के बॉय फ्रेंड ने मुझे एब्यूज़ किया और मेरी माँ ने मुझे घर से निकल दिया। यह कह कर कि मैं झूठ बोल रही हूँ।"

"मेरा भाई 13 साल का है, मैं उसे ले कर चर्च चली गई। उन्होंने हमें जगह दी पर वह छह बजे के बाद लाइट बंद कर देते हैं तो हम पढ़ नहीं सकते।"

भावहीन, शब्दविहीन, अंदर तक सुन्न पड़ गई मैं। न जाने मन क्या सोच रहा था, पर मैं कुछ बोल नहीं पाई।

"कोई बात नहीं जो क्लास में हो पाए वह कर देना। काम करती हो ?"

"नहीं, मगर करना ज़रूरी है पर गाड़ी नहीं चलाती तो आने-जाने की परेशानी है, ख़ैर मैं चलती हूँ मिस्स शर्मा सोचा आपको बता दूँ।"

मैं रोज़ सायरा से बात करने का बहाना ढूँढ़ने लगी। पूरे क्लास के लिए पिज़्ज़ा आर्डर कर देती, एक बॉक्स उसे थमा देती, इस डर से कि कहीं उसके स्वाभिमान को ठेस न लगे।

एक सोमवार की दोपहर दौड़ी हुई मेरे पास आई, "पता है, मेरी दादी हमें रखने को तैयार हैं, परसों मेरी कोर्ट डेट है, अगर वह अडॉप्ट कर लेगी तो मैं रोज़ स्कूल आ पाऊँगी। हमारा घर यहाँ से दस मिनट पर ही हैं।" वह ज़ोर से हँस रही थी।

मुझे संतोष हुआ। छुट्टी के बाद मैं फिर से सोशल वर्कर के पास ख़बर देने गई तो सुना "गीता, उसकी दादी उन्हें रखना नहीं चाहती, बच्चों से छिपा रही है। कोर्ट के पेपर्स फाइल ही नहीं किये हैं।"

यह तो हद है...मैं रो क्यों नहीं पा रही।

हफ्ते और महीना बीत गया। कोर्ट की तारीख़ें आती और जाती रही। आशा पर ज़िंदगी चलाते-चलाते सायरा और मैं हर बुधवार एक दूसरे के साथ लंच करते रहे।

फ़ाइनल एग्ज़ाम ख़तम होने की घंटी बजी और सायरा बिना मुझे देखे ही निकल गई।

मैंने मन के उतर चढ़ाव को प्रोफेशनलिज़्म का नाम दे कर निकाल फेंका। सायरा जोंस की याद किस कोने में दब गई थी क्या पता।

शरद ऋतु आ चुकी थी, सूखे पत्तों को चकनाचूर करती एक बार फिर मैं विद्यालय की तरफ भाग रही थी। पहली क्लास में तीस बच्चे थे। मिटोसिस और मइओसिस का फ़र्क़ गिनाते हुए नज़र पड़ी केट्टेरिन पर, जो लैपटॉप की स्क्रीन देखती हुई लिपस्टिक लगाने में पूरी तरह से मशगूल थी। ग़ुस्से से मेरा माथा ठनक गया। आँखें मिलते ही वह मुस्कराई। मैंने दरवाज़े की तरफ इशारा किया।

बाहर निकलते ही मैं व्यंग्य कर बैठी "मैं मेकअप करना नहीं सिखाती !"

आँखों में आँखें डाल कर उसने भी उसी अदा में कहा "यह क्लास मेरी थाली में खाना नहीं डालेंगी और मेकअप किए बिना मुझे काम नहीं मिलेगा।"

हलके हाथ से दरवाज़ा खोल कर मैं सीधे डॉक्यूमेंट कैमरा की तरफ़ बढ़ी "सेल डिवीज़न" बिना किसी भाव के मैं शुरू हो गई।

क्योंकि सच्चाई बस यही है...गुरु, मार्गदर्शक, शिक्षक कुछ नहीं बस विज्ञान की अध्यापिका हूँ मैं।

000

जल जलहिं समाना...

डॉ. वंदना मुकेश

किसी परिचित से फ़ोन पर बात हो रही थी। बातों-बातों में मैंने उन्हें कहा कि मैं महाकुंभ में गंगा स्नान करने जाना चाहती थी, किंतु परिस्थितिवश नहीं जा सकी। मैं और कुछ कहती इससे पहले उन्होंने भारत, हिंदू धर्म, गाँव-मोहल्ले के लोगों और सरकार पर, अंधविश्वास, फ़िज़ूलखर्ची, भीड़, अव्यवस्था और कई ऐसे आरोप लगा डाले कि उनकी बुद्धि पर मुझे तरस आ गया। इस विषय पर उनके साथ संवाद हो नहीं पाता और विवाद करने में मेरी रुचि नहीं थी अत: व्यस्तता बताते हुए विदा ली। मुझे उन पर क्रोध कदापि नहीं था। उनके विचारों में उनका अज्ञान झलक रहा था। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी' जिसकी जैसी भावना होती है, भगवान् उसे उसी रूप में दिखते हैं। अर्थात् हमारी भावनाएँ हमारे देखने के तरीक़े को प्रभावित करती हैं।

तुलसी बाबा ने मानों ऐसे ही क्षणों के लिए लिखी थी यह पंक्ति। कभी हम भय में रस्सी को सर्प समझ लेते हैं। कभी अपने धर्म और परंपरा पर, लोक की आस्था पर प्रश्न लगाने लगते हैं। दोष उनका भी नहीं हैं। लगभग हज़ार वर्षों तक लगातार विदेशी आक्रमणों और दासता ने भारतीय मानस को पूरी तरह तहस-नहस कर डाला। अंतिम ब्रह्मास्त्र के रूप में मैकॉले भारत में काले अंग्रेज़ पैदा करने में सफल रहा और अपनी ही परंपराओं को देखने का हमारा तरीक़ा बदल गया। अंग्रेज़ी राज ने भारतीय शिक्षा, पंरपराओं, आस्थाओं को ध्वस्त करने का अपना सपना पूरा किया और परिणाम यह हुआ कि हम काँटे-चम्मच से खाना खाना सीखते हुए हाथ धोना भूल गए। हैलो, हाय करते, संध्यावंदन, माता-पिता, वरिष्ठजनों को प्रणाम करना भूल गए, व्रत उपवास, संयम-नियम सबका त्याग कर दिया और 'फ़ूडी' बन गए।

उनकी, मेरी और हमारी दो-तीन पीढ़ियों की शिक्षा अंग्रेज़ी माध्यम में हुई। हमारी पीढ़ी के बहुत से लोगों ने अपने ही देश में, अपने विद्यालय में अपनी भाषा में बात करने के लिए जुर्माना भरा। भला हमें कहाँ से और कैसे मालूम होगा कि भारतीय संस्कृति की शाश्वत धारा, जो कुछ समय के लिए खण्डित भले ही हुई हो, अनादिकाल से अविच्छिन्न प्रवाहित हो रही है। मन फिर महाकुंभ की विराटता में खो गया। कुंभ अर्थात् कलश। सनातन संस्कृति में प्रत्येक शुभ अवसर पर मंगल कलश पूजन का विधान है। हम कलश में सारे देवी-देवताओं का निवास मानते हैं। तांबे के कलश के मुख में विष्णु, कंठ में शिव और आधार में ब्रह्मा जी का वास है। जल में दैवीय शक्तियों का निवास होता है। उसमें हल्दी की गाँठ अक्षत और पैसा डालते हैं। जब कलश में जल भर देते हैं तो उससे एक विद्युतीय उर्जा निकलती है, फिर मुख में आम के पत्ते डालकर ऊपर पानी भरा जटावाला नारियल रख देते हैं तो एक विशेष प्रकार की ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के जैसे वातावरण का निर्माण होता है। फिर कलश के मुख पर चारों और मौली बाँध देते हैं मानों उस उर्जा को हम प्रतीक रूप में बाँध रहे हों।

जब हम कलश की पूजा करते हैं तो वह फिर साधारण कलश न रहकर ब्रह्माण्ड का प्रतीक बन जाता है। जहाँ यह कलश एक ओर समन्वय का प्रतीक है वहीं यह इस बात का भी प्रतीक है कि हमारा मन सदैव कलश में भरे जल-सा स्वच्छ, निर्मल, शीतल, सरल, तरल, श्रद्धा से भरा रहे। जब भी हम कलश पूजन करते हैं तो हमारे चारों तरफ एक ऊर्जादायक, शांति प्रदायक सकारात्मक वातावरण निर्माण हो जाता है। प्राचीन ऋषि मुनियों ने पौराणिक कथाओं के अनुसार मनुष्य के शरीर की तुलना भी मिट्टी के कलश से की है। कलश के समान ही इस शरीर में भी प्राण रूपी जल भरा हुआ है।

कबीर दास जी ने कहा है, 'जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी फूटा कुंभ, जल

डॉ. वंदना मुकेश
35 ब्रुकहाउस, वॉलसॉल
WS5 3AE यू के
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी।'अर्थात् किस प्रकार शरीर के भीतर और शरीर के बाहर आत्मा का वास है, उस परमात्मा का रूप है। शरीर के मरने के बाद जो शरीर के भीतर की आत्मा है वह उस परमात्मा में लीन हो जाती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार घड़े के बाहर और भीतर जल है। घड़ा फूटने पर घड़े का जल कुएँ के जल में मिलकर एक हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा शरीर से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार 'यत् पिण्डे, तत् ब्रह्माण्डे, तत् ब्रह्माण्डे, यत् पिण्डे', अर्थात् जो मानव पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड है और जो ब्रह्माण्ड में है, वही मानव पिण्ड में है। कुंभ, 'घट' का सूचक है और घट शरीर का, जिसमें घट-घट व्यापी आत्मा का अमृत रस व्याप्त रहता है।

अनादिकाल से श्रद्धा और विश्वास से भरे लोग कुंभ स्नान के लिए मीलों चल कर आते हैं। इस मेले का सतत और अक्षुण्ण आयोजन सनातन धर्म के शाश्वत होने की घोषणा करता है। यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक मेला है। यही कारण है कि यूनेस्को ने इस मेले को "मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर" की सूची में शामिल किया है, जिससे कुंभ मेला की अंतर्राष्ट्रीय पहचान बढ़ी है। प्रौद्योगिकी और तकनीकी विकास ने इसे सबके लिए सुगम बना दिया। खगोल विज्ञान के अनुसार जब सूर्य और बृहस्पति ग्रह कुछ ख़ास राशियों और नक्षत्रों में होते हैं, तब कुंभ मेले का आयोजन किया जाता है। उस समय उस ग्रह-नक्षत्रों की ऐसी स्थितियाँ बनती हैं कि उस पुण्यभूमि के स्पर्श मात्र से मनुष्य के मन और शरीर में एक नई ऊर्जा का संचार होता है। ज्योतिष शास्त्र में बारह राशियों में से कुंभ एक राशि भी है। कुंभ का आध्यात्मिक अर्थ है ज्ञान का संचय करना, ज्ञान की प्राप्ति प्रकाश से होती है और कुंभ स्नान, दर्शन, पूजन से मनुष्य को आत्म-तत्व का बोध होता है। इस वर्ष 13 जनवरी से 26 फरवरी 2025 तक प्रयागराज में महाकुंभ का आयोजन हुआ, जो बारह कुंभ मेलों के पूर्ण होने पर आयोजित किया जाता है। ग्रह-नक्षत्रों का वह विशिष्ट संयोग 144 वर्षों के बाद इस वर्ष आया है।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, जब देवताओं और असुरों के मध्य अमृत के लिए समुद्र-मंथन हुआ तो इंद्र का पुत्र जयंत अमृत कलश लेकर भागा, राक्षसों ने पीछा किया, युद्ध हुआ और जयंत को स्वर्ग पहुँचने में 12 दिन लगे थे। इस युद्ध के दौरान पृथ्वी पर अमृत कलश की कुछ बूँदें छलक गई थीं। जिनमें से पहली बूँद प्रयाग में, दूसरी हरिद्वार में, तीसरी बूँद उज्जैन और चौथी नासिक में गिरी थी। इसलिए इन्हीं चार स्थानों पर कुंभ मेले का आयोजन किया जाता है। देवताओं का एक दिन पृथ्वी के एक साल के बराबर होता है। इसलिए कुंभ मेला 12 साल के अंतराल पर मनाया जाता है। पुराणों की कथा से चली आ रही कुंभ मेले की परंपरा निरंतर चली आ रही है। सारे नवग्रहों में से सूर्य, चंद्र, गुरु और शनि की भूमिका कुंभ में महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। जब अमृत कलश को लेकर देवताओं और राक्षसों के बीच युद्ध चल रहा था तब चंद्रमा ने कलश में से अमृत को गिरने से बचाया, गुरू ने कलश को छुपाया, सूर्य ने कलश को फूटने से बचाया और शनि ने इंद्र के कोप से रक्षा की। इसलिए जब इन ग्रहों का योग-संयोग एक राशि में होता है तब कुंभ मेले का आयोजन होता है।

कुंभ मेले के आयोजन का उल्लेख 602–664 ईस्वी में भारत आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने ग्रंथों में किया है। कुंभ मेला केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं है। यह हमारी आस्था का प्रतीक है। इस अद्‌भुत धार्मिक और आध्यात्मिक समागम में देश-विदेश से दर्शनार्थी, साधु-संत, आम जनता, अमीर-ग़रीब, राजा रंक सब आते हैं। यह संसार भर से आए मनुष्यों का सागर है कुछ गहन आस्था से और कुछ प्रश्नों के समाधान खोजने। वे इस विश्वास के साथ पवित्र नदियों में स्नान करने आते हैं कि उनके पाप धुल जाएँगे। उन्हें मोक्ष मिलेगा और जीवन में सफलता मिलेगी। मैं सोच रही हूँ कैसा अद्‌भुत पर्व है कि मनुष्य का मोह नहीं छूटता। लोग मोक्ष के मोह में गंगा स्नान करने आते हैं। यहाँ ख़ाली हाथ आने वाला भी यहाँ से कुछ न कुछ लेकर जाता है। हर व्यक्ति विशिष्ट अनुभवों से समृद्ध होकर जाता है। कहीं कोई कमी नहीं होती। सेवादार भोजन करवाते हैं, पानी पिलाते हैं। निरंतर भजन-कीर्तन, सत्संग प्रवचन होते रहते हैं। सात्विक और सकारात्मक वातावरण से सभी एक नई ऊर्जा का अनुभव करते हैं। हिमालय की कंदराओं से महासाधु, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, महायोगी महाकुंभ में गंगा स्नान कर अपनी उर्जा का नवीकरण करते हैं। कुंभ के कोलाहल के मध्य स्व की तलाश इसे आध्यात्मिक यात्रा बना देती है।

प्रयागराज में 10 करोड़ लोगों की व्यवस्था का भगीरथ आयोजन था यह महाकुंभ। कुंभ मेगा सिटी ! एक माह के लिए पूरा शहर बस जाता है। लेकिन एक माह बाद उसका नामोनिशान नहीं रहता। जो रह जाता है, वे हैं हमारे विशिष्ट अनुभव, हमारी अखंड आस्था और विश्वास। भारत की संस्कृति ने सदैव ही संपूर्ण विश्व के लोगों को आकर्षित किया है। एक बार फिर इस महाकुंभ के विराट आयोजन और उत्कृष्ट व्यवस्था ने विश्व भर में इसे चर्चा का विषय बना दिया है। पश्चिमी देशों में कोई आयोजन होता है तो उसका महीनों पहले से विज्ञापन किया जाता है। लेकिन जो लोक संस्कृति में जीवित है उसके लिए किसी विज्ञापन की आवश्यकता नहीं रहती। लोगों की आस्था उन्हें वहाँ खींच लाती है उनके पूर्वजन्म के संचित पुण्य कर्मों का फल उन्हें तीर्थों धार्मिक स्थलों के दर्शन का अवसर देता है। यह मोह और मोक्ष से साक्षात्कार का पर्व है। यह जागरण का पर्व है। यह मानसिक विकास का महापर्व है, यह स्व की तलाश का महापर्व है, समन्वय और समरसता का महापर्व है। यह चेतना के संस्कार का महापर्व है। नई पीढ़ी के लिए यह आर्थिक विकास, पुनर्जागरण और ज्ञान का महापर्व है। महा कुंभ मैं नहीं जा पाई, किंतु अगले पूर्ण कुंभ मेले में जाने का मन बना लिया है। मैं इसमें सशरीर स्नान भले ही नहीं कर सकी, किंतु मानस स्नान से मेरा संपूर्ण अस्तित्व आप्लावित-आल्हादित है।

000

ये जो टेंशन है

प्रेम जनमेजय

प्रेम जनमेजय
73, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-4, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063
मोबाइल-9811154440
ईमेल- premjanmejai@gmail.com

हमारे एक मित्र हैं राधेलाल। राधेलाल एक सरकारी कर्मचारी है, पत्नी भी कमाती है। दक्षिण दिल्ली में उनका अपना फ्लैट है और बच्चे भी अच्छे स्कूल में पढ़ते हैं। अच्छा स्कूल उसे कहते हैं जहाँ अच्छी यानी ऊँची फीस ली जाती है, पढ़ाई अच्छी होना ज़रूरी नहीं है। आजकल इस तरह के अच्छे स्कूलों में पढ़ाना मध्यवर्गीय परिवार की विवशता हो गई है। नहीं पढ़ाओ तो बच्चे तो बच्चे, माँ-बाप भी एक तरह की हीन-भावना से ग्रस्त रहते हैं। मोहल्ले में व्यक्ति का स्तर गिर जाता है जैसे जमुनापार रहने से स्तर गिरता है और दक्षिणी दिल्ली में रहने से ऊँचा उठ जाता है। शिक्षा और आवास की दृष्टि से राधेलाल जी का स्तर ऊँचा ही है। स्तर ऊँचा है, बॉस डाँटता नहीं है, पत्नी और बच्चे उनकी सुनते हैं, इसलिए राधेलाल जी को हमेशा ख़ुश रहना चाहिए पर वह रहते नहीं हैं। हर समय टेंशन में दिखाई देते हैं।

राधेलाल जी जब भी टेंशन में होते हैं, पानवाले तिवारी जी के यहाँ जाते हैं, सादी पत्ती का जोड़ा चबाते हैं। आज रविवार की सुबह जब मैंने उन्हें पान चबाते देखा तो मेरी टेंशन बढ़ गई। मैंने पूछा, "बहुत टेंशन में लग रहे हैं, सब ठीक-ठाक है न? आज सुबह-सुबह तिवरी जी की दुकान पर कैसे?"

राधेलाल जी ने पिच से थूका और बोले, "कहाँ ठीक-ठाक है! रूस और यूक्रेन का हाल देख रहे हैं, और उधर अमेरिका में जो ट्रंप देवता कर रहे हैं... न तो ग़ाज़ा में और न यूक्रेन में एक साल से युद्ध ख़त्म होगा... शर्मा से हज़ार-हज़ार की लगी है, चाहे तो तुम भी शर्त लगा लो।"

राधेलाल जी की टेंशन अंतर्राष्ट्रीय किस्म की है। बेचारे सुबह-सुबह अख़बार पढ़ते हैं और टेंशन में आ जाते हैं। कभी अमेरिका के ट्रंप के कारण टेंशन में होते हैं तो कभी इंग्लैंड के कीर स्टार्मर के कारण। कभी रूस के पुतिन के कारण उनका तनाव बढ़ता है और कभी फ्रांस के प्रधानमंत्री के कारण। कीर स्टार्मर के निर्णयों का प्रभाव शायद इंग्लैंड में इतना नहीं होता होगा जितना राधेलाल जी पर पड़ता है। उनकी पत्नी राशन, चीनी, गैस की टेंशन से पीड़ित रहती है और राधेलाल जी रूस, अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस आदि से पीड़ित रहते हैं।

हमने चाहे झूठ, अनैतिकता, बेईमानी, भ्रष्टाचार, चोरी-चकारी जैसे क्षेत्रों में कितनी की प्रगति की हो परंतु टेंशन के क्षेत्र में हमने अभूतपूर्व प्रगति की है। 'आ बैल मुझे मार' की जगह 'आ टेंशन तुझे पालूँ।' का मुहावरा अधिक सार्थक दिखाई देता है। तनाव जैसे एक तरह का नशा हो गया है। सारा विश्व ही इसे पालतू पिल्ले की तरह अपने साथ बाँधे घूमता है। तनाव के बिना जीवन का जैसे कोई अर्थ नहीं दिखाई देता है। डॉक्टर लाख कहें कि तनाव से दूर रहो परंतु आदमी लगातार ऐसे प्रयत्न करता है कि वह उससे चिपका रहे। जिस आदमी को टेंशन नहीं, वह तो जड़ है, मूर्ख है, अबौद्धिक है।

घर में चाहे खाने को दाने न हों, ओढ़ने को चादर न हो और चूहे भी घर में आना अपना अपमान समझते हों; परंतु टेंशन ज़रूर होती है। यहीं नहीं, जहाँ भरपूर दाने हैं, ओढ़ने को मख़मली चादरें हैं, नौ-सौ चूहे घर में दावत उड़ाते हैं, वहाँ भी टेंशन ज़ोर-शोर से विद्यमान है। यानी टेंशन अमीरी और ग़रीबी नहीं देखती है। ग़रीब को ग़रीबी की टेंशन है तो अमीर को अमीरी की और जो बीच में है उसे दोनों की है। राधेलाल जी की टेंशन राजनीतिक किस्म की है तो कपूर साहब की टेंशन खिलाड़ी किस्म की है। कपूर साहब कॉलेज के जमाने से क्रिकेट के शौकीन रहे हैं। कभी हाथ में बल्ला पकड़ा नहीं, परंतु किसी बैट्समैन को ढेरों सुझाव दे सकते हैं। आस्ट्रेलिया में खेल रहे श्रीकांत से रन नहीं बन रहे हों तो इतनी टेंशन उसे नहीं होती होगी जितनी कपूर साहब को होती है। बेचारे कपूर साहब टी.वी. के सामने बैठे अपनी क्षमतानुसार श्रीकांत

को बैटिंग की बारीकियाँ समझाते रहते हैं। भारत हारने के कगार पर खड़ा हो तो कपूर साहब का ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। उधर भारतीय खिलाड़ी आउट होते हैं, इधर कपूर साहब के कमरे में चक्कर लगने शुरू हो जाते हैं। कई तरह के टोने-टोटके करते हैं, कभी टी.वी. बंद करते हैं, कभी बिस्कुट खाते हैं यानी क्या-क्या नहीं करते हैं परंतु भारतीय टीम को कहाँ परवाह है कपूर साहब की टेंशन की! मैच ख़त्म होते-होते कपूर साहब का ब्लड प्रेशर महँगाई की तरह चढ़कर चरम सीमा पर पहुँच चुका होता है। पत्नी सिर दबाती है, नींद की गोलियाँ खिलाती है, तब कहीं जाकर कपूर साहब अगला मैच देखने के योग्य होते हैं।

अजीब विडंबना है, इस देश में कुछ लोग क्रिकेट की टेंशन बनाते हैं जबकि लाखों लोग रोज़ी-रोटी के खेल में ज़िंदगी को दाँव पर लगाए बैठे हैं। आधुनिक युग को टेंशन-युग कहना अधिक उचित होगा। तनाव का एक ऐसा वातावरण चारों ओर से हमारी नसों में घुस गया है बिना तनाव के जीवन ही नीरस लगने लगता है। बिना धक्के के बस में बैठने को सीट मिल जाए, यात्रा सुखद हो तो मज़ा ही नहीं आता है।

कुछ लोग तो टेंशन न होने की टेंशन पाले घूमते हैं। हमारे एक मित्र है घनश्याम जौली। बेचारे भोर होते ही टेंशन का इंतज़ार करना शुरू कर देते हैं। सुबह से इधर-उधर फ़ोन करके मित्रों, सगे-संबंधियों का हाल-चाल पूछते हैं। जो अपना हाल-चाल ठीक बताता है, जौली साहब को वह बिलकुल नहीं जँचता है परंतु जो टेलीफ़ोन पर अपनी टेंशन जौली साहब को दे देता है वह उनका आत्मीय हो जाता है। कोई लगता होगा गुस्से में सुंदर, हमारे घनश्याम तो टेंशन में सुंदर लगते हैं। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें और बड़ी हो जाती हैं और चेहरा तनाव में खिंचकर जवान हो जाता है। घनश्याम जौली का यह टेंशन-प्रेम एक दिन सड़क पर ला छोड़ेगा और वह हाथ में एक कटोरा लिए गाते फिरेंगे-दे दे, अल्लाह के नाम पर टेंशन दे, दे इंटरनेशनल फ़कीर आए हैं, एक टेंशन का सवाल है बाबा, चाहे छोटी ही हो।"

घनश्याम जौली जैसे लोग दूसरों की टेंशन पालने के शौकीन हैं। तो सतीश भाटिया जैसे टेंशन का उपयोग अपने बचाव के लिए करते हैं। किसी ने कुछ कहा तो ऐसे टेंस दिखाई देते हैं कि सामनेवाला माफ़ी की मुद्रा में आ जाता है। ऐसे लोग टेंस होने का अभिनय करते हैं और अपने अभिनय से दूसरों को आक्रांत करते हैं। ऐसे लोगों के लिए टेंशन एक बहाना होती है। अपना काम करवाना हो तो वह ऐसे टेंस नज़र आते हैं जैसे सारे जहान का दर्द उनके जिगर में समा गया हो, और यदि आपका काम हो और न करना हो तब भी ऐसे टेंस नज़र आएँगे जैसे सब कुछ लुटाकर होश में नहीं आ पाए हैं।

तनाव से मुक्त होने के लिए लोग तरह-तरह की नौटंकियाँ भी करते हैं। किसी का तनाव सिगरेट पीने से दूर होता है और किसी का शराब पीने से, यह दीगर बात है जब डॉक्टर बताता है कि इनके पीने से क्या बीमारी होती है तो एक नई तरह की टेंशन शुरू हो जाती है। राधेलाल जी सादी पत्ती का पान खाकर टेंशन दूर करते हैं तो कपूर साहब नींबू पानी पीकर दूर करते हैं। घनश्याम जौली जैसे लोग टेंशन न होने की टेंशन को टेंशन पालकर दूर करते हैं। यानी ज़हर को ज़हर से काटने में विश्वास करते हैं।

टेंशन किसी अज्ञात/अलक्ष्य ईश्वर से कम नहीं है। जैसे वह दिखाई नहीं देता है पर है, वैसे ही टेंशन नहीं है पर है। उसे तो अनुभव के आधार पर ही जाना जा सकता है। टेंशन बड़े-बड़ों को आस्तिक बना देती है। लोग टेंशन दूर करने के लिए ईश्वर को रिश्वत देते हैं, सवा पाँच से सवा पाँच सौ रुपये का प्रसाद चढ़ाते हैं। ये जीव भी विचित्र हैं। जिसे टेंशन है वह भटक रहा है और जिसे नहीं है वह भी भटक रहा है। इसलिए संतों ने कहा है कि हे जीव, तू चाहे कितना भी प्रयत्न कर ले, ये टेंशन तेरा पीछा छोड़ने वाली नहीं है। यह वह कंबल है जिसे तू जितना छोड़ना चाहे पर वह नहीं छोड़ेगा। अत: चाहे कम हो या बहुत टेंशन हो, उसे इस नश्वर संसार में भोगना ही पड़ेगा।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2025

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

व्यंग्य

दीनानाथ के हाथ

हरीश नवल

मेरी दादी की यह प्रगाढ़ इच्छा थी कि मैं एक सुयोग्य नागरिक बनूँ। उन्होंने मुझे ऐसा बनाने के लिए बाल्यकाल से ही ट्रेनिंग देनी शुरू की। किशोरावस्था तक आते-आते मुझे सुयोग्य होने के अनेक बताए गए गुरों में से कुछ सुनहरे गुर दादी ने व्यवहार में लाने के लिए बाध्य किया। मैं शीघ्र ही बाध्य हो गया क्योंकि उन्होंने ही मुझे बताया था कि माता-पिता या दादा-दादी से अच्छी बातें सुन-सुनकर और आगे जीवन में ग्रहण करके ही अनेक पुरुष महापुरुष बने हैं। इनमें शिवाजी और महात्मा गांधी मुझे बहुत अच्छे लगते थे। मैंने दादी से बचपन में कई बार पूछा कि महापुरुषों की भाँति महास्त्रियाँ भी होती होंगी, आप मेरी छोटी बहन को भी ऐसी कथाएँ सुनाएँ कि वह बड़ी महास्त्री बने। मेरा मत था कि जब मैं महापुरुष बनूँगा तो क्या मेरी बहन की इच्छा महास्त्री बनने की नहीं होगी? मुझे आज भी याद है, बड़ी विश्वस्त मुद्रा से दादी ने कहा था, "पुरुष को ही सिखाना पड़ता है, हर स्त्री महास्त्री होती है। तेरी बहन भी हो जाएगी।" तब तो मैं नहीं समझा था पर अब ख़ूब समझता हूँ, अनेक वर्षों से समझता हूँ-बहन के संदर्भ में तो इतना ही कहना यथोचित होगा कि मेरे बहनोई फौज में कर्नल हैं, बड़े-बड़े कोर्स किए हुए हैं-जंगों से लड़े हैं, महापुरुष बनने के लगभग सभी लक्षण हैं, किंतु जैसे ही घर में आते हैं तो डिफेंस की मुद्रा में ही होते हैं।

बहरलाल, किशोरावस्था में सुयोग्य नागरिक बनने के गुरों को मैंने अंजाम देना शुरू किया। दादी ने कहा था कि किशोरावस्था जवानी की पहली सीढ़ी होती है, सीढ़ी चढ़ते हुए नज़रें झुकी होनी चाहिए। मैंने फरमाबरदार शिष्य की भाँति यह बात कई गाँठों में बाँध ली और अपनी गली में उतरते ही नज़रें नीची कर चलने लगा। इस नीची नज़र की वजह से मुझे कई मुसीबतें उठानी पड़ीं। पहले ही दिन एक रिक्शा वाले से टकरा गया। नज़रें नीची थीं। मैं देख भी न पाया कि रिक्शा कहाँ से आया, बस जा टकराया। उसका अगला पहिया मेरी पतली टाँगों के मध्य यों स्थापित हो गया जैसे कि साइकिल स्टैंड पर साइकिल रखी जाती है। रिक्शा वाला मुझे कुछ कहता, उससे पहले ही रिक्शा पर बैठी सवारी ने दयापूर्ण ढंग से कहा, "अरे! बेचारे की शायद आँखें चली गईं हैं। अरे भैया, कोई इसे सड़क तो पार करवा दो।"

एक और दिन तो हद ही हो गई। मैं नीची नज़रों की वजह से एक खंभे से टकराकर गिरा ही था कि एक दयालु सज्जन आ गए और मेरे गिरे हुए फैले हाथ में अठन्नी रखकर बोले, "बेटा, पैसा माँगने के लिए गिरना कोई ज़रूरी नहीं। उठो और मर्दों की तरह मेहनत करो, आज दे देता हूँ, पर आइंदा इस मोहल्ले में मत आना। अच्छे लहीम-शहीम नौजवान हो, कोई काम क्यों नहीं करते? मेरी फैक्टरी में आ जाओ, बोझा ढोने के लिए मुझे कुछ व्यक्तियों की ज़रूरत भी है।"

और उस दिन मैं सुयोग्य नागरिक बना हुआ नीची नज़रें रखकर चल रहा था कि एक भद्र महिला से टकरा गया। मुझे टकराकर बुरा तो नहीं लगा महिला के हाथ में काँच का झाड़-फानूस था, उसके मेरे पैर से टकराने पर बहुत बुरा लगा, पैर लहूलुहान और उस महिला का दिल छलनी-छलनी हो गया। एक दूतावास में नीलामी से वह ख़ूबसूरत फानूस लाई थी। उसने मुझे पुलिस के हवाले करने की बात की जबकि जमा हुई भीड़ ने पहले मुझे डॉक्टर के हवाले करने की बात उठाई। बाद में अनेक ने भद्र महिला को मेरी ख़बर ठीक से लेने का आश्वासन दिया

हरीश नवल

हरीश नवल, 65 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3

पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063

मोबाइल-9818988225

ईमेल- harishnaval@gmail.com

और महिला को अपना पता लिखवाने की होड़ में हिस्सा लेने लगे।

मेरे साथ जो भी दुखद घटा सो घटा, किसी और निर्दोष सुयोग्य के न घटे परंतु मैंने वह गुर व्यवहार में उतारने की मनाही दादी को दे दी।

दादी तो मुझे सद्गुण संपन्न धीरोदात्त नायक बनाने के लिए कटिबद्ध थीं, कटि भी उनकी ख़ूब भरकम थी अत: मुझे बद्ध होने के लिए सच बोलने का गुर दिया। दादी ने सत्यवादी हरिश्चंद्र की कथा भी सुनाई और मैंने कथा सुनने के बाद से ही सच बोलने का अभ्यास शुरू कर दिया। कथा से छूटते ही मैंने कहा कि दादी, "यह कथा विश्वसनीय नहीं है। सपने में दान करने की बात सोच हरिश्चंद्र ने राज्य दान कर दिया, यह उचित नहीं है।" इस पर दादी ने कहा, "वाद-विवाद प्रतियोगिता अपने स्कूल में करना, यहाँ कोई तर्क नहीं चलेगा। जब तेरे माता-पिता तक मुझसे तर्क नहीं करते तो कौन से खेत की मूली है?" मैंने सचमुच समझा कि वे मुझसे प्रश्न कर रही हैं।

मैंने सत्य उत्तर दिया, "उसी खेत की मूली हूँ दादी जी जो आपने ही लगाया था, आज भी सींच रही हैं।"

इस पर वह बिगड़ गईं। बोली, "तुझे बात करने की तमीज़ नहीं। जानता है किससे बात कर रहा है?"

मैंने विनम्रता से झुककर कहा, "हाँ, जानता हूँ, आप श्रीमती द्वारका देवी हैं जिनका मायके का नाम दुर्गा देवी था। आपका विवाह मेरे दादा से हुआ था। आपको दादा जी पसंद नहीं आए थे परंतु उनका बड़ा मकान, नौकर-चाकर बहुत पसंद थे।"

दादी ने इधर-उधर देखा कि कोई सुन तो नहीं रहा। मेरी माँ आँचल को मुँह में ठूँसे यह डायलॉग सुनकर हँसी रोकती उन्हें नज़र आ गईं। दादी मरखनी हो उठीं, माँ से बोलीं, "निगोड़ी, तू क्यों बातें सुन रही है?"

माँ का चेहरा सपाट हो गया। मैंने कहा, "दादी जी, वे निगोड़ी नहीं हैं, वे महेश्वरी आपकी बहू हैं इसलिए बातें सुन रही हैं क्योंकि आपकी आवाज़ उनके कानों में पहुँच रही है मैं सच कह रहा हूँ।"

दादी चीखीं, "आया बड़ा सत्यवादी हरिश्चंद्र, सच बोल रहा है। भाग जा यहाँ से कोई ज़रूरत नहीं ऐसे सच-वच की।"

मैं आज्ञाकारी बालक की भाँति भागने लगा। भागते हुए मैंने कहा, "धन्यवाद दादी जी! अब सब सच नहीं बोलूँगा, झूठ बोलूँगा। तुम बहुत अच्छी हो, बड़ी प्यारी हो, दुनिया की सबसे अच्छी दादी हो।"

कुछ दिन तो दादी मुझसे परहेज़ रखती रहीं पर एक दिन फिर मुझे सुयोग्यता की शिक्षा देने लगीं। वे दीक्षा से पूर्व बोलीं, "बेटा, मूल से ब्याज प्यारा होता है इसलिए तू कैसा भी हो पर मुझे अच्छा लगता है। मैं चाहती हूँ तू बड़ा होकर एक प्रसिद्ध व्यक्ति बने, तू एक काम कर। तू दया का पाठ पढ़। मैं चाहती हूँ कि तू मूलचंद बन।"

मूलचंद सुन मैं चौंका, "दादी, अभी तो आप कह रही थीं कि मूल से ब्याज प्यारा होता है, अब कह रही हो कि मूलचंद बन, मैं कुछ समझा नहीं।"

दादी प्यार से बोलीं, "बेटा, यह मूल दूसरा है। हमारे यहाँ लिखा है, 'दया धर्म का मूल है।' तू दया किया कर, यही मूल सिद्धांत है।"

मैं सदा की भाँति दादी के कथन को सार्थक करने पर जुट गया और दया के पात्रों को खोजने लगा। गली से बाहर निकलते ही मैंने देखा कि एक खाज का मारा पिल्ला क्रंदन कर रहा है। उसे देखकर मैं दया से भर उठा और दादी का ध्यान कर उसे उठाकर घर ले आया। दादी उस समय तक मंदिर जा चुकी थीं। पिल्ले के लिए दूध का बरतन मुझे चाहिए था। मैंने दादी की कटोरी इस पुण्य कार्य के लिए ले ली। मुझे विश्वास था कि दादी अपनी कटोरी का सदुपयोग देख बेहद ख़ुश होंगी। माँ ने मना भी किया, पर मुझे लगा कि माँ ईर्ष्या से मना कर रही है।

मैं पिल्ले को दादी की कटोरी में दूध परोस बाहर आकर दादी को अपनी दया की कथा सुनाने के लिए खड़ा हो गया। दादी के आने पर मैंने उन्हें अपनी दया-भावना की बात बताई। वे ख़ुश हुईं जैसे एक चलचित्र में मुगैंबो होता था। वे भीतर आईं, आते ही देखा कि पिल्ला उनकी कटोर पर पिल रहा है और खाज का सताया हुआ है। उनका क्रोध सातवीं मंज़िल पर पहुँच गया और वहाँ से मुझ पर कूदा। चिल्लाईं, "तू दया कर रहा है या दुष्टता! यह बीमारी का घर क्यों उठा लाया-तू सुयोग्य नहीं बन सकता, इसे फेंककर आ बाहर। तू मूर्ख ही रहेगा-अरे, इसे दूध के लिए मेरी ही कटोरी दे दी, तेरा सर्वनाश हो, ले जा।" वे रौद्र रस का मानवीकृत रूप हो उठीं।

मैं पिल्ला बाहर फेंक कर आया और दादी कटोरी। काफ़ी देर तक मुझे पता ही नहीं चल पाया कि आख़िर मुझसे क्या ख़ता हुई है, मैंने तो दादी के कहने से पहले दया का पात्र ढूँढ़ा, फिर उसके दूध का पात्र भी ढूँढ़ा।

मैंने दादी से निवेदन किया कि मुझे सुयोग्य तो बनना है पर मैं क्या करूँ, मेरा हर प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है।

दया का पात्र मैं दादी के लिए बना। वे मुझे बोधतत्त्व देने लगीं। बोलीं, "तुझे सुयोग्य बनाने के लिए तीन गुर दिए पर तूने कूड़ा कर दिए। तुझे कहा-नज़रें नीचें करके चला कर पर तू टक्करें मारता रहा, गली के नुक्कड़ वाली के बेटे दीनानाथ से सीख कि नीची नज़रें क्या होती हैं, इसी गुण से दीनानाथ आज नुक्कड़ से देख के मुख्य भवन में आ पहुँचा है।

तुझे कहा, सच बोला कर पर तूने तो मुझे ही झूठा ठहराना शुरू कर दिया। दीनानाथ से सीख कि सच का प्रयोग कैसे होता है। सच बोलकर तूने मुझे नाराज़ किया और वह सच बोलकर कितनों को प्रसन्न कर चुका है।

बेटा, मैंने तुझे कहा, दया कर तू तो दुष्टता करने लगा। दीनानाथ से पूछ, कैसे किस पर दया की जाती है। दीनानाथ सुयोग्यता का पुतला है, मैंने ही उसे पाठ पढ़ाया था और आज वह ठाट से रह रहा है।"

ज़ाहिर है मैं श्री दीनानाथ जी तक पहुँच गया। उनकी योग्यता का यश धूप की भाँति हमारे दिलों तक सेंक पहुँचा रहा था। पूरे मोहल्ले में उनकी धाक थी।

दीनानाथ जी ने सविस्तार मेरी सुयोग्यता वर्धक गाथा सुनी और फिर बोले, "बेटा तुम्हें दुरुस्त करना होगा। तुम मुझे गुरु बनाओ, मैं तुम्हें गुरुमंत्र दूँगा। जो गुरुमंत्र होता है वह

किसी को अन्य को, चाहे वह उसकी दादी अम्मा ही क्यों न हो, बताया नहीं जाता।"

मैंने नारियल फोड़ा, उन्हें माला पहनाई, चरण छुए, जेब में ग्यारह रुपये थे, उन्हें अर्पित किए और वे मेरे बड़े गुरु बन गए।

उनके बताए गुरूमंत्र को मैंने बरसों सिद्ध किया और लगता है दादी को मुझसे कोई शिकायत नहीं। वैसे ही उनकी विदा-वेला है, इस वेला में उनका मुझे सुयोग्य नागरिक बनाने का स्वप्न पूर्ण हो चुका है। वह आश्वस्त हैं। मैं भी आश्वस्त हूँ।

मैं नीची नज़रें करके चलता हूँ और सावधानी बरतता हूँ कि टक्कर न हो। नीची नज़रें करके मोहल्ले में चलने का सर्वश्रेष्ठ समय होता है प्रात:काल, जब बुज़ुर्ग महिलाएँ मंदिर जा रही होती हैं और सफाई-पोंछा करने वाली उनके घर। बुज़ुर्ग महिलाएँ और सफाई करने वाली ही तो सुयोग्य-अयोग्य का विज्ञापन करती हैं। प्रात:काल नीची नज़रें करके चलते वक़्त बाएँ हाथ में एक थैला रखना बेहतर होता है। श्री दीनानाथ गुरुवर जी की भाँति सड़क पर सूक्ष्म दृष्टि रखते चलता हूँ, अत: रोज़ ही कुछ सिक्के, एकाध नोट, कभी कोई टाई पिन, कभी कान का बुंदा, कोई पर्स कुछ-न-कुछ मिलता ही रहता है, और दाएँ हाथ से उठाकर बाएँ हाथ में पकड़े थैले में डालता रहता हूँ। जिन दिनों नगर पालिका में सफाई कर्मचारियों की हड़ताल होती हैं, उन दिनों नीची नज़रें करके चलने वालों की चाँदी होती है।

जहाँ तक जीवन में सत्य प्रयोग करने की बात है, सच ज़रूर बोलना चाहिए किंतु इसके लिए मैं अपनी आत्मा को ज़रूर शामिल कर लेता हूँ, जिसे आत्मा कहती हैं कि यह सच है, वैसा ही करता हूँ। तन की आँखें धोखा दे सकती हैं, पर मन की आँखें मुझे दिखाती हैं कि अमुक व्यक्ति रिश्वत ले रहा है अत: भ्रष्ट है किंतु फिर मैं मन की आँखों से देखता हूँ, आत्मा से देखता हूँ तो सत्य नज़र आ जाता है कि अमुक रिश्वत लेकर यदि काम कर रहा है तो यह उसका बड़प्पन है, वह तो हमारी सहायता कर रहा है, अन्यथा मेरा काम संपन्न नहीं हो सकता अत: मैं जान जाता हूँ कि वह भ्रष्ट नहीं, सदाचारी है। उसने रिश्वत के जो रेट रखे हैं, उससे अधिक नहीं लेता। वह धोखा नहीं करता, मेरा काम करता है। रिश्वत देकर काम पूरी ईमानदारी से होता है-यही सच है। अत: मैं दीनानाथ जी का ध्यान कर सुखमय जीवन जीने लगा हूँ। अन्यथा श्री क की भाँति कुढ़ता रहता और ब की भाँति बड़बड़ाता।

आप निस्संदेह मेरी वर्तमान दया भावना के विषय में भी जानना चाहते होंगे। दादी ठीक कहती थीं कि दया धर्म का मूल है। पर यह अधूरा कथन है, पूर्ण करने के लिए एक वाक्य और ध्यान में रखना चाहिए कि 'पाप मूल अभिमान'। दया मूल है धर्म का तथा अभिमान मूल है पाप का। मैं जो भी करता हूँ, उस पर अभिमान कभी नहीं करता। जैसे मैंने देखा कि श्री दीनानाथ जी ने अनेक युवा स्त्रियों पर दया की और ऐसी कि उन्हें नारी निकेतनों में रहने पर मजबूर किया ताकि वे एक स्थान पर सुखी भाव से रह सकें और दोनों वक़्त का भोजन पा सकें। अब इस भोजन को पाने के लिए अनेक पापड़ बेलने पड़ते हैं जिनमें से कुछ दीनानाथ जी के ही लिए बिलते हैं। वे मन की आँखों से देखते और यश के अधिकारी बनते हैं।

समाज को यशस्वियों की अद्भुत देन है अनाथालय। अनाथालय दया के प्रतीक हैं। दयालुता से भरे अनाथों पर कृपा करके संतुष्टि-सुख पाते हैं। ये अनाथालय चलेंगे कैसे यदि इनमें अनाथ ही न हों? श्री दीनानाथ जी तथा उन जैसे अनेक दीनानाथ समाज में अनाथों की सृष्टि करते हैं, उनकी कृपा से अनेक सनाथ अनाथ बनते हैं ताकि अनाथालय चलते रहें और सुयोग्य नागरिकों का दयाभाव बना रहे। वे मानवता धर्म के मूल का पालन करते रहें पर इसका अभिमान न करें, अभिमान करने से वे पापी की श्रेणी में चले जाएँगे।

दोस्तो! अब न मेरी दादी असंतुष्ट हैं और न मैं ही मुर्ख। अब मैं भले ही देर से इस निष्कर्ष पर आया पर दुरुस्त आया। उनका क्या होगा जो तन की आँखों से देखते हैं, क्या उनके देर से भी दीनानाथ होने की संभावना है? सोचते रहिए कल तक...

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएँफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
vibhom.swar@gmail.com

न खाऊँगा....

कमलेश पाण्डेय

आज फ़ोन पलट रहा था तो ऐसा महसूस हुआ मानों सारी दुनिया के लोग लिखना-पढ़ना छोड़ कर खाना पकाने में जुट गए हैं। हालाँकि सोशल मीडिया पर लेखन भी पकाने जैसा ही एक हुनर है, पर जो मैंने देखा उसमें हर तीसरी पोस्ट में कोई न कोई मनुष्य के खाने-खिलाने योग्य कोई खाना पका रहा था। आप कहेंगे कि यह तो राहत की बात है कि लिखने की बजाय सचमुच का खाना पका रहा है, पर ढेर का ढेर लिख देने की तरह बहुत सारा खाना भी कोई अच्छी बात तो नहीं। हम दोनों मियाँ-बीवी अक्सर कुछ चीज़ें नहीं खाने की क़समें खाते रहते हैं। कभी-कभी तो एक वक़्त खाना न खाने की भी खा लेते हैं। पर खाना जो है बदस्तूर नियम से चारों वक़्त चलता रहता है। इसी खाद्य-अखाद्य पर ज्ञानवर्धन के इरादे से मैंने कल अपने फ़ोन की स्क्रीन पर ताज़े चारे की तरह लटके कुछ हेल्दी डाइट पकाने के नुस्खे वाले वीडियो देख लिए थे जिसके नतीजे में इन पकाऊ विडियोज़ का सिलसिला चल निकला था।

ख़ैर खाने न खाने का मुद्दा हमारे बीच गर्म-गर्म खाने की तरह ही गरमाता रहा है। चूँकि खाने खिलाने का डिपार्टमेंट श्रीमती जी का है मैंने कई बार उनसे विनती की कि वे "न खाऊँगी, न खाने दूँगी" जैसा कोई दमदार नारा दें। कई बार उन्होंने दिया भी मगर इस नारे की फितरत भी हमारी पिछली क़समों सी ही निकली यानी नारा अपनी जगह रहा और खाना बाक़ायदा अपनी जगह थाली में परोसा हुआ। फिर एक रोज़ मुझे नारे का फॉर्मेट बदला हुआ नज़र आया। मैंने पाया कि श्रीमती जी ख़ुद तो मशरूम आदि पौष्टिक पदार्थ चुपके से खाकर हल्की और पाक साफ बनी रहती हैं पर मेरे लिए छप्पन व्यंजनों की थाली की व्यवस्था कर देती हैं। उनके इस अतिरिक्त प्रेम-प्रदर्शन से यह संदेह हो सकता है कि मैं ही उनका परम मित्र हूँ और उनके स्नेह के पात्र से जीम-जीम कर छप्पन इंची सीने और समानुपातिक पेट वाला हो चला हूँ। पर सच तो यह है मित्रों कि उनके परम मित्रों की टोली अलग है जिनके साथ उनका प्याला-निवाला वाला संबंध है। वे अक्सर पूरी दरियादिली से उन्हें दावत देकर बढ़िया खाना खिलाती हैं। मेरा विश्वास है कि वे टोली भी मिल-बाँट के खाने के मौकों में उनको शामिल रखती है। मेरा इंतज़ाम तो ख़ैर रहता ही है। यही नहीं वे तो अपनी कामवाली बाई के भी खाने का इंतज़ाम बराबर रखती है और वक़्त पर कोई सम्मान-निधि या अनाज आदि देकर उसे ख़ुश रखने की कोशिश करती हैं।

अपने देश में 'न खाना न खाने देने' का नारा इन दिनों पूरी शिद्दत से चल रहा है। भोजन का अंबार जिनके सामने धरा है, यह उन्हीं का नारा है। ख़ुद न खाने की क़सम खाने वाले ये महानुभाव सबको बताते हैं कि देश में कुछ ऐसे सर्वभक्षी लोग हैं जो सारा कुछ खा जाते है। नारे का दूसरा भाग इन्हीं के खाने पर रोक लगाने के संदर्भ में है। ये ज्ञात नहीं है कि अब तक इनकी थाली छीन ली गई है या खाने के नाम पर इन्हें महज जेल की रोटियाँ ही नसीब हो रही हैं। पर सुना है असली मामला हमारी श्रीमतीजी के भंडारे जैसा ही है। जैसे वे अपनी ख़ासमख़ास सहेलियों को थालियाँ सजाकर जिमाती है, वैसे ही कुछ परमप्रिय हमजोलियों को सोने-चाँदी की थालियों में देश के सबसे महँगे पुष्टिवर्धक संसाधन परोसे जाते हैं। श्रीमती जी की तरह ही ये उपवासी नेता उन्हीं थालियों से सबसे पौष्टिक कौर उठा कर चुपचाप व्रत तोड़ लेते हैं। नारा गूँजता रहता है और जनता उनके त्याग पर धन्य-धन्य करती रहती है। उधर देश की बड़ी आबादी के लिए यह नारा एक नैतिक क़सम न हो कर अवसर न मिलने की मजबूरी या मुफ़लिसी का नतीजा है। एक

कमलेश पाण्डेय
बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार, सेक्टर 82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल- 9868380502
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

बड़ी आबादी के लिए 'न खाऊँगा' ग़रीबी और भुखमरी का परिणाम है तो 'न खाने दूँगा' इसकी तार्किक परिणति के रूप में परिवार और अन्य प्रियजनों के संदर्भ में अपने-आप हो जाता है।

ख़ुद न खाने वाले औरों को न खाने देने की क़सम तोड़ कर अपने जिन प्रियजनों को खिलाते हैं वे खाते तो बहुत हैं ही उससे ज़्यादा समेट कर ले जाते हैं, वैसे ही जैसे धार्मिक आयोजनों के विकट भोजन भट्ट अपनी उदर-पूर्ति के बाद दक्षिणा में गठरी भी भरकर ले जाते हैं। उनमें से कइयों की भूख इतनी उत्कट और खाने-पचाने की थैली-शैली ऐसी है कि कुछ भी खाकर डकार तक नहीं लेते। इनके लिए देश के तमाम संसाधन- सड़क, पुल, हवाई अड्डा, खान-ज़मीन, नदी-समन्दर-जज़ीरे सब सुपाच्य है। जनता को एक कहावत का केवल दूसरा हिस्सा ही दिखता है जब उपवास रखने वाले और उनके पुरोहित सत्तर चूहों के भक्षण के बाद हज की दिशा में प्रस्थान करते हैं। जनता दोनों के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति वैसे ही बनाए रखती है जैसे श्रीमती जी के प्रति मेरी आस्था अक्षुण्ण है। नारा अपनी जगह है और इन भोजन-भट्ट महानुभावों का सम्मान अपनी जगह।

"न खाऊँगा न खाने दूँगा" के नारे की असली प्रेरणा दुनिया के अमीर देशों से आई है जो पिछली कुछ सदियों में पृथ्वी पर प्रकृति की दी हुई तमाम नेमतें उदरस्थ करने के बाद बेडौल हुई काया को साधने के लिए अब डायटिंग आदि की कवायद में लगे हैं। जी भर के खाने के दौर में वे बची आधी दुनिया के हिस्से का भी सब कुछ खा गए। अब एक संत पक्षी की तरह भगत मुद्रा में आ गए हैं। खाने को आज भी सबसे उत्तम पदार्थ उन्हीं की पहुँच में हैं पर भूख की लड़ाई आज भी लड़ रहे देशों के लिए 'न खाने दूँगा' ही उनका नारा है। ऐसी स्थिति में औरों को क्या, कितना या नहीं खाना चाहिए यह तय करने की शक्ति और दंभ रखने वालों से ईश्वर ही सलटेंगे, जिनके बारे में सुना है कि वे हर दाने पर खाने वाले का नाम लिख कर भेजते रहे हैं।

000

ग़ज़लें

सत्यशील राम त्रिपाठी

वाटिका में एक मूरत आएगी
फूल पर बेकार आफ़त आएगी
पहले तो केवल मोहब्बत आएगी
और फिर लाखों मुसीबत आएगी
सीखने में वक़्त लगता है मियाँ
आते आते ही नज़ाकत आएगी
मान लो वह लौटकर आ भी गई
आएगी दो-चार प्रतिशत आएगी
एक नई दुनिया दिखेगी सामने
सामने जिस दिन हक़ीक़त आएगी
प्यार करना दो मुहल्ला छोड़कर
वरना तो घर तक शिकायत आएगी
पहले आएगी हमारे पास वो
और फिर तो बादशाहत आएगी
प्यार हो कितना भी अच्छा, अंत में
टूट जाने की ही नौबत आएगी

000

है कहीं रेशम कहीं खादी ग़ज़ल
है कहीं पिछड़ी सी आबादी ग़ज़ल
माँ अगर कविता है उसकी गोद में
बनके इठलाती है शहज़ादी ग़ज़ल
उम्र भर शायर इसे ही ढूँढ़ते
और दिखलाती है उस्तादी ग़ज़ल
फूल, भौंरे, तितलियाँ सब हैं यहाँ
लग रही है इक हसीं वादी ग़ज़ल
बादशाहत लार टपकाने लगी
आई जब दरबार फ़रियादी ग़ज़ल
वो ग़ज़ल थी, उसको मैंने दिल दिया
उसने उँगुली में ही पहना दी ग़ज़ल
हमने कोठे से उतारी और फिर
आम जन के बीच पहुँचा दी ग़ज़ल
है ग़ज़ल में तो रिवायत का चलन
मैं लिखूँगा किंतु जनवादी ग़ज़ल

000

हमे क्या क्या दिए तुम हम ज़रा सा दे नहीं पाए
कि पाया था यहाँ से जितना उतना दे नहीं पाए
टहलने के लिए बाग़ो-बग़ीचा दे नहीं पाए
नई पीढ़ी को जीने का सलीक़ा दे नहीं पाए
तुम्हारे साथ हैं हम ये भरोसा दे नहीं पाए
बरसती आँख के माथे पे बोसा दे नहीं पाए
जहाँ तहज़ीब मिलती थी वो रस्ता दे नहीं पाए
दिए मन्दिर दिए मस्जिद, मदरसा दे नहीं पाए
वो बूढ़ा आसमाँ से हर घड़ी आशीष देता है
बड़े होकर जिसे हम अपना काँधा दे नहीं पाए
उतरते वक़्त कुर्सी से यही सरकार सोचेगी
ज़रूरी था जिसे उसको वज़ीफ़ा दे नहीं पाए
वहाँ गोबर से बच्चे आजकल बिजली बनाते हैं
जहाँ वर्षों से तुम बिजली का खंभा दे नहीं पाए
सुना है आजकल भौंरे की दासी बन गई है वो
कली थी वो, उसे खिलने का मौक़ा दे नहीं पाए
शहर की भीड़ में खोया हुआ हामिद बिलखता है
अरे दादी तुम्हें हम एक चिमटा दे नहीं पाए

000

तुम बनो पंछी अगर हम भी शजर हो जाएँगे
इस तरह से दो दिलों के एक घर हो जाएँगे
प्यार के हर पैंतरे जब बेअसर हो जाएँगे
हारी बाज़ी जीतकर हम बाज़ीगर हो जाएँगे
मुद्दतों की प्यास लेकर जी रहे इस आस में
तुमसे मिलकर ऐ नदी हम तर-बतर हो जाएँगे
इसलिए सदियों से मैं दीवार बनकर हूँ खड़ा
तुम बनोगी छत अगर हम मिलके घर हो जाएँगे
इक सफ़र में साथ उनके दो क़दम करके सफ़र
क्या पता था इक सफ़र से हमसफ़र हो जाएँगे

000

लिखा है उसने मगर ऐसा कुछ लिखा ख़त में
उतर गया है यहाँ पूरा मैकदा ख़त में
ख़ुदाया माफ़ करें कर रहा खता ख़त में
लिखा है मैंने किसी और को ख़ुदा खत में
सबूत सारे लिखे उसकी बेवफाई के
मगर कहीं न लिखा उसको बेवफा ख़त में
अजब है इश्क में काग़ज़ भी जगमगाता है
दिवाने दो जलाते इश्क का दिया ख़त में
जो बात सामने तुमसे न कभी कह पाया
वो सारी बात मैंने तुमसे कह दिया ख़त में

000

सत्यशील राम त्रिपाठी, रुद्रपुर पोस्ट खजनी
जिला गोरखपुर पिन कोड 273212
मोबाइल 6386578871
ईमेल- satysheel441@gmail.com

व्यंग्य

दादाजी का हनीमून

अर्चना चतुर्वेदी

अर्चना चतुर्वेदी
ई -1104, आम्रपाली ज़ोडिअक, सेक्टर 120, नोएडा -गौतम बुद्ध नगर-201307
मोबाईल -9899624843
ईमेल- archana.chaturvedi4@gmail.com

बाबू ओंकारनाथ की उम्र भले ही 75 पार कर चुकी हो पर शरीर और शौक एकदम तरोताज़ा हैं। छह फिट दो इंच लंबे, साँवला रंग और ख़ूबसूरत नैन नक्श कसरती बदन और बढ़िया ताव देती मूँछ बाबू जी को आकर्षक बनाने के लिए काफी थे। इतनी उम्र में भी झुर्रियाँ अपना साम्राज्य स्थापित करने में नाकामयाब थीं, सो जवानों को भी कॉम्प्लेक्स देते। बेटा-बेटी, नाती-पोतों का भरा-पूरा ख़ुशहाल परिवार है और अपनी पेंशन अच्छी-ख़ासी आती है सो बाबू साहब हरदम प्रसन्न चित्त रहते हैं। कहते हैं जोड़ियाँ भगवान् बनाते हैं यह बात इनकी जोड़ी पर शत प्रतिशत लागू होती है। इनकी पत्नी यानी सबकी अम्मा जी भी इनकी तरह शौकीन और ख़ुशमिज़ाज हैं। गोरी-चिट्टी सुंदर सी अम्मा इस उम्र में भी ध्यानाकर्षण का केंद्र बन जाती हैं। बाबूजी और अम्मा एक दूसरे को छेड़ते हँसी-मज़ाक करते रहते। दोनों घूमने-फिरने के ख़ूब शौकीन हैं। उन दोनों के लिए उम्र सिर्फ नंबर है। अम्मा काम करने की इतनी शौकीन हैं कि एक मिनट भी खाली नहीं बैठ सकती। सुबह चार बजे उठकर भजन गाते हुए आँगन, पौरी सब धोना शुरू कर देती। खोज-खोज कर दिन भर कोई न कोई काम करती रहती हैं, कभी डिब्बे साफ कर लें, कभी मसाले कूट लें, कुछ न मिले तो रसोई में घुसकर लड्डू मठरी बनाने बैठ जाएँ। बहुएँ आराम करने को बोल दें तो अम्मा बुरी तरह नाराज़ हो जातीं- "मैं क्या बूढ़ी हूँ या अछूत हूँ जो काम नहीं करने दे रहीं," बहूएँ समझातीं तो कहतीं- "शरीर भी मशीन है इस्तेमाल नहीं किया तो ज़ंग लग जाएगी।" उनकी ऐसी दलील सुनकर बहुएँ चुप रह जातीं।

अभी हाल ही में पोते की शादी हुई तो बाबूजी बहुत प्रसन्न थे। शादी पक्की होने से लेकर शादी होने तक इनके पैर ज़मीन पर नहीं टिक रहे थे। अम्मा भी ख़ूब छेड़कर मज़े लेती ऐसा ही वाक़या हुआ शादी के समय जब घर पर रँगाई-पुताई का कार्यक्रम हुआ तो बाबूजी की बैठक में भी उनकी पसंद का रंग हुआ। बाबूजी को बहू-बेटियों वाले घर में किसी को भी बुलाना पसंद नहीं इसलिए घर से कुछ दूर एक दुकान में गद्दे आदि लगाकर बाबूजी ने अपनी बैठक बना रखी है, जहाँ उनके यार दोस्त और मिलने वाले जमा होते हैं। तो बाबूजी बैचेन थे कि मेरी बैठक में भी रंग सफ़ेदी कारवाई जाएगी आख़िर पोते का ब्याह है। रंग सफ़ेदी शुरू हुआ तो बाबूजी दोपहर के भोजन के वक़्त प्रसन्न मुद्रा में घर आए, बड़े ही ख़ुश नज़र आ रहे थे बोले " हर आता जाता मुझसे पूछ रहा है- सफ़ेदी क्यों हो रही है कुछ शुभ कार्य है क्या घर में ? और हम कहते हैं हमारे पोते का ब्याह है", बोलते हुए बाबूजी की गर्दन ऐसे तन गई मानों कोई बड़ी उपलब्धि हो, चेहरे से ख़ुशी टपक रही थी सब लोग उनकी ऐसी प्रसन्नता देख ख़ुश हो रहे थे तभी अम्मा अचानक बोली "थोड़ी सफ़ेदी अपने मुहँ पे भी पोत लो तब ज़्यादा लोग पूछेंगे का हे रह्यो है ?" अम्मा का

इतना कहना था कि सब लोग बुरी तरह हँसने लगे और बाबूजी पहले तो थोड़े नाराज़ हुए फिर ख़ूब हँसे "अरे का करों ख़ुशी के मारे बाबरो है गयो हूँ, मैं तो जे भी सोच रहो हूँ चार दिन में पंती होएगो तब कैसो आनंद आबेगो, हम दोनों जोड़ी ते स्वर्ग नसेनी चढ़ेंगे।" बाबूजी सपनों की दुनिया में खो गए और अम्मा फिर डाँटने लगी "ही भगवान् जा बुढ़र को देखो कैसे सपने देखबे लगे अभी तो छोरा को ब्याह है जे बाके बच्चा तक के सपने देखने लगो।" ऐसे ही हँसी ख़ुशी मस्ती के साथ ब्याह हो गया और छह महीने बीत चुके थे। एक दिन बाबूजी ने पोते को अपनी बैठक में बुलाया, "क्या हुआ बाबू क्या बात है ?" पोते ने पूछा।

"अरे बेटा एक बहुत जरूरी काम हो" बाबूजी ने पास आने का इशारा किया फिर बोले, "बेटा हम तो पंद्रह बरस के ही जब हमारो ब्याह भयो और तुम्हाई दादी बारह बरस की।"

"अच्छा बाबू इत्ती कम उम्र में शादी हुई आपकी?"

"हाँ बेटा तब तो अक्ल भी न ही और वे जमाने अलग हते। तब आज की तरह कछु न हो बड़े नियम क़ायदा हे।" बाबू ने ठंडी आह भरी।

"ये तो ठीक है बाबू पर आपने मुझे क्यों बुलाया ?" पोता थोड़ा बेसब्र हुआ।

"एक ख़्वाहिश है मेरी इसलिए बुलाया है तुम्हें बाबूजी", बाबू जी मूड में आकर पोते को बाबूजी कहते हैं और खड़ी बोली का प्रयोग करने लगते हैं।

"कैसी ख़्वाहिश ?" पोता उनकी शक्ल देख रहा था।

"हमने तुम्हारी अम्मा को ख़ूब घुमाया फिराया है नेपाल तक ले गए हैं पर हनीमून पर कभी नहीं गए, हमारे ज़माने में तो हनीमून होते नहीं थे सो अब हमारा मन है कि तुम्हारी अम्मा को हनीमून पर ले जाएँ।" बाबूजी तो बड़े भाव में बोलते जा रहे थे उनकी बातें सुनकर पोता ज़ोर से हँसने लगा।

"अबे हँस क्यों रह्यो है जामें हँसबे की का बात है गई।"

"इस उम्र में हनीमून जाओगे?" थोड़ा रुककर पोता बोला।

"क्यों उम्र में का ख़राबी है ? क्या हनीमून मना कर देगा कि तुम्हारी उम्र हो गई है, अब मुझे नहीं मना सकते।" बाबू मासूम सी शक्ल बनाकर बोले।

पोता अपनी हँसी रोककर बोला "आपको पता है हनीमून क्या होता है ?"

"पागल समझा है क्या अपने बाबा को ? हमें सब पता है क्या होता है, फिल्म में दिखाते हैं और तू भी तो गया था बहू के संग। ब्याह के बाद पहाड़ों में या कहीं सुंदर सी जगह अपनी घरवाली के साथ घूमने जाते हैं, उसे कहते हैं हनीमून। हमें तो जे भी पता है है उनके पैकेज भी मिलें अलग से, अख़बार में पढ़ी।" बाबूजी ने अपना पूरा हनीमून ज्ञान उड़ेल दिया।

"मतलब आप दादी को लेकर पहाड़ों पर जाओगे ?" पोता आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोला।

"देख बेटा हमारे ज़माने में तो जे सब हो ना और अब तो ब्याह कू छ दशक बीत गए। हमारी ब्याह की बू भी आ रही का कहें बाकू वर्षगाँठ तो सोची तेरी दादी कू सरप्राइज दे दू। तू कोई बढ़िया सी जगह खोज के आने जाने रुकने को इंतज़ाम देख ले बस।" बाबूजी ने अपने मन की बात कही।

उनकी बात सुनकर पोता मुस्करा दिया इतने साल बाद उनके अम्मा के प्रति प्यार को देख मन ही मन ख़ुश हुआ कुछ बोलता तब तक बाबूजी फिर बोले-

"सुन तू अपनी और बहू की टिकट भी करा लेना साथ रहोगे तो हमें हिम्मत भी रहेगी और तुम बता भी देना हनीमून पर क्या क्या करते हैं ? कहाँ कहाँ घूमते हैं ? कैसे मनाते हैं? तुमने तो अभी मनाया है सब याद होगा और तुम दोनों दोबारा हनीमून मना भी लेना।" बाबूजी मानों ख़ुशी के मारे बच्चे बन गए थे और उनकी बातें सुनकर पोते का हँस-हँस कर बुरा हाल। "ससुर को नाती हँसे जाए रहो है, ऐसी का बात कर दी मैंने का कोई चुटकुला सुनायो है मैंने, बताओ यहाँ इत्ती गंभीर बात चल रही है और इन्हें हँसी सूझ रही है।" पोते को यूँ हँसते देख बाबूजी ग़ुस्से में भिन्नाए।

"कितना बजट है आपका, बैंकाक थाइलैंड चलोगे हनीमून मनाने या सिंगापुर, जब इतने साल बाद मना ही रहे हो तो विदेश ही चलो।" बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर पोता बोला इस बहाने हम भी विदेश घूम लेंगे पोते ने मन ही मन सोचा।

"विदेश में भी मन सके का हनीमून ? " बाबूजी ने प्रश्न किया।

"हाँ बाबू कहीं भी सुंदर सी जगह मना सकें और पहाड़ पर ठंड से बीमार होने का भी तो डर है।" पोते ने टोपी घुमाई।

"पर हमारे पास पासपोर्ट भी तो न है, मोए पतो है पासपोर्ट लगे विदेश जाने के लिए।" बाबूजी के स्वर में चिंता उभरी।

"अरे बाबू चिंता न करो बु सब हम बनवा देंगे, आजकल तत्काल में बने दस-पंद्रह दिन में आ जाए। आपका बजट कितना है ये बताओ आप तो?" पोते ने कहा।

"तू बजट की चिंता मत कर, दो चार लाख भी लगे तो कोई बात न है, तू तो बहू से बात कर ले वो कहाँ जाना पसंद करेगी, पर उसे समझा देना किसी को पता न लगे सप्राइज है जे।" बाबूजी का चेहरा खिल रहा था।

"ठीक है बाबू में सब तय करता हूँ, आपके और अम्मा के पासपोर्ट के लिए फार्म डाउनलोड करता हूँ। आजकल तो ऑनलाइन आवेदन हो जाता है, फिर आपकी और अम्मा की शॉपिंग भी करवा देंगे हनीमून वाली।" पोते ने दादा को छेड़ा।

"हाँ बु नेकर जूता सब खरीद लेंगे और बहू से कहियों दादी के लिए भी स्मार्ट वाले कपड़े ले लेगी विदेश की बुढ़िया जो पहनें वो वाले।" बाबूजी मुस्करा कर बोले उनकी आँखों में सपने साफ दिख रहे थे।

"जी बाबू सब ले लेंगे।"

"अच्छा सुन मैंने सुनी है हनीमून जोड़े के कमरा भी अलग होबे होटल में तो देख लियो।" बाबूजी धीरे से बोले।

"ठीक है हनीमून सुइट ही करवा दूँगा" पोता हँसते हुए बोल और उठकर अपने दादाजी के हनीमून की प्लानिंग करने चल दिया। और दादाजी हनीमून के सपनों में खोए मुस्करा रहे थे।

000

संस्मरण

कितने पास कितने दूर

गोविन्द शर्मा

साठ के दशक का बढ़ता क़स्बा अल-सुबह फ़क़ीरों की आवाज़ों से करवट बदलते जागने लगता। जागो ओ ओ ओ... जागना बहुत भला होगा...। फ़क़ीरों की गलियों, सड़कों पर गूँजती आवाज़ें। हम भाई-बहन पढ़ने के लिये उठा दिए जाते, खिड़की की दरार से सड़क के मरियल लट्टू की पीली रोशनी में आवाज़ लगाते फ़क़ीर को देखते, हाथ में लाठी आवारों कुत्तों से सुरक्षा के लिये, दूजे हाथ में लालटेन की नन्हीं-सी रोशनी किसी जुगनू की बहन-सी लगती थी। फ़क़ीर फिर शुरू हो जाता, मदीना ऐसी बस्ती है जहाँ रहमत बरसती है... जागो ओ ओ ओ... जागना बहुत भला होगा... बाबूजी कहते ग़ाफ़िलों उठो, हालाँकि बुआजी कहतीं- भाई साहब जाहिलों कहना चाह रहे थे, ख़ैर ग़ाफ़िलों पर बात पक्की करें, तो ग़ाफ़िलों वह फ़क़ीर परमात्मा का मार्ग बता रहा है, तुम पढ़ाई, परीक्षा का मार्ग तय कर लो, इतना ही काफी होगा। फ़क़ीर पुरानी पोथी के जर्जर पन्नों पर रेखांकन की प्रतिकृति की तरह आगे पालीवाल गली में गुम हो जाता। माह-ए-रमज़ान की सुबहें कुछ इसी तरह खिलखिलाती होती थीं।

हमारी पढ़ाई का जितना श्रेय बाबूजी की प्यार भरी डाँट को जाता है, उतना ही जुगनू के लालटेन वाले फ़क़ीर को भी। सरकारी नालों से चौबीस घंटे पानी मिलता था, आज के बच्चे कहते हैं- काकाजी फेंक रहे हैं, लम्बी-लम्बी दे रहे हैं। तो बंधुओं सूरज बाबू के आसमान चढ़ने से पहले मोरी, जिसे आज की भाषा में खुला स्नानघर कहें पटक दिए जाते, लाइफबॉय के लाल साबुन से रगड़ कर नहाते और हू-हू करते भाग कर कपड़े पहन लेते। बालों पर कम से कम इतना तेल तो डाला जाता कि कानों के पिच्छे से बह निकलता।

फ़क़ीरों का सिलसिला ईद की सुबह टूटता। आज चादरनुमा झोले लेकर फ़क़ीर गुज़रेंगे। माँ ने बड़ा सा तपेला भर गेहूँ देहरी पर रख दिए हैं। उन दिनों फ़क़ीर घरों की नेम प्लेट पढ़कर नहीं आया करते थे, कासा दुआओं से भर अपने घरों से निकलते और मंसूर हो या गोविन्द सबको एक सी दुआओं से नवाज़ते चलते थे। देहरी पर माँ के हाथ का तपेला औंधा पड़ा है, कासा दरवाज़े पर लिखे नाम पढ़कर दुआएँ बाँट रहा है। फ़क़ीरों की आवाज़ें भी गुम हैं।

स्कूल की घंटी बजते घर से निकलते, चार मकान छोड़कर मेन हिन्दी स्कूल था। स्कूल का

गोविन्द शर्मा
294, विनायक, इंदौर रोड, कहान नगर
खंडवा (मध्यप्रदेश) 450001
मोबाइल- 9425388588
ईमेल- sharmagovind040@gmail.com

नाम अंग्रेज़ों ने दिया था लिहाज़ा सन् सैंतालीस के बाद एक दिन स्कूल का नामकरण घनश्याम प्रसाद प्राथमिक शाला हो गया। नाम के अलावा और कुछ भी नहीं बदला था। घंटी पहले भी इसाक चाचा बजाते थे और आज भी। उनके मुँह में पान का गल्ला तब भी भरा होता था आज भी। साकल्ले गुरुजी की छड़ी पहले भी छम-छम पड़ती थी, विद्या अभी भी घम-घम आ रही थी। स्कूल के पहले गनी पहलवान की टाल थी (टाल इधर जलाऊ लकड़ी की दुकान को कहते हैं)। गनी पहलवान की देहयष्टि साक्षी थी कि, वे पहलवान हैं। हम बच्चों को लगता था कि वे पास के जंगलों से ख़ुद पेड़ उखाड़कर लाया करते होंगे।

ये लाइसेंसराज, परमिट, गुमाश्ता क़ानून बड़े होने पर समझ में आया। हालाँकि जब तक माँ का साया सिर पर था, कभी नहीं लगा कि मैं बड़ा हो गया और एक अदद बीवी के होते कोई ख़ुद को समझदार कहने का साहस नहीं कर सकता। हमारे गनी पहलवान के परम मित्र थे धन्नालाल पालीवाल, इत्ता बड़ा नाम कोई नहीं लेता था, धन्नाभाई उनका नाम हो गया। मुहर्रम के पहले देर रात गए ढोल-ताशे लेकर नौजवान निकल पड़ते, सँकरी गलियों में रात के सन्नाटे में यह धमाका पहले तो नींद उड़ा देता, फिर लय-ताल का जादू सिर चढ़ने लगता, हम बच्चे घर के बीच के आँगन में नाचने लगते। बाबूजी के कमरे से एक आवाज़ आती और सारे बच्चे बिस्तरों में। बताता चलूँ कि हमारे ममेरे-फुफेरे भाई-बहन भी गाँव से पढ़ने आते और साथ ही रहते थे। बात गनी पहलवान की हो रही थी, क्या शेर बनाया जाता था उन्हें, ज़ंजीरों से बाँधकर उन्हें घर से निकाला जाता, आमने-सामने के चबूतरों से छलाँग लगाते गनी पहलवान नहीं, शेर सीधे धन्नाभाई के घर पहला शेर नृत्य दिखाते, जो बच्चे अब तक सहमे खड़े थे, शेर को नाचता देख सामान्य होने लगते। इसी बीच भीड़ में काला पुता जोकरनुमा सींकिया पहलवान दर्शकों से पैसे माँगता इधर धन्ना भाई खुलकर अपने मित्र पर नोट न्यौछावर करते, जो शेर बने गनी पहलवान कूद-कूद

कर मुँह से पकड़ते थे। अगले दिन स्कूल में हमारे मोहल्ले का शेर तगड़ा था इसी बात को लेकर प्रमोद पंडित और सतीश में मार कुटाई हो जाती थी। गुरुजी के क्लास में आते ही पूरी कक्षा एक स्वर में चुगली करती और अब गुरुजी प्रमोद और सतीश की कुटाई करते थे।

क़त्ल की रात सवारियों के साथ सैकड़ों का हुजूम दौड़ता निकलता। सबकी निगाहें रामेश्वर रोड के घनश्याम बाबा की सवारी पर रहती। उनकी सवारी आधी रात के बाद ही निकलती। इमलीपुरा, मीरपुरा, खड़कपुरा, गोया सारा शहर रतजगा करता, सवारियों के रस्ते पूरी रात गुलज़ार रहते। रोशनी में नहाया शहर ख़ुद पर मुग्ध होता। रोज़ नियम से विठ्ठल मंदिर जानेवाली, पूजा करनेवाली माँ जल्दी तैयार कर घर के बाहर ओटले पर इस हिदायत के साथ बैठा देती कि अपने मोहल्ले के ताज़िये के सामने लोबान डालना और ताज़िये के नीचे से निकलना, साल भर स्वास्थ्य ठीक रहेगा। हरिगंज की हमारी पट्टी को यह सौभाग्य हासिल था कि शहर के सारे ताज़िये ठंडे होने से एक दिन पहले किशोरी लाला के होटल से मेन हिन्दी स्कूल के बीच कतारबद्ध निकलते। ताज़ियों के साथ ताशे और ढोल की जुगलबंदी थिरकने पर मजबूर कर देती थी। हमारी टोली पूरे जुलूस के दौरान शांत बैठी रहती और जैसे ही मीरपुरा का ताज़िया आता ओटलों पर कूदने लगते, हमारे मोहल्ले का है यह ताज़िया, जानकारी आस-पास सब बच्चों को दी जाती। इमलीपुरा के ताशेबाज़ अपनी अदाओं से शहर के दिल लूट लेते थे, वहीं बुज़ुर्ग ताशेबाज़ों का एक दल अपनी पूरी सौम्यता के साथ पूरे मार्ग में अनुशासित प्रदर्शन करते चलते थे। ताज़िये खड़कपुरे के सबसे बड़े ख़ूब सज्जित और तीन होते थे, लेकिन हमारी टोली का तर्क था हमारे मीरपुर का ताज़िया सबसे बढ़िया है, बहस ख़तम। जुलूस के अंत में पालीवाल काकाजी के हाथ ठेले पर स्वादिष्ट रेवड़ी मिलती थी, गली वाली बुआ सारे बच्चों को रेवड़ी बाँट कर ख़ुश हो जाती थी।

सामने गली में इस्माइल के चाचा चादरों से ढँके परदेवाला ताँगा चलाते थे, उनका घोड़ा किसी रेस के घोड़े को टक्कर देता था। काकी जब भी चेन्नई से आती हम पहले तय कर चाचा का ताँगा लेकर रेलवे स्टेशन जाते। सारे रास्ते शाही सवारी का अहसास होता था। इस्माइल दूधतलाई घोड़ों को नहलाने ले जाता, हमारे दिलों पर साँप लोट जाता, फ़िल्मी हीरो की तरह घोड़ा दौड़ाते सर्र से निकल जाता।

हीरे ख़ाँ को उस्ताद मोती ख़ाँ के साथ बरसों से घर में मिस्त्री के कामकाज करते देख रहे थे। बाद में पारिवारिक डॉक्टर की तरह हीरेख़ाँ हमारे पारिवारिक मिस्त्री हो गए। दीपावली विवाह या अन्य अवसर पर पुश्तैनी घर में रिपेयरिंग का छोटा काम हो या लोन लेकर इंदौर रोड पर नया घर बनाना हो, हमारे तो हीरे ख़ाँ ही मज़दूर, मिस्त्री, आर्किटेक्ट, सिविल इंजीनियर थे। बाद में भी ठेकेदार हीरे ख़ाँ हमारे यहाँ नाली रिपेयरिंग से लेकर अतिरिक्त निर्माण तक हमेशा हाज़िर। बेटे का कहना है उसे नया मकान बनवाना है। हीरे ख़ाँ बरसों पहले सुपुर्दे ख़ाक़ हो चुके हैं। शहर में एक से बढ़कर एक कंस्ट्रक्शन कंपनी हैं, उनसे सम्पर्क करूँगा। रात एक सांस्कृतिक कार्यक्रम से देर रात लौट रहा था, रास्ते में कब्रिस्तान पड़ा, गाड़ी खड़ी कर पूरी ताक़त से आवाज़ दी- 'हीरे ख़ाँ... कहाँ हो बेटे का मकान बनवाना है।' पीछे की गाड़ी ने हॉर्न बजाया तब पता चला मैं रो रहा था, पता नहीं क्यों...।

000

कमजोर हाथों से भी सीढ़ी थामने वाले

ज्योति जैन

कोई ऐसा व्यक्ति जो व्हील चेयर पर हो, जिसके हाथ सीधे न हों और न ही अँगुलियाँ सीधी हों वह व्यक्ति इतना सुंदर कैसे लिख सकता है...!

यह विचार मेरे मन में पहली बार तब आया जब मैंने एक प्रेरक व्यक्तित्व डॉ. सतीश दुबे को देखा।

डॉ. सतीश दुबे का नाम मैंने लघुकथाकार के रूप में हमेशा ही जाना था, पहचाना था और पढ़ा था। लेकिन जब उनसे पहली बार मिली तो मुझे एक शॉक लगा, कह सकती हूँ या झटका लगा या धक्का लगा। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई कुछ देर के लिए। शायद, उन्होंने भी मेरी मनोदशा समझ ली होगी। उनके चेहरे पर एक मुस्कराहट थी। ऐसी मुस्कराहट जो कि समझ रही हो या समझा रही हो कि मैं जानता हूँ तुम्हारे मन में क्या चल रहा है। इंसान भी कितना अजीब होता है। अपने मनोभाव आसानी से बिल्कुल नहीं छुपा पाता। कम से कम मैं तो बिल्कुल भी नहीं छुपा पाती। यदि मैं किसी से प्यार करती हूँ, तो मेरे चेहरे पर वह प्यार या वह स्नेह साफ दिखाई देता है। यदि मैं किसी को नापसंद करती हूँ तो वह भी नहीं छुपा पाती। यदि किसी को देखकर हैरान होती हूँ तो भी नहीं छुपता। आमतौर पर किसी से नफ़रत नहीं करती लेकिन यदि किसी से हो जाए तो वह भी मेरे चेहरे पर स्पष्ट और आसानी से किसी को भी नज़र आ सकता है। तो मैं उस दिन डॉ. सतीश दुबे सर को देखकर आश्चर्यचकित रह गई...।

ओह...माँ...! ये लिखते कैसे होंगे...? लेकिन उस दो घंटे की मुलाकात में उन्होंने मेरे सारे सवालों के जवाब आसानी से दिए। बोलकर नहीं.., लिखकर भी नहीं...., अपने व्यक्तित्व से, अपनी कार्यशैली से। सतीश दुबे सर से देखा जाए तो मेरा पहला परिचय साहित्य के माध्यम से ही था। यानी मैं उनकी निरंतर प्रकाशित होती लघुकथाओं की बहुत बड़ी पाठक और प्रशंसिका थी। इसके साथ ही उनकी दो पुस्तकें मुझे किसी ने भेंट की थीं। चूँकि मैं ख़ुद भी लघुकथाएँ लिखती थी तो वे पुस्तकें मैंने बहुत चाव से पढ़ीं।

2009 में जब मुझे पहली बार लगा कि मुझे अपना एक संग्रह निकाल लेना चाहिए। पर सच कहूँ तो उस विचार के पीछे मेरे कुछ शुभचिंतक थे। जिन्होंने लगातार समाचार पत्र और पत्रिकाओं में मेरी लघुकथाओं को, मेरे आलेखों को पढ़ा था। उनका कहना था कि तुम्हारी लघुकथाएँ बहुत अच्छी और बहुत सारी हैं तो तुम्हें यह संग्रह निकलवाना चाहिए..।

मैं निकलवाती कैसे..?

मुझे कुछ प्रक्रिया पता नहीं थी, कि किस तरह से एक किताब छपती है? मेरे दिमाग़ में दिशा प्रकाशन का नाम ज़रूर था, क्योंकि दिशा प्रकाशन की कुछ किताबें मैंने पढ़ी थीं, और मुझे लगता था कि यह प्रकाशन बहुत अच्छा है। और ऐसे विचार करती थी कि कभी मेरी किताब छपी, तो दिशा से छपवाऊँगी। लेकिन यह सपना लगता था। अब देखिए, वह सपना पूर्ण करने का माध्यम डॉ. सतीश दुबे किस तरह बने..।

जब विचार आया कि लघुकथा संग्रह को प्रकाशित करवाएँ तो कुछ लोगों से बातचीत की। कुछ वरिष्ठ लोगों से पूछा भी कि किताब छपवाना चाहती हूँ तो किस तरह से छपवाऊँ...? पहली प्रतिक्रिया... जिसने मुझे डिगाने के बजाए और दृढ़ता से खड़ा कर दिया। वह प्रतिक्रिया थी- "अभी तो... चलना सीख रही हो, उड़ने का प्रयास मत करो। अभी ज़रा लिखना सीख लो, फिर छपने की सोचना।"

कोई और होता तो निराशा के गड्ढे में जा गिरता। मगर मैं तो मैं हूँ... कुछ भी कर सकती हूँ, लेकिन नैराश्य में तो कभी नहीं जा सकती। मैंने सोचा, शायद ये मुझे और मज़बूत करने के लिए बोला गया है।

तो अब मेरा लक्ष्य तय था कि मुझे अपना लघुकथा संग्रह प्रकाशित करवाना है। उन्हीं दिनों

ज्योति जैन
1432/24, नंदा नगर
इंदौर 452011 मप्र
मोबाइल -9300318182

किसी पत्रिका में डॉ. सतीश दुबे की कहानी के नीचे नाम के साथ पता देखा। उसे लेकर अपना परिचय देते हुए उन्हें एक चिट्ठी लिखी। जिसमें स्वयं का परिचय दिया और साथ ही उनसे निवेदन किया कि... मैं अपने लघुकथा संग्रह छपवाना चाहती हूँ। साथ ही आपसे निवेदन करती हूँ कि कृपया उसकी भूमिका आप लिखिए...।

आश्चर्यजनक रूप से सर का जवाब आया... एक पोस्ट कार्ड पर। जिस पर उन्होंने मुझे संबोधित करते हुए लिखा कि मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। और आपके लेखन से भी परिचित हूँ। अभी इसके पहले वाले रविवार को आपकी लघुकथा नईदुनिया में पढ़ी थी। आप बहुत अच्छा लिखती हो और मैं ज़रूर आपकी लघुकथाओं पर कुछ लिखूँगा।

साथ ही उन्होंने अपने आर्शीवचन भी दिए और आख़िरी में लिखा कि नीचे मेरा टेलीफोन नंबर है (क्योंकि उस वक्त मोबाइल नहीं थे)। आप इस नंबर पर कॉल करके आ सकती हैं।

मैं बहुत ख़ुश थी। लेकिन साथ ही थोड़ा सा आश्चर्य हुआ...। इतने बड़े लेखक और अक्षर इतने ख़राब...?

लेकिन फिर मैं शर्मिंदा हो उठी..। मेरे अक्षर तो और भी ख़राब हैं। लेकिन मैं इतनी बड़ी लेखिका नहीं हूँ न, इसलिए चलता है। यह सोचकर मैंने फिर उनके अक्षरों पर ध्यान दिया। अक्षर बिल्कुल अच्छे नहीं थे..।

ख़ैर...मुझे तो इस बात की प्रसन्नता थी कि उन्होंने मुझे बुलाया। मैंने उनके दिए नंबर पर फ़ोन करके समय माँगा और उन्होंने मुझे आने का समय दिया। मैंने अपनी कुछ चुनिंदा लघुकथाओं को अलग रखने के साथ पूरी फाइल समेटी। कुछ लघुकथाएँ अलग इसलिए रखीं, कि मैं उन्हें पढ़कर सुना सकती थी। तो मैंने अपनी फाइल ली और अपनी स्कूटी पर सर से मिलने चल पड़ी।

पहुँचते ही उनकी धर्मपत्नी यानी मीना आँटी ने मेरा बहुत अच्छे से स्वागत किया। चूँकि कहीं भी ख़ाली हाथ जाना मेरी आदत नहीं है, तो मैं सर के लिए घर का बना हुआ नमकीन व चक्की लेकर गई।

दोनों ने बहुत आत्मीयता से स्वागत किया। लेकिन जैसा मैंने आरंभ में कहा कि मैं बहुत हैरान रह गई उनको देखकर...।

सर व्हीलचेयर पर थे। और उनके हाथ भी अजीब तरीक़े से मुड़े हुए थे, उँगलियाँ भी...। मुझे अपनी ही सोच पर शर्म आई, जब मैंने उनके अक्षरों के बारे में अपने मन में टिप्पणी की। छी...कितनी गंदी हूँ मैं। मैंने अपने आपको कोसा। चूँकि दरवाजा मीना आँटी ने खोला था तो पहले उनके चरण स्पर्श किये और फिर सर के। सर ने आशीर्वाद दिया...।

औपचारिक बातों के साथ मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि सर ने मेरी लघुकथाओं को पढ़ा है और उन्होंने तीन-चार लघुकथाएँ जो हाल ही में छपी थीं, उनकी समीक्षा भी की। सुखद आश्चर्य यह था कि उन्हें लघुकथाओं में कहीं कोई कमी नज़र नहीं आई। यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी।

फिर...सामने तख्त पर बैठते हुए मैंने सर का बारीक मुआयना किया..। व्हील चेयर पर बैठी वह बिल्कुल दुबली-पतली काया थी। पूरी आस्तीन का कुर्तानुमा शर्ट पहना था और पायजामा। पैर व्हील चेयर के पायदान पर थे और घुटनों पर उनके हाथ टिके हुए थे। मोटी काली फ्रेम का चश्मा, बिल्कुल पिचके हुए गाल, खिचड़ी बाल...।लेकिन आत्मविश्वास से भरपूर व्यक्तित्व मेरे सामने सारी शारीरिक अक्षमताओं को अँगूठा दिखा रहा था।

धीरे-धीरे सर से बहुत सारी बातें हुई..।इस बीच आँटी ने मुझे अपने हाथ से बनाकर चाय पिलाई। मैंने अपनी कुछ लघुकथाएँ सर को सुनाना चाहा, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया..।बोले- "मुझे ज़रूरत नहीं है सुनने की, आप पूरी फाइल छोड़कर जाओ। मैं कुछ चार-पाँच महीने में आपको लिखकर देता हूँ...।"

मेरा दिल थोड़ा सा बैठ गया....। हे, भगवान्... 2009, जनवरी में सोचा था इसी वर्ष पुस्तक आ जाएगी तो बहुत अच्छा है, लेकिन अगर चार-छह महीने सर कह रहे हैं तो हो सकता है ज्यादा वक़्त भी लग जाए, फिर प्रकाशन का। यह सब सोचकर मन थोड़ा बैठ गया...। लेकिन फिर सिर झटक दिया फिर सोचा कि पहली पुस्तक है आराम से आने देते हैं कोई जल्दी नहीं है।

यह सर से मेरी पहली मुलाकात थी और जब मैं घर लौट रही थी, स्कूटी पर पूरे रास्ते (हालाँकि ट्रैफिक का ध्यान था, लेकिन फिर भी) पूरा दिमाग़ सतीश दुबे सर में लगा हुआ था। यह व्हील चेयर पर बैठा दुबला-पतला व्यक्ति, जो कि अपना ग्लास भी ख़ुद पकड़ता है, ख़ुद चाय पीता है वह व्यक्ति कितनी बड़ी जीवटता और साहस का प्रतीक है। क्या कुछ नहीं सीखा जा सकता उनसे... और उन्हें देखने के बाद उनका लेखन, उनके शब्द मेरे ज़हन में आने लगे। यानी उनके दुबले-पतले हाथ-पैर थे, चेहरा भी पतला था, गर्दन भी पतली सी, लेकिन उस छोटे से सिर के अंदर उनका दिमाग़ पूरी तरह विकसित था। बल्कि शायद, हम लोगों की तुलना में और अधिक विकसित था। हम आम लोगों की तुलना में भी ज़्यादा विकसित था। कितना ग़ज़ब का लेखन था, कितने सालों से कर रहे थे।

मुझे पता चला कि प्रसिद्ध लघुकथाकार दिल्ली के बलराम जी उनके घर को लघुकथा का मंदिर कहते थे। मुझे लगा वे ग़लत नहीं कहते थे और सचमुच मैं यहाँ से लौटी तो मुझे मंदिर से लौटने वाले भाव ही आ रहे थे, क्यों नहीं आते..? मैं लघुकथा के इतने बड़े हस्ताक्षर से जो मिलकर आ रही थी।

वे सतीश दुबे सर ही थे जिन्होंने मुझे हौसला दिया कि तुम्हारा लघुकथा संग्रह ज़रूर छपेगा..।

(कोई चालीस दिन या पैंतालिस दिन बीते होंगे कि सर का फोन आ गया। तब तो लैंडलाइन ही हुआ करते थे।) उन्होंने बताया कि आपकी किताब की भूमिका तैयार है आप आकर ले जाइए..।

अरे...वाह...! मैं तो ख़ुशी से झूम उठी।

जी, सर...मैं ख़ुशी को दबाते हुए, इंतज़ार करने लगी कि कब उनका बताया हुआ समय आए और मैं कब वहाँ पहुँच जाऊँ। वे बहुत स्पष्टता से कह देते थे कि इस समय मत आना, इस समय मैं भोजन करता हूँ...या यह मेरे आराम का समय होता है। निर्धारित समय पर मैं उनके यहाँ गई।

मीना आँटी ने गेट खोला और मैं उनके पैर

छुने झुक ही रही थी कि उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा- बहुत बड़ी बात है कि इतनी जल्दी आज तक इन्होंने किसी की भी भूमिका नहीं लिखी, जो तुम्हारी लिखी, पता नहीं क्या बात है। चार से पाँच महीने के पहले ये किसी को भी अपनी भूमिका लिखकर दे ही नहीं पाते।

मैं गद्गद् थी। सर को फिर चरण स्पर्श किया और उन्होंने भी आशीर्वाद देते हुए कहा- "तुम्हारी लघुकथाएँ इतनी अच्छी हैं कि मैं अपने आपको रोक ही नहीं पाया और देखो भूमिका तैयार है।"

मुझे लगता है कि अच्छा भला, शारीरिक रूप से बिल्कुल स्वस्थ इंसान भी कई बहाने बनाता है समय पर काम न करने के। लेकिन वे सर ही थे जिन्होंने तमाम शारीरिक बाधाओं को पार करते हुए या बाधाओं के बावजूद भी समय पर, बल्कि समय से पूर्व मुझे भूमिका लिखकर दी। न सिर्फ भूमिका लिखकर दी, बल्कि दिशा में मेरे लिए बात भी की। मैंने अपनी लघुकथाएँ दिशा प्रकाशन को भेजी।

और इस तरह मेरा पहला लघुकथा संग्रह 'जलतरंग' अस्तित्व में आया। और 'जलतरंग' भी उसी संग्रह की लघुकथा का नाम था और सतीश दुबे सर ने ही शीर्षक 'जलतरंग' तय किया।

उस किताब ने मुझे कई पुरस्कार दिलवाए...। वह लेखन का पहला क़दम था। पुस्तक प्रकाशन का पहला क़दम था, जहाँ सर ने ख़ुद न चलते हुए भी मुझे यहाँ पर चढ़ाया, ख़ुद के हाथ कमज़ोर थे, कहने भर को। लेकिन मेरा हाथ पकड़कर मुझे सीढ़ी पर चढ़ने के लिए प्रेरित किया। मुझे लगता है कि मेरी लेखन यात्रा आज जारी है तो निश्चित रूप से उस पहले क़दम के लिए मैं सतीश दुबे सर का आभार मानती हूँ और उन्हीं से प्रेरणा पाकर मैं आगे बढ़ती रही हूँ। सर के लिए बस ये दो पंक्तियाँ ही ध्यान आती हैं...।

"सीढ़ी पे सफलता की कई लोग हैं चढ़ते,
विरले ही लोग हैं जो सीढ़ी थामे खड़े हैं..."
निश्चित रूप से कमज़ोर हाथों से भी सीढ़ी थामने वाले... वे सतीश दुबे सर ही थे।

000

लघुकथा

भरपेट खाना

चारुमित्रा

जनेऊ का पाँच दिवसीय समारोह समाप्त हो चुका था। अंदर आर्केस्ट्रा का कार्यक्रम ज़ोरों पर था। संगीत की धुन पर लोग झूम रहे थे, हँसी-ठहाकों से माहौल सराबोर था।

दरवाज़े के पास खड़ी रतिया तालियाँ बजा रही थी, अपने नन्हें पाँवों से लय में ठुमक रही थी। उसकी आँखों में उत्साह था, लेकिन उसके क़दम दहलीज़ पार नहीं कर सकते थे। वह एक भिखारिन की बेटी थी, और उसे अंदर जाने की इजाज़त नहीं थी।

कुछ लोगों की नज़र पड़ी तो कड़वी आवाज़ें गूँजने लगीं—

"ए भाग यहाँ से! रास्ता मत रोक!"

रतिया सहम गई, धीरे-धीरे पीछे हट गई।

रात गहराने लगी, मेहमान एक-एक कर विदा हो गए। पंडाल की चकाचौंध अब फीकी पड़ चुकी थी।

रतिया चुपचाप आगे बढ़ी और ज़मीन पर गिरी मटर की कचौड़ियाँ और पनीर की सब्ज़ी अपने छोटे से बर्तन में भरने लगी। जैसे ही पहला कौर मुँह में रखा, उसकी आँखें चमक उठीं।

आज उसने जश्न में भले ही हिस्सा न लिया हो, पर उसके हिस्से की ख़ुशी यही थी- 'भरपेट खाना'।

000

चारुमित्रा , सहजानंद चौक के समीप, हरमू हाउसिंग कॉलोनी, एम आई जी -82 (एम/एफ), रांची -834002 (झारखंड)
ईमेल- charu79mitra@gmail.com

प्रकृति का डिज़्नी वर्ल्ड-यूटाह

रेखा भाटिया

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लिट, नॉर्थ केरोलाइना -28277, यू एस ए मोबाईल
मोबाइल-704-975-4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

मार्च-अप्रैल महीने में लॉस वेगस से लौटने के बाद शार्लेट वापस आकर पैर की चोट और भयंकर फ्लू से बिगड़ी तबीयत से जूझ ही रही थी। साथ ही मुझे लगता था मैं लाल पहाड़ों में अपना आधा हिस्सा छोड़ आई हूँ और अधूरी-सी हूँ। एक महीना गुज़रा, कई बार डॉक्टरों के पास गई, उन्हें कुछ समझ नहीं आया, कहा तनाव है। कई टेस्ट हुए, इलाज चला और सच बताऊँ वह तनाव ही था। माँ के कैंसर का समाचार आया, मैंने तुरंत भारत जाने की टिकट बुक कर दी। सभी का कहना था पहले मेरी तबियत सँभले फिर भारत यात्रा। माँ की बीमारी के बारे में सोचकर और पल-पल क़रीब आती मौत की घड़ी के टिक-टिक करने से मेरी रातों की नींद और दिन का चैन ग़ायब हो चुका था। माँ बीमारी से हार कर मेरे तय दिन भारत पहुँचने के एक सप्ताह पहले दुनिया छोड़ कर चली गई, मैं रोती-बिलखती भारत पहुँची... नहीं भारत नहीं, इंडिया पहुँची। बहुत कुछ टूटा और टूटता रहा भीतर। एक दुखद अंत था इस यात्रा का, मन पर पड़ा बोझ सबसे बाँट नहीं सकती थी। मेरी मार्गदर्शिका ने मन पर मलहम लगाना शुरू किया। उन्हें डर था मेरा दर्द नासूर न बन जाए। तबीयत दिनों-दिन बिगड़ ही रही थी।

एक महीने के अंदर दमघोंटू गर्मी की तपन में मैंने वापस लॉस वेगस की दोबारा यात्रा की उड़ान बुक कर दी। पाँच घंटों की उड़ान के बाद एयरपोर्ट से जब कार रेंट करने पहुँचे, वहाँ के लोग ख़ुद हैरान थे इतनी जल्दी हम लॉस वेगस वापस आ गए। 105 डिग्री तापमान में जलती-तपती मरुधरा ने एक फिर से बाँहों में समेट छाँव-सा आलिंगन दिया। वर्जिन नदी के जॉर्ज को पार किया, अब पहाड़ों ने भी तप कर अपना रंग बदल लिया था। यूटाह स्टेट धूप में चमक-दमक कर पूर्ण नारंगी आभामंडल का पुँज प्रतीत हो रहा था। आज हम निकले थे यात्रा पर बंजारों से, न होटल बुक था, न कोई योजना यात्रा की। बंजारों के मन से बढ़ रहे थे, पहाड़ों और रेगिस्तान के मध्य।

शाम तक नारंगी, पीले परतदार पहाड़ों के मध्य, भेड़ों के झुंड और छोटे गाँवों से गुज़रते हुए शहर में आ पहुँचे। हाईवे एक बड़े मेहराब (चट्टानों का अर्ध गोलाकार आर्च) के मध्य से गुज़र रहा था। यहाँ रुककर तस्वीरें खिंचवाते एक महिला राहगीर से मिले। उसने तस्वीरों के साथ स्थानीय सुंदरता, मार्गों और स्थानों की भरपूर जानकारी दी। यहाँ से हमारी रुचि और रुझान स्थानीय के महत्त्व की ओर बढ़ा।

हम शाम साढ़े सात बजे यूटाह स्टेट के "ब्रायस नेशनल पार्क" पहुँचे। मँजे खिलाड़ी से एक पल गँवाए बिना "सनराइज़ पॉइन्ट" पर जा पहुँचे। सूरज क्षितिज में खड़ा हमारा इंतज़ार करता पश्चिम में जाने को आतुर था, सच सोच कर ही हँसी आ जाती है। जब साथी ने सूरज की ओर इशारा किया था, यही जवाब था मेरा ! मायावी नगरी लॉस वेगस से जब ड्राइव करना शुरू था तब पता नहीं था दूर सुदूर में ब्रायस पार्क में क्या ख़ास मिलेगा ? सनराइज़ पॉइन्ट सूर्योदय का पॉइन्ट है और हम देख रहे थे वहाँ से सूर्य अस्त ! पूरी घाटी एक देवलोक के समान सुनहरी दमक रही थी, एक-एक हुडु (मीनार) एक-एक देवता की प्रतिमा जान पड़ता। मानों ग्रैंड कैनियन मंदिरों का देवलोक था और उन मंदिरों की मूर्तियाँ हुडु बन करोड़ों वर्षों से ब्रायस में सजीव हो, जी उठी हों। इनकी आभा देखते ही आप दंग रह जाते हैं, खुले आकाश तले हज़ारों विशालकाय मूर्तियाँ। कभी लगता मिस्र के पिरामिडों से निकल कर, कभी आभास होता ग्रीस के महलों से निकल ये मूर्तियाँ यहाँ स्थापित हैं। इनके रंगों की बात करें तो मुख्य रंग ख़ुशनुमा गुलाबी और मूँगिया रंग की विशाल शिलाओं समान चट्टानें लाल और नारंगी रंग की धरती पर, इन शिलाओं की चोटियाँ भूरी गुलाबी थीं। क्या विशाल धरती बाहर से भीतर अधिक ख़ूबसूरत और रंगीन है, प्रश्न स्वत: ही मन में उठने लगे। ब्रायस नेशनल पार्क बहुत ऊँचाई पर है और शाम होते-होते तापमान तेज़ी से गिर जाता है। एक विशाल वैली में तैरता हर पत्थर, हर चट्टान गुलाबी गीत गा रही थी। कहना न होगा, वहाँ खड़ा हर शख़्स अचंभित, विस्मित घंटों ब्रायस पार्क में हुडु को निहार रहा था जैसे गोपियाँ निहारती होंगी कृष्ण को। मैं अँधेरे तक पगडंडियों पर चलती हर

कोण से ब्रायस को सराहती रही। दृश्य कुछ ऐसा था मीलों तक खुला निखरा आकाश और गुलाबी रंगों के इंद्रधनुष की छटा बिखेरता ब्रायस पार्क की हुडु शिलाओं का दर्शन। पृथ्वी के इस कोने से किसी और अलौकिक संसार की कल्पना भी वर्जित लग रही थी। यहाँ हरियाली भी बहुत थी, अन्य पार्कों की तुलना में। रात में जंगल से ड्राइव कर दूर सुदूर में किसी होटल का अंतिम बचा कमरा बुक किया। गर्मी के मौसम में भी यहाँ बहुत ठंड थी, तय हुआ सुबह जैकेट ख़रीदी जाएँ। हमारे खाने के लिए कुछ नहीं मिला उस रात लेकिन होटल पहुँच कर पाया, आशीष जो गुजरात से है रात होटल में ड्यूटी पर था। होटल एक भारतीय का था और आशीष चार सालों से उस होटल की देखभाल करते उस सुदूर में रह रहा है। मेहनती भारतीयों पर गर्व करते रात चैन की नींद सोए।

सुबह तड़के ब्रायस पार्क जाने से पहले पेट भर भारी नाश्ता खाया। ब्रायस पार्क में यूरोप से बहुत सैलानी आए हुए थे। अमेरिका के सैलानियों की गिनती नाममात्र थी। कुछ एशियन सैलानी भी थे। सुदूर में होने की वजह से यहाँ सैलानियों की भीड़ भी कुछ कम थी और बहुत उचित व्यवस्था थी। हम अमरीकी होकर यहाँ परदेसी महसूस कर रहे थे। कार से और शटल से कई व्यू पॉइन्ट्स (दार्शनिक पॉइन्ट्स) को घूमने और सैकड़ों तस्वीरें लेने के बाद स्थानीय के महत्त्व को समझ मैंने विज़िटर सेंटर से जानकारी ली और पूरे दिन की योजना बनाई। हर विज़िटर सेंटर एक म्यूज़ियम होता है, इतिहास और भूगोल के साथ यात्रा की महत्त्वपूर्ण जानकारी यहीं से मिलती है, इनमें ज़रूर वक़्त गुज़ारना चाहिए ! दूसरे पार्क रेंजर्स, यह मामूली सरकारी कर्मचारी नहीं होते बल्कि अनुभवों और ज्ञान के भंडार होते हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा में बारह-बारह घंटे खड़े होकर ड्यूटी करते हैं, पार्क से कचरा तक उठाते हैं, राहगीरों को राह दिखाते हैं, उनकी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। कई रिटायर्ड सेवक होते हैं जिन्हें प्रकृति से प्यार होता है और रिटायर होने के बाद राष्ट्रीय पार्कों में मुफ्त में सेवा दे रहे होते हैं। हम एक पति-

पत्नी जोड़े से मिले, उनके पूर्वज यूरोपियन सेटलर थे, यूरोप से पीढ़ियों पहले इस क्षेत्र में आए थे, तब उन्हें ज्ञान न था और पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुँचाया था। यहाँ के स्थानीय रेड इंडियन क़बीले के लोगों से कई युद्ध किए, उनकी ज़मीनें छीनी, जानवरों का बहुत शिकार किया, वन्य जीवन में संतुलन को बिगाड़ा ! आज उन्हीं की पीढ़ी के सदस्य इस क्षेत्र के संरक्षण के लिए रिटायर होकर यहाँ अपने क्षेत्र में वापस आ गए। यहाँ सभ्यता से दूर छोटे से कम विकसित क्षेत्र में बाकी बचा जीवन शांति और सेवा के साथ जीने के लिए। जैसे भारत में लोग आश्रमों, मंदिरों या आसपास गाँवों रहते हैं। हर देश की अपनी संस्कृति और रहन-सहन होता है।

उस जोड़े की राय के अनुसार हमने ब्रायस पार्क की तलहटी में क्वींस गार्डन पर जाने का मन बनाया। सनराइज़ पॉइन्ट से ट्रेल पर चलना शुरू कर धरती की सतहों में उतरते हाइकिंग शुरू की। गुलाबी, नारंगी कच्ची मिट्टी की पगडंडियों पर, संकरे चट्टानी रास्तों, विशाल चट्टानी शिलाओं के मध्य हर पल रोमांचित करने वाला था, साथ ही थका देने वाला था। ज़्यादातर वक़्त चलते आप अकेले अपनी ही गति से चलते हैं और साथी से जुदा हो जाते हैं, फिर भीड़ में साथ खोजते-रुकते साथी के लिए प्रतीक्षा करते हैं। वयस्कों के साथ कई थके बच्चे भी लाल टमाटर बन प्रयासरत थे। कुछ पालकों के कन्धों पर सवार थे। वैष्णव माँ की यात्रा से अधिक दुर्गम चढ़ाई और ढलान थी यहाँ। ग्रैंड कैनियन की तलहटी धरती के गर्भ में एक मील गहरी है और ब्रायस 800 फ़ुट गहरा। ग्रीष्म का एक बजे का सूरज सिर पर चढ़ आया था फिर भी कई स्थानों पर प्रकाश बहुत मध्यम था लेकिन गर्मी ज़बरदस्त हो गई थी। तलहटी में ऊँची शिलाओं समान चट्टानों के मध्य इंसान चींटी जितने नज़र आ रहे थे, कुछ ऊँचे वृक्ष भी उग आए थे, यह अद्भुत था। हाइकिंग में कई प्राकृतिक ब्रिज देखे, कई प्राकृतिक झरोखे मानों जैसे मांडव के महलों के अवशेषों में पहुँच गए हों। ऊपर चढ़ते वक़्त साथी तो पीछे छूट गया लेकिन एक नवयौवना की साँसें उखड़ रही थीं, उसे सहारा और हिम्मत देते मैं पहले ऊपर आ गई, जलती देह में मन शांति और सुकून से तृप्त था।

ब्रायस में एम्पलीथिएटर सबसे सुंदर था। पार्क में 18 मील "सदर्न सिनिक ड्राइव " पर हमने कार में भ्रमण किया। रेनबो ब्रिज और रेनबो पॉइन्ट की अनुपम छटा को निहारते हृदय में विद्युत तरंगें उत्पन्न होती हैं। हम चलने से पहले वापस पार्क रेंजर जोड़े से मिले और उन्होंने विज़िटर सेंटर में दूसरे पार्क रेंजर टॉम से मिलने को कहा। टॉम से मिलकर हमारी लॉटरी लग गई। इस प्रदेश की प्राकृतिक सुंदरता को नयनों में भरकर कहाँ और कितना लूट सकते हैं, यह पूरा इलाका क्यों और कैसे बना, इतिहास और भूगोल की सम्पूर्ण जानकारी।

पृथ्वी के भीतर टेक्टोनिक प्लेट्स की हलचल से 5 करोड़ वर्ष पहले कॉलोराडो पठार पृथ्वी की सतह से 1.8 मील ऊपर उठा था और थोड़ा झुक गया था। तब समुद्री तल के पास शुद्ध पानी से भरे पृथ्वी के समतल भाग कुछ मील ऊपर उठ गए, इस प्रक्रिया के परिणाम से उनकी समतल चट्टानों में टूट-फूट हुई, उनकी दीवारें बनीं, फिर उनमें समय, दबाव, पानी के बहाव, आबोहवा के कारण दीवारों में प्राकृतिक झरोखे बने। तापमान में तेज़ी से बदलाव के कारण इस झरोखों में पानी बर्फ़ बन जमा होता है, फिर पिघलता है। साल में 170 दिन तापमान इस इलाके में तेज़ी से बदलता है। इन चट्टानों में

कैल्शियम कॉर्बोनेट पाया जाता है, जो अम्लीय पानी के साथ रासायनिक क्रिया करता है, इस पूरी जटिल प्रक्रिया में झरोखे टूट कर सिर्फ़ घुमावदार मीनारों के आकार की चट्टानें बच जाती हैं जिन्हें हुडु कहते हैं। ब्रायस नेशनल पार्क उसकी जादुई हुडु के लिए विश्व में सबसे अनोखा और बहुत प्रसिद्ध पार्क है। 1924 में नेशनल पार्क बना ब्रायस पार्क 10,000 फ़ुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पाए जाने वाले विभिन्न वनस्पतियों, जीव और जंतुओं में प्रांगहॉर्न (तेज़ बकरी) मुख्य हैं जो 60 मील प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ सकते हैं। जिनका रंग कत्थई लाल और सफ़ेद होता है जो आसपास के परिवेश में उन्हें छद्म वरण में बहुत सहायक होता है। पाँच बजे हम थे 'रेनबो पॉइन्ट ' 10,000 फ़ुट की ऊँचाई पर अब मैंने मिनी ड्रेस पहना था, तापमान का मज़ेदार खेल है यहाँ।

कोलोराडो पठार 130,000 वर्ग क्षेत्र में चार राज्यों में फैला हुआ है। इस क्षेत्र के कई नेशनल पार्क घूमने और शोध करने के बाद इस क्षेत्र की नैसर्गिक सुंदरता और महत्ता, इतिहास और भूगोल से बेहद प्रभावित हूँ। ब्रायस नेशनल पार्क पहली परत 1.8 मील ऊँचा, फिर ज़ायान नेशनल पार्क दूसरी परत मध्य में और ग्रैंड कैनियन निचली परत में समुद्र तल से एक मील ऊँचा हैं। यहाँ सभी क्षेत्रों की उत्पत्ति की कहानी तो एक ही है लेकिन स्वभाव में बहुत विविधता है, कुछ भी स्थायी नहीं है यहाँ ? इस सुदूर बियाबान, दुर्गम मरू भूमि में वक़्त, आबोहवा, पानी, तापमान और पृथ्वी इन पाँच तत्वों से यहाँ की सूक्ष्म बालू, विशालकाय चट्टानें, पत्थर, पर्वत, कैनियन सभी के आकार -प्रकार निरंतर बदलते रहते हैं। पृथ्वी के हर जीव प्राणी उत्पत्ति की कहानी तो सब की एक ही है लेकिन स्वभाव में बहुत विविधता है और अंत कुछ भी स्थायी नहीं है। मेरा मन समझने लगा यहाँ के इन बंजारे, पथरीले, रेतीले, शुष्क भूभागों से मेरा कोई तो नाता है। एक बार मिली और कोई धुँधला-सा सपना जैसे उजास हो रोशनी से भर हकीकत में बदल गया। पीछे घर

पर लहराती हरे रंग की सदाबहार, बेपरवाह हरियाली लिपटे जंगल, पहाड़ों, झिरमिराते झरनों को छोड़ कर शीत ऋतु की बर्फानी ठंडक और बसंत की मौजों भरी हवाओं के बाद अब तेज़, तपते आग उगलते सूरज से गर्म लाल पड़ी जलती धरती पर साल में तीसरी बार कदम रखने की हिम्मत कर रही हूँ। एक संघर्ष ही होगा ख़ुद को जलने से बचाने का? मेरा बंजारा यायावर मन पगला-दीवाना सताता हर बार माँग कर बैठता है यात्राओं की, यह जानने हर यात्रा के गर्भ में क्या छिपा है ?

हमें आगे पता नहीं था, हमें किस नेशनल पार्क में घूमने जाना है और कहाँ रुकना है ? बिना योजना की इस बार की यात्रा स्वयं हमारे लिए भी एक रहस्य थी। शाम पाँच बजे छोटे शहर पेंग्विच के काऊबॉय स्मोक हाउस में सलाद और चीज़ बर्गर खाया, सुबह नाश्ता भी यहीं खाया था। बताना इसलिए ज़रूरी है यह पहला अनुभव था किसी काऊबॉय रेस्तराँ में उन्हीं की स्टाइल में खाने का, यहाँ न शाकाहारी खाना मिलता है, न कोई भारतीय। हाँ, चीज़ बर्गर का पैसा मीट बर्गर जितना ही चुकाना पड़ता है। वक़्त देता है मस्त अनुभव, आप विषम परिस्थितियों में जीवित रहने के कौन से रास्ते खोजते हो।

स्थानीय पार्क रेंजर टॉम की सलाह पर शाम छह बजे हम ब्रायस नेशनल पार्क से निकल अंदर के पहाड़ी रास्तों से 'ग्रैंड स्टेयरकेस ऐस्केलांटे' बाय वे 12 के लिए निकल पड़े, मैं थोड़ा घबरा भी रही थी क्योंकि इंटरनेट के सिगनल दूर सुदूर में कई मर्तबा काम नहीं करते हैं लेकिन टॉम ने हमें काग़ज़ का नक्शा लाइनें अंकित कर पकड़ा दिया था। हम हाइवे 12 जगह-जगह रुकते प्रकृति का आनंद लेते रहे। हाईवे पर जंगली गायों के झुण्ड जगह-जगह आज़ादी से विचरण कर रहे थे। यह भ्रमण एक स्वप्न के समान सुंदर था, दीन-दुनिया से दूर। ज़िंदगी बहुत सुनहरे मौके दे रही थी बिना योजना के जीवन के उल्लास का। यह वही हाईवे था जिसे एक बार मैंने इंटरनेट पर खोजते-खोजते अपने रिकॉर्ड में रख लिया था "माय नेक्स्ट ड्रीम - यूटाह हाईवे 12"। पता नहीं था अपने स्वप्न में स्वयं और स्वत: ही पहुँच गई थी। पूरा रास्ता एक जीओलॉजिकल म्यूज़ियम था। मानों प्रकृति ने भूरी-पीली-नारंगी सीमेंट को इस क्षेत्र में बस यूँ ही ऊँचाई से बिना योजना के कई सौ मीलों तक बहा दिया हो और वह इधर-उधर फ़ैल कर पफड़ों और घाटियों में बदल कर जम गई हो और यह रास्ता इंजीनियरिंग का बेजोड़ उदाहरण था। उसी लैंडस्केप का मात्र और अंश। कई छोटे-छोटे गाँवों-क़स्बों को पार किया। जहाँ सभ्यता अब भी पुरातन काल में ठहरी हुई है।

बस घिरती रात के साथ हम छोटे-से टोर्रे शहर पहुँचे, कहीं होटल न मिला। पास ही टीसडेल शहर में पहाड़ों-जंगलों के बीच मैदान में लॉग हॉउस वाला बड़ा कमरा मिला। मेरा मन बल्लियाँ उछला, लेकिन साथी को वीराने में यह जगह कुछ असुरक्षित महसूस हुई कारण था यहाँ के लोग। होटल से पहले एक पेट्रोल पम्प पर रुके, कुछ ज़रूरत का सामान ख़रीदा। वहाँ के मालिक ने कहा, "मैं मोर्मोन नहीं हूँ।" होटल की रिसेप्शनिस्ट नवयुवती ने कहा, "मैं कॉफ़ी नहीं पीती क्योंकि मैं मोर्मोन हूँ लेकिन सुबह आपको यहाँ कॉफ़ी मशीन से मिल जाएगी !" सिर कुछ चक्कर खाया आख़िर मंज़र क्या है ?

लकड़ी के बने उस लॉग हाउस में लकड़ी की महकदार ख़ुशबू थी, साथ ही स्थानीय रेड इंडियन प्रजाति के आदिवासियों के कला शिल्प से बने कई सजावट के कलात्मक नमूनों से पूरे रूम की सुंदर सजावट की गई

थी। तकियों के खोल, रजाई, पलंग, अलमारी, टेबल, साथ ही बड़े बिग हॉर्न भेड़ का मुँह लटका हुआ था। मुझे भारत के राजा-महाराजा याद आ गए। यह एक अलग अनुभव भी कर लिया जाए ! मैं रात दस बजे लॉग हाउस की वीरान-सुनसान बालकनी में आकर बैठ गई, दिल धड़क रहा था। सामने खुला मरू मैदान, जंगल, पहाड़ियाँ, जानवरों की कुछ डरावनी आवाज़ें। यहाँ उग्र ज़हरीले रेटल साँप बहुत निकलते हैं। साथी ने कहा भी भीतर चलो, ख़तरा भी हो सकता है। मैं थोड़ी हिम्मत कर बैठ गई और सामने सघन घुप्प काले आसमान को निहारती रही। प्रकाश प्रदूषण की वजह से यह घुप्प अँधेरा हमें हमारे शहर में नहीं मिलता। इस अँधेरे में नग्न आँखों से अपनी "मिल्की वे आकाश गंगा" को निहारना बहुत सुखद होता है।

सुबह तड़के सबवे सेंडविच पैक करवाया, दुकानदार ने कहा, "मैं मोर्मोन हूँ। अच्छा शाकाहारी सेंडविच बना कर देता हूँ।" मोर्मोन एक समुदाय के लोग हैं जो एक धार्मिक पद्धति (विचारधारा) को मानते हैं। 17 वीं सदी के अंत में यूटाह स्पेन के शासकों के क़ब्ज़े में रहा। 18 वीं सदी मध्य में मोर्मोन अपनी धार्मिक विचारधारा और संस्कृति को स्वतंत्र रूप से मानने के लिए यूटाह में जा बसे। तब यूटाह मैक्सिको देश का हिस्सा होता था। वर्ष 1850 में यूटाह अमेरिका का टेरिटरी वाला क्षेत्र बना और अंत में वर्ष 1896 में यूटाह अमेरिका का 45वाँ राज्य बना। लेकिन 12,000 वर्षों से यहाँ पुरातन सभ्यताएँ पनपती रहीं।

आज हम कैपिटल रीफ नेशनल पार्क जा रहे हैं। इसका नाम बड़ा रोचक है। यहाँ प्रवेश करते ही लाल-कत्थई परतदार चट्टानों और गुम्बद नुमा कैनियन ने मन मोह लिया। यहाँ सफ़ेद-स्लेटी और भूरे रंग के गुम्बद के आकर की बालू चट्टानों के कई शिखर हैं जो कि कैपिटल बिल्डिंग के गुम्बद (डोम) के जैसे दिखते हैं। जब कोलोराडो पठार धरती की सतह से ऊपर उठा, तब चट्टानें टूटने के बजाय दबाव के कारण मुड़ गई और धरती के इस भाग में 100 मील की एक सिकुड़न

(मोड़) पड़ गई जो एक तरफ से ऊपर की ओर उठी हुई है। जैसे समुद्र में कोरल रीफ दिखाई देती है, यहाँ की चट्टानें रीफ की तरह दिखाई देती हैं। इसीलिए इस पार्क का नाम "कैपिटल रीफ" पड़ा। यह पार्क ज़ायान पार्क का छोटा स्वरूप लग रहा था। एक हाइकिंग ट्रेल पर 500 मीटर चलने के बाद हमें कई यूरेनियम की ख़दानें दिखीं। अब इनका मुँह जालियों से बंद कर दिया गया है। इन्हें देखना रोमांच से भर रहा था। यहाँ स्लेटी और काली चट्टानें ज्वालामुखी से 2 से 3 करोड़ वर्ष पहले आईं, इस स्थान की भौगोलिक संरचना 27 करोड़ वर्षों से पृथ्वी पर हो रहे बदलाव का परिणाम है। यह पार्क यूटाह स्टेट के मध्य दक्षिण में स्थित 60 मील लंबा और 6 मील चौड़ा है। 1971 में यह एक नेशनल पार्क बना। यहाँ की घाटी में विभिन्न सेव और विभिन्न फलों के पेड़ हैं, यहाँ का एप्पल पाई बहुत मशहूर है। कैपिटल गोर्ज रोड पर फोर व्हील ड्राइव गाड़ी ही जा सकती है। कच्चे, अनछुए घुमावदार रोडों पर गाड़ी चलाना, नारंगी -कत्थई -भूरे ऊँचे-ऊँचे टॉवर से सीधे खड़े सेंड चट्टानों के विशालकाय कैनियन के सामने आप बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं और ढाई मील के रास्ते में प्रकृति की विशालकाय मज़बूती और विविधता के आगे नतमस्तक हो जाते हैं। यहाँ हमने सबवे सेंडविच खाया। बादलों, अंधड़ हवा और उड़ती बालू के बीच, यूटाह के इस नन्हें से क्षेत्र में वर्षा कभी भी हो जाती है, मध्य रेगिस्तान में बेंच पर बैठकर सेंडविच खाने का मज़ा और बाद में परतदार लाल चट्टानों पर ऊँचाई चढ़ते मैंने भागना शुरू किया। ड्रेस के साथ मैंने स्पोर्ट शू पहने थे। साथी की साँसें रुकी हुई थीं, कहीं मैं फिसलकर गिर न जाऊँ। वह रोकते रहे और मैं थी कि प्रकृति की गोद में कुलाँचे भर रही थी। शायद माँ की गोद का सुख मिल जाए।

कैपिटल रीफ पार्क और आसपास के क्षेत्रों में 100 से अधिक वन्य प्राणियों की प्रजातियाँ, 239 तरह के पक्षी, 900 से अधिक वनस्पति की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह संरक्षित क्षेत्र है। इसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति जिसमें समुद्र सतह और बहुत ऊँचाई के मध्य पर इस मरुस्थलीय भूभाग में सतह और ऊँचाई पर पाई जाने वाली वनस्पति की मिश्रित प्रजातियाँ और वन्य जीवों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ की जलवायु में अत्यंत ऊष्मा, मौसमी बाढ़ और शीत ऋतु के ठंडे तापमान के साथ होने वाली बर्फ़ इसे और भी विशिष्ट बनाती है। पहली नज़र में यह भूभाग निर्जीव दिखाई देता है। लेकिन यहाँ 2000 सालों से अधिक समय पहले "फ्रीमॉन्ट क़बीले" के लोग आकर बसे थे, फिर अन्य कई क़बीले आते रहे और बसते रहे। पूरी तरह ठीक से कहा नहीं जा सकता लेकिन ठोस साक्ष्य हैं कि यूटाह स्टेट में 10,000 वर्षों से पहले से स्थानीय क़बीले जिन्हें "नेटिव अमेरिकन " या "अमेरिकन इंडियन" पुकारा जाता है, आकर बसे थे। वह शिकार करते थे, सब्जियाँ उगाते थे, मक्का अनाज को सुखाकर पत्थरों के इमामदस्ते और सिलबट्टे में पीसते थे। मिट्टी और घास के घर बनाते थे या गुफ़ाओं में रहते थे। घास की टोकरियाँ बनाते थे। मिट्टी के बर्तन बनाते थे। चट्टानों पर भित्तिचित्रों के कई नमूने मिले हैं, हमने एक नमूना देखा। 15 वीं शताब्दी में स्पेन से यूरोपियन सेटलर जब इस क्षेत्र में आए तब से सन् 1821 तक 'न्यू स्पेन एम्पायर' के तहत और 1821 से 1848 तक यह क्षेत्र स्पेन और मेक्सिको के अधीन आता-जाता रहा; लेकिन वहाँ उनकी बहुत अधिक पकड़ नहीं थी। यहाँ के स्थानीय "नेटिव अमेरिकन" क़बीलों और गवर्नमेंट की कुछ झड़पों और गृहयुद्ध के बाद

अंतत: 1896 में यूटाह को अमेरिका के राज्य का दर्जा मिल गया।

कैपिटल रीफ पार्क से हमने यूटाह के "आर्चेस नेशनल पार्क" ड्राइव करना शुरू किया। ढाई घंटे की ड्राइव के बाद सौभाग्य से हम शाम साढ़े पाँच बजे पार्क पहुँच गए। गर्मी बहुत तीक्ष्ण थी, तापमान था 103 डिग्री... विज़िटर सेंटर में जानकारी मिली पार्क में भीतर जाने के लिए रजिस्ट्रेशन करना पड़ता है! यहाँ से लॉस वेगस सात घंटे ड्राइव पर था, हम तो आसमान से उड़े और खजूर में अटके। इतनी दूर आकर यह ग़म ? हिम्मत की, वेबसाइट पर पूरे खानदान की जानकारी डाल दी, अगले दिन सुबह दस बजे का अपॉइंटमेंट मिला। शाम पाँच बजे के बाद आने वालों को रजिस्टर नहीं करना पड़ता। यह पार्क मोएब शहर के निकट उत्तर में है। इसके पूर्व-दक्षिण में कोलोराडो नदी बहती है। यहीं से इसकी ख़ूबसूरती नज़र आने लगती है। यहाँ 2000 अर्द्ध वृत्ताकार मेहराब या तोरण के आकर की चट्टानें हैं जिन्हें आर्च कहा जाता है। यह एक विशालकाय पार्क है और बहुत खुला हुआ है। मज़ेदार और आश्चर्य की बात है यह नेशनल पार्क एक शहर के निकट है। इसकी ऊँचाई 4000 से 5000 फ़ुट है। यहाँ से 'ला सल' पर्वत मालाएँ नज़र आती हैं, जिनके शिखर बर्फ़ से ढके रहते हैं और लाल चट्टानों और मरुस्थल की पृष्ठभूमि में बहुत रमणीक दिखते हैं। यहाँ साल भर में 15 लाख लोग पार्क में घूमने आते हैं। इस पार्क की सबसे ख़ास बात यह थी उम्र में बड़े बुज़ुर्ग भी इस पार्क की सुंदरता को कार में घूमते हुए देख सकते हैं। विश्वास नहीं होता इस पार्क की ज़मीन के पहले कभी यहाँ उथला समुद्र था आज ऊँची-ऊँची चट्टानों की मीनारें, दीवारें और पहाड़ियाँ हैं।

जैसे ही कार से पहाड़ियों के ऊपर पहुँचते हैं यहाँ से असीमित संभावनाएँ खुल जाती हैं। पार्क ऐवेन्यू व्यू पॉइन्ट की विशालकाय लाल चट्टानों के खंबे, मीनारों, दीवारों, क़िलों, मंदिरों और लाल क़िलों को देखकर लगता है आप किसी पुरातन काल की समृद्ध विशाल सभ्यता में लौट गए हैं। कहीं नदी पर बने मंदिर

और घाट नज़र आते हैं, कहीं विशालकाय महल, कहीं विशालकाय मूर्तियाँ, कहीं शिलाएँ। ऐसा लगता है मानों कभी अजंता-एलोरा की साइट पर खड़े हैं। कभी मांडव पहुँच गए हैं, कभी बनारस के घाट पर, या किसी विलुप्त सभ्यता के अवशेष हैं। इस पार्क में रास्ते बहुत सुगम बने हुए हैं। यहाँ चट्टानों से बनी सीधी दीवारों को देख लगता ही नहीं है यह प्रकृति का कार्य है, लगता है जैसे मानव ने इसे बहुत कुशलता और निपुणता से बनाया है और वास्तु कला और इंजीनियरिंग का बेजोड़ नमूना है। हैंगिंग रॉक एक विशाल मीनार -सी चट्टान पर टिकी हुई हवा में झूलती एक भारी चट्टान है। हैंगिंग रॉक पर उत्साह में हम दोनों ने चढ़ाई कर दी और ऊँचाई पर बैठकर दूर-दूर तक फैले सुदूर में दिखते पहाड़, विशालकाय चट्टानों के अलग-अलग आकार के अद्‌भुत नमूने निहारते रहे, अद्‌भुत नज़ारा था। यहाँ पति ने आवेश में आकर बच्चों को फेस टाइम कर नज़ारा दिखाया, बच्चों ने नज़ारों की तारीफ़ की लेकिन हमारी क्लास भी लगा दी, ख़ूब डाँट पड़ी खड़ी-विशालकाय चट्टान पर चढ़ने के लिए।

पार्क में चट्टानों की दीवारों में विशाल विंडो (खिड़की) बेहद बेजोड़ नमूना था, यहाँ कई विंडो थीं। जैसे सॉउथ विंडो 105 फ़ुट लंबी और 65 फ़ुट ऊँची थी, नॉर्थ विंडो 51 फ़ुट ऊँची और 93 फ़ुट लंबी है। जिन्हें क़रीब से देखने के लिए चढ़ाई और हाइकिंग करनी पड़ती है। हमने रात में एक बेहतरीन रेस्तराँ में मैक्सिकन खाना खाया, अब लगे होटल ढूँढ़ने! तब मोएब शहर का चेहरा कुछ नज़र आया। अच्छा शहर था, बढ़िया रौनक थी। शानदार होटल, दुकानें, रेस्तराँ थे। मोएब शहर के पास दो नेशनल पार्क हैं, दूसरा है "कैनियन लैंड नेशनल पार्क" और "डेड हॉर्स पॉइंट पार्क" एक स्टेट पार्क है। घर के काम करने की प्रथा के कारण यह शहर युवाओं में खासा लोकप्रिय हो रहा है, लेकिन इस चकाचौंध में कई ग़रीबी के नमूने देखे, मन रूखा हो गया था। वेगास शहर में भी रात की चकाचौंध में घूमते कहीं अँधेरे कोनों में गलियों में दीवार से सटे ड्रग्स कर नशे में धुत गिरे-पड़े मैले-कुचले बास मारते, जीवन को नष्ट करते युवा दिखाई पड़ते हैं, जिनके पास से गुज़रते हुई भी डर लगता है। कई रेस्तराँ के बाहर देर रात बाहर पड़े टेबल-कुर्सियों पर दुनिया से छिप कर रोते-बिलखते, आँसू बहाते कई नवयुवतियों को देखा है, लेकिन कभी हिम्मत नहीं पड़ी रुक कर कारण पूछने की। शायद यही नज़ारा किसी मंदिर के बाहर होता तब तुरंत रुककर कारण पूछती ! आसपास का वातावरण देख कर कभी-कभी सोचती हूँ माँ-पापा ने हम पर कई बंदिशें लगाकर हमारा भला ही किया था।

देर रात ग्यारह बजे आर्चेस नेशनल पार्क के पास ही होटल ढूँढ़ा। होटल पहुँच पता चला क्रेडिट कार्ड खो गया है ! कई और समस्याएँ आईं, संघर्ष आए... एक यात्रा में कई छोटे, बड़े क़िस्से-कहानियाँ बन जाते हैं, सब का ज़िक्र करना बहुत मुश्किल होता है। सुबह हमने वह होटल छोड़ दिया, कल रात वहाँ बाथ टब में से पानी नहीं बह रहा था, मुझे लॉस वेगास में रिसॉर्ट में बाथटब में फिसल कर गिरने और चोट खाने का मंज़र याद आया, मैं याद कर सिहर उठी और राम-राम करते किसी तरह नहा कर बाहर आई थी।

अगली सुबह शुरू किया एक मिशन दो नेशनल पार्क एक दिन में देखने का, आज दिन का तापमान होनेवाला था 105 डिग्री। ख़ैर सिर पर बाँध कफ़न हम चले ! गर्मी की तपन ने सुबह दस बजे जलाना शुरू किया।

हम हर पॉइन्ट पर गाड़ी रोकते, बहुत सारा पानी पीते फिर कार में ठहरते, कुछ हिम्मत जुटाते। हमने टुर्रेट आर्च, डबल आर्च देखा, कुछ मील की हाइकिंग थी, कई ऊँचाई पर थे। ट्रेल पर बालू रेती में चलना दुश्वार था। डबल आर्च में एक आर्च 144 फ़ुट की थी, दूसरी 112 फ़ुट की थी, विशालकाय आर्चेस के मध्य चट्टानों पर चढ़ कर ऐसा लग रहा था मानों ओपन रूफ के आलीशान होटल की ऊँचाई पर बैठे हैं, चट्टान से गोलाकार तोरण नुमा खुली छत लाज़वाब थी। यहाँ हर कदम सावधानी से फूँक-फूँक कर चढ़ रहे थे। लेकिन फिर जिस सुकून को महसूस करो उसकी तुलना किसी असीम सुख से कम नहीं। कई आर्च पॉइन्ट मैंने अकेले ही देखे। जब साथी की हिम्मत ज़वाब दे जाती। वह गाड़ी में कुछ देर सुस्ताते, कभी एयरकंडीशनर चलाते, कभी सिर पर पानी की बोतल उँडेल देते।

हैंगिंग रॉक पर चढ़ाई कर दूर-दूर तक नारंगी आर्चेस और विशालकाय चट्टानों की आकृतियों को निहारना अद्भुत था लेकिन यूटाह राज्य की पहचान और सबसे प्रसिद्ध आर्च "डेलिकेट गोल्डन आर्च" को देखने के लिए सात मील की हाइकिंग करनी पड़ती या पास की एक छोटी पहाड़ी पर डेढ़ मील की हाइकिंग कर उसे कुछ दूरी से ऊपर जाकर देखते, यह आर्च नीचे से नहीं दिखाई देती है। असंभव और असीमित क्षमताएँ होती हैं इंसान में, जब ठान लिया जाए तब संभव हो पाता है। हम पेशे से या शौक से रेगुलर हाइकिंग नहीं करते लेकिन घूमने के मोह में करते रहे यात्रा और यात्रा।

अब "डेलिकेट आर्च" को देखना तय किया उसके हाई व्यू पॉइन्ट से। पहाड़ी पर 105 डिग्री में चढ़ना असंभव लग रहा था, ख़ुद को धूप में जलाते, किसी तरह घसीटते ऊपर चढ़ रहे थे। चढ़ाई भी कुछ कठिन थी। यहाँ गर्मी में साल-दो साल में एक-दो लोग कभी मर भी जाते हैं, यह हमें पता नहीं था और बाद में पता चला। ऊपर पहुँच कर सुनहरी आर्च दूसरी पहाड़ी पर दिखी, कुदरत का करिश्मा अद्भुत था। एक और बात अधिक धूप की

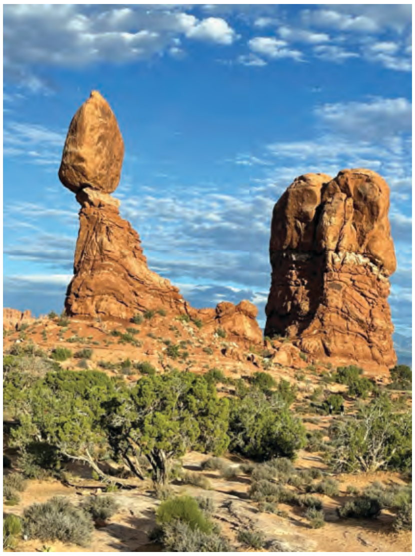

चमक में आँखें भी चौंधियाने लगती हैं। हम सँभल रहे थे। सैंड ड्यून आर्च, स्काइलाइन आर्च तक पद भ्रमण किया। अंत प्रकृति की विशालता के आगे घुटने टेक दिए। इंसान कितनी भी लंबी छलाँग मार ले, प्रकृति के आगे बौना पड़ जाता है। पार्क के कई हिस्से कार से घूमे जो यहाँ की खासियत थी। एक विशालकाय चट्टान जो छोटी पहाड़ी के समान थी, मुझे इंदौर के बड़े गणपति की मूर्ति के समान लगी, जिसके आगे दो चट्टानें नंदी के आकार की लग रही थीं। शायद प्रकृति के हाथों में छैनी, हथौड़ा और ताक़त रही होगी जो कई चट्टानों को कई मूर्तियों का-सा आकर दिया था। आर्चेस भी उसी प्रक्रिया से बनती हैं जैसे हुडु लेकिन यह विशालकाय गुफाओं या दीवारों को तोड़कर बनती हैं। जिन्हें लाखों से करोड़ों वर्ष लगते हैं। तीस करोड़ वर्ष पहले यहाँ एक समंदर बहकर आया था फिर सूख गया, पीछे नमक का एक मील मोटी -गहरी पर्त जो लाखों-करोड़ों वर्षों में दबकर चट्टानें बनीं और10 करोड़ वर्षों के इरोशन आर्चेस बनीं। इसे 1929 में नेशनल पार्क बनाया गया। उन्नीसवीं शताब्दी से यूटाह राज्य की किस्मत पलट गई और इसकी ख़ूबसूरती से सम्पूर्ण विश्व का परिचय हुआ।

इस नेशनल पार्क में एक आर्च 306 फ़ीट लंबी "लैंडस्केप आर्च" सबसे लंबी आर्च है। डेविल्स गार्डन में आठ आर्च हैं और 8 मील की हाईक है, हमने कई छोटी-छोटी हाईक की। प्रकृति की गोद में नेशनल पार्कों में घूमना-चहकना हर बड़े को बच्चा बना देता है। यह प्रकृति की ख़ूबसूरत देन ही है। रोमांच जगता है, नई ऊर्जा का संचार होता है। मोएब शहर में बसे इस नेशनल पार्क के अलावा मोएब शहर में ऑउटडोर में करने लिए बहुत एक्टिविटीज़ हैं, ख़ासकर युवाओं के लिए जैसे माउंटेन बाइकिंग, फोर व्हील ड्राइव। यहाँ से राज्य की राजधानी सॉल्ट लेक सीटी चार घंटों की दूरी पर है। आर्चेस नेशनल पार्क 119 मील वर्ग क्षेत्र में फैला हुआ है।

दक्षिण-पश्चिम अमेरिका के छह राज्यों को मिलाकर "ग्रांड सर्किल" कहते हैं, यह बहुत प्रसिद्ध टूरिस्ट रूट है, यहाँ की प्राकृतिक सुंदरता और नेशनल पार्क विश्व प्रसिद्ध है, जिसका पता मुझे अब चला है। मुझे प्रकृति से प्यार है इसलिए यह क्षेत्र मुझे अपनी और हमेशा से आकर्षित करता रहा, और मेरे लिए सृष्टि का वरदान जो मुझे मिला और यहाँ मुझे बार-बार घूमने के सुअवसर मिलते गए। इस विशाल, लाल वीराना, अनोखे रेगिस्तानी क्षेत्र में वन्य जीवन को विचरण करते देखना अद्भुत अनुभूति से भर देता है। "जिन खोजा तिन पाईया" और उस अनुभूति को महसूस करने के लिए खोजना पड़ता है, प्रयासरत रहना पड़ता है।

परीलोक की कल्पना मात्र कल्पना है या किसी ने उसे देख कर उसका बयान किया है पता नहीं लेकिन यह क्षेत्र अपने आप में किसी परीलोक से कम नहीं है। इसे संरक्षित कर पर्यावरण की रक्षा करना और सँवार कर, सहेज कर रखना बहुत प्रशंसनीय है। संसार में कुछ स्थान इंसानों की पहुँच से दूर प्रकृति के लिए भी सुरक्षित रहने देना चाहिए जहाँ इंसान ख़ुद सुकून पा सके!

आर्चेस नेशनल पार्क के पार्क बनने से पहले ही यह जगह "नेटिव अमेरिकन" जनजातियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण और पवित्र स्थान है। जनजातियों के लोग इन आर्चेस को अंतरिक्ष और समय के प्रवेशद्वार मानते हैं जो यहाँ के धार्मिक प्रतिष्ठानों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ की क़बीलों की जनजातियों का मानना है चट्टानी शिखर संवेदनशील प्राणी हैं जो लोगों को मदद या

संसाधन प्रदान करते रहते हैं। जैसे भारत में हमारे यहाँ पहाड़ों, नदियों और कई स्थानों को देव स्थान और पवित्र माना जाता है और कई मान्यताएँ प्रचलित हैं।

यहाँ से कैनियन लैंड नेशनल पार्क ड्राइविंग शुरू की। चालीस मिनटों की ड्राइविंग में लग रहा था हम किसी और दुनिया में आ गए हैं। चट्टानों और लाल पहाड़ों के डिज़्नी वर्ल्ड में, पूरा यूटाह प्रदेश ही बहुत-बहुत सुंदर है। कैनियन लैंड यूटाह का पाँचवा नेशनल पार्क है। कैनियन लैंड ग्रैंड कैनियन का छोटा रूप था, लेकिन यहाँ कोलोराडो और ग्रीन दो नदियाँ पहाड़ों को काटती घाटियाँ तराशती हैं। इसकी तुलना ग्रैंड कैनियन से होती है तब आप इतना तो अंदाज़ा लगा गए होंगे इसकी सुंदरता किसी परी लोक से कम न थी। इस पार्क में कार से नीचे घाटी में ड्राइव किया जा सकता है, जो किसी अनुभवी ड्राइवर के बस की बात है, नीचे ढलान बहुत दुर्गम थी। कई व्यू पॉइंट पर हम अकल्पनीय दृश्यों के गवाह बनते रहे। बैंगनी-नारंगी आसमान में दूर क्षितिज में सूरज हल्की धुंध में कैनियन लैंड के बजते हल्के, मीठे, मधुर संगीत में कैनियन के पीछे घाटी में खो गया। मेरे लिए कैनियन से विदा लेना मुश्किल था, फिर बिछड़ना। हम कई दिनों से सड़क की यात्रा कर रहे थे।

रात एक रेस्तराँ में पिज़्ज़ा खाया, जो शहर के दूसरे कोने में था। ग़रीबी को थोड़ा क़रीब से देखा, कुछ धक्का-सा लगा। वही होटल एक बार फिर से बुक किया। अबकी बार रूम में फ्रिज काम नहीं कर रहा था, होटल तो महँगी था। साथ लाई आइसक्रीम और खाना ख़राब हो गए, हमने थोड़ी ज़्यादा गर्मी खा ली। एक बार फिर से बहस की। अब की बार न माया मिली, न राम। मंज़िल और मंज़िल तक पहुँचने का रास्ता दोनों बहुत कुछ सीखा जाते हैं, यात्रा चलती रहनी चाहिए।

सुबह लॉस वेगस की राह पकड़ी। सात घंटों का सफ़र और हम टॉम के बताए हाईवे से प्राकृतिक सुंदरता का, हर अवसर का लाभ उठाते कई जगहों पर थोड़ी-थोड़ी देर रुकते आए, पर्वतों, पठारों और पहाड़ों, पहाड़ियों

की विविध रंग, आकर और यूटाह की नैसर्गिक सुंदरता का ख़ूब लुत्फ़ उठाते रहे। रास्ते में सड़क किनारे लोकल नेटिव इंडियंस (अमेरिकन स्थानीय लोग) से कुछ कलात्मक वस्तुएँ भी ख़रीदीं। एक रेस्तराँ में शाकाहारी खाना बना कर स्पेशल आर्डर से देने वाली महिला बहुत सुन्दर और सभ्य और जानकर लगी। बातों-बातों में उसने बताया वह लॉस वेगास के एक बड़े शो में कलाकार थी, फिर चकाचौंध, भीड़ और शोर-शराबे से दूर अब यूटाह में किसी होटल में काम कर शांति की ज़िंदगी बसर कर रही है और लॉस वेगास में रहने वाले बहुत लोग बाद में जीवन में वही करते हैं यानी चकाचौंध से आगे भी जीवन है जो बहुत मूल्यवान् है। अँधेरे से पहले शाम को चमचमाते लॉस वेगस की मायावी दुनिया में लौट वहाँ की भीड़ में खो गए। देर रात सड़कों पर घूमना, मस्ती और शोर-शराबा ! अगले दिन भी वही वही किया लेकिन यहाँ कुछ भारतीय वायुसेना के परिवारों से मिले। उन्हें लॉस वेगस आना अच्छा लग रहा था और हमें उनसे मिलना। उनसे मिल कर वतन याद आ गया, फिर बिछड़ना। शायद यही जीवन भी है।

मैंने भी खुले दिल से ज़िंदगी का फिर से स्वागत किया, प्रकृति की तरह मौन गतिमान रहना है हर कैनियन की तरह !

यूटाह अमेरिका का छोटा-सा एक बहुत सुंदर प्रदेश है। इस छोटे स्टेट में पाँच नेशनल पार्क, 46 स्टेट पार्क हैं। यह अमेरिका के सबसे सुंदर प्रदेशों में से एक है। बीसवीं सदी के शुरुआत से बनी हॉलीवुड मूवीज़ में घोड़े पर सवार काऊ बॉयज टोपी पहने काऊ बॉयज जिन लाल चट्टानों की वादियों में घूमते संसार को रोमांचित करते थे, उनकी शूटिंग यूटाह स्टेट में होती थी। संसार के सबसे अधिक और सबसे बड़े डायनोसॉरस प्राणी यूटाह स्टेट में पाए जाते थे। यहाँ कोयला प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यूटाह का 60 प्रतिशत हिस्सा जंगलों से ढका हुआ है, यह एक मरुस्थलीय प्रदेश है और पश्चिम की पर्वत मालाओं में स्थित है। सूखी जलवायु के कारण यहाँ स्नो पाउडर जैसी होती है, जिसे संसार की सबसे आनंददायक स्नो माना जाता है, यहाँ अमेरिका का सबसे बड़ा स्की रिसोर्ट है। यह अमेरिका का सबसे ख़ुशनुमा प्रदेश है। इस प्रदेश के हर प्रान्त का कुछ हिस्सा किसी राष्ट्रीय फारेस्ट में आता है। यूटाह प्रदेश को "बी हाइव" स्टेट कहा जाता है, यहाँ के लोग अमेरिका के किसी भी हिस्से से सबसे अधिक वालंटियर सेवा का कार्य करते हैं और यहाँ की जनसंख्या में सबसे अधिक तादाद युवाओं की है। यहाँ गर्मी और सर्दी दोनों ऋतुएँ बड़ी चटक रहती हैं।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

आख़िरी पन्ना

खो जाए तो सोना है

'दुनिया जिसे कहते हैं जादू का खिलौना है, मिल जाए तो मिट्टी है खो जाए तो सोना है' इन पंक्तियों को जाने कब से सुनते आ रहे हैं, लेकिन इन पंक्तियों में छिपी सच्चाई को कभी महसूस नहीं किया। कोई चीज़, कोई व्यक्ति जब आपके पास हो, तो आपको उसकी क़ीमत पता नहीं चलती, लेकिन उसके खोते ही आपको पता चलता है कि उस व्यक्ति या उस वस्तु की क्या क़ीमत, क्या महत्त्व था आपके जीवन में। पिछले दिनों ऐसा ही कुछ हुआ, पिता को खोने के बाद पता चला कि पिता का होना जीवन में कितना मायने रखता है। जब से होश सँभाला तब से पिता को अपने आस-पास पाया। बचपन के उस समय से लेकर, जब आप रिश्तों को पहचानना प्रारंभ कर देते हैं से लेकर अब तक जब पिता चलने-फिरने में थोड़ा अशक्त हो गए थे, हमेशा उनको अपने पास पाया। उनके और मेरे बीच बहुत संवाद नहीं थे, हम उस पीढ़ी के पिता-पुत्र थे, जब इन दोनों के बीच संवाद नहीं के बराबर होते थे। अधिक संवाद माँ के साथ ही होते थे। ऐसे में हम दोनों ही संवादहीनता के एक रिश्ते से बँधे हुए थे। मैं घर लौटता और वे कहते- 'आ गए बेटा।' मैं सिर हिला कर स्वीकृति देता और अंदर चला जाता। बस इतना ही संवाद। बचपन में पिता नाम के रिश्ते से जो झिझक या यूँ कहें कि डर मन में बस जाता है, वह उम्र भर नहीं जाता। उसी डर के कारण संवादहीनता की स्थिति बनती है। और संवादहीनता का यह रिश्ता पिछले दिनों समाप्त हो गया। जिस दिन यह रिश्ता समाप्त हुआ, उसके अगले दिन मुझे पता चला कि नहीं संवादहीनता तो बिलकुल नहीं थी, चुप रहकर भी कितने संवाद होते थे हमारे बीच में। और अगर ऐसा नहीं है तो फिर क्यों उनके जाने के बाद मुझे इतना बड़ा शून्य, इतनी बड़ी ख़ला अपने आस-पास दिखाई दे रही है। ख़ला उस जगह, जहाँ पिता हुआ करते थे। हम एक-दूसरे के लिए एक आश्वस्ति थे, जिसके लिए संवाद की आवश्यकता नहीं होती। मैं जैसे ही घर आता था, उनका तनाव से भरा चेहरा एकदम खिल उठता था। और दिन भर की मुश्किलों से जूझने के बाद जब मैं घर पहुँचता था, तो उनको देखते ही एकदम तनावरहित हो जाता था। एक दिन पहले तक भी मुझे नहीं पता था कि कल पिता को हमेशा के लिए चले जाना है, अब इसके बाद जब भी घर लौटूँगा तो वे नहीं होंगे तनावरहित करने के लिए मुझे। एक दिन पहले रात को जब मेरी बेटी उनको खाना खिला रही थी, तो मैंने उनके सिर पर आ गई एक बालों की लट को पीछे किया था और बोला था- 'सारी रिपोर्ट्स आ गई हैं, आप बिलकुल ठीक हैं।' उन्होंने हमारे बीच के इस संवाद पर कुछ आश्चर्य से देखा था मेरी तरफ़। यह उनके और मेरे बीच का आख़िरी संवाद था और मेरी बेटी द्वारा खिलाया गया वह भोजन उनका 'लास्ट सपर' था। इसके बाद अगले दिन कोई संवाद करने या कुछ और खिलाने की संभावाना ही उन्होंने नहीं छोड़ी। क्यों नहीं होता था उस समय के पिता पुत्र के रिश्ते के बीच संवाद। क्यों खींच कर रखी जाती थी मर्यादा की लक्ष्मण रेखा बीच में, कि पिता से बात नहीं करना है, कोई काम है तो माँ के माध्यम से ही बताना है। पिता और पुत्र दोनों ही उस रेखा को बाद में भी नहीं लाँघ पाते थे। जबकि बात दोनों ही करना चाहते थे। अब जब पिता और बच्चों के बीच मित्रता के संबंध बनते देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि आज के समय में पैदा होना चाहिए था। पिछले एक-दो साल से पिता शारीरिक रूप से अशक्त हो गए थे, बस लेटे रहते था या उठ कर थोड़ी देर को बैठ जाते थे। स्वयं चलना फिरना बिलकुल बंद था, बस किसी का सहारा लेकर चलते थे। ऑफ़िस से जब लौटता था, तब वे ड्राइंग रूम में अपने मनपसंद सोफ़े पर लेटे या बैठे मिलते थे। कुछ देर बाद मैं भी आकर पास के सोफ़े पर बैठ जाता था, हम यूँ ही बिना बात किये बैठे रहते थे, तब तक, जब तक वे किसी का सहारा लेकर अंदर अपने कमरे में सोने के लिए नहीं चले जाते थे। अब वे बिना सहारा लिये हमेशा के लिए सोने चले गए हैं और मैं ड्राइंग रूम में अपने सोफ़े पर चुपचाप बैठा हूँ, उनका सोफ़ा ख़ाली पड़ा है। मैं उस संवादहीन रिश्ते की कमी बहुत शिद्दत से महसूस कर रहा हूँ... **सादर आपका ही**

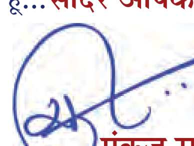

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकों का विमोचन

Vibhom Swar ● Quarterly ● April-June 2025 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

Dhingra Family Foundation USA/India

Free Computer Training Program For Providing Employment Oriented Computer & Skill Training To Rural Underprivileged Girls In India (Running Since 2014)

Diploma in Computer Application (DCA) University Syllabus

1. Information Technology Tools and Networks Basics
2. Windows and MS Office
3. Database Concepts and Introduction to SQL
4. Objects Oriented Programming With C++
5. Communication Skills & Personality Development
6. Introduction to Internet and Web Technology
7. Introduction to Financial Accouting with Tally
8. Programming and Problem Solving Through Python
9. Introduction to Cyber Security

DCA (Diploma in Computer Application)

DCA course is an employment oriented computer diploma course. The full name of DCA is Diploma in Computer Application. DCA is considered to be the best course for students who want to make a career in the field of computers after 12th class or graduation. The Diploma of this course is awarded by a government recognized university.

●

After completing this course, students gain excellent computer skills (see below) which help them get a good job. This course covers everything from basic to advanced computer skills. Like: MS Word, Excel, Power Point, Database, Networking, Photoshop, Editing, Graphics Designing, Internet etc.

●

Along with this course, girls are also provided training in personality development, career counseling, spoken English etc.

Help And Support Us In Providing Employment Oriented Computer & Skill Training To Rural Underprivileged Girls In India. Donation Can Be Made Either In India Or USA.

Donate

Please scan the **QR code** to make your valuable donation

DFF USA

dhingrafamilyfoundation.org

For USA

For India

Dhingra Family Foundation India

Registered Non-profit organization Under Section 12A and 80G of the Income Tax Act, 1961

Foreign Contribution Regulation Act

FCRA Registration Number- 063480008 Date- 13/1/2025

Corporate Social Responsibility

CSR Registration number- CSR00087663

Contact For Donation- 9806162184, 9399648132, 07562405545

Donation Amount		Number of Students
125$	₹10000	1
250$	₹20000	2
500$	₹40000	4
1000$	₹80000	8
2000$	₹160000	16
4000$	₹320000	32
6250$	₹500000	50
12500$	₹1000000	100

Contact Us

Dhingra Family Foundation USA
101 Guymon Court
Morrisville, NC-27560
USA
Mobile +1-919-801-0672
+1-919-601-2208
Email: om.p.dhingra@gmail.com

Dhingra Family Foundation India
P. C. Lab, Shop 2-8, Samrat Complex Basement, Opp. Bus stand, Sehore, MP 466001, India
Phone +91-07562-405545
Mobile +91-9806162184
Email: dffindia2020@gmail.com

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।